प्रभाकर माचवे की कविता - एक अध्ययन

PRABHAKAR MACHWE KI KAVITHA - EK ADHYAYAN

Thesis submitted to
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
for the degree of
Doctor of Philosophy

By

POULOSE K. K.

Supervising Teacher
Prof. (Dr.) A. ARAVINDAKSHAN

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
KOCHI - 682 022

1995

CERTIFICATE

This is to certify that this Thesis is a bonafide record of work carried out by **Paulose K.K.** under my supervision for **Ph.D.** degree and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any University.

Prof.(DR.) A, ARAVINDAKSHAN
(Supervising Teacher)
Department of Hindi
Cochin University of
Science and Technology.

Kochi - 682 022.

10 .3.1995.

DECLARATION

I hereby declare that the work presented in the Thesis entitled **"PRABHAKAR MACHWE KI KAVITHA EK ADHYAYAN"** is based on the original work done by me under the Supervision of **Dr.A.Aravindakshan**, Professor of Hindi, Cochin University of Science and Technology and that no part there has been presented for the award of any other degree.

Kochi - 22.

10 th March 1995.

POULOSE K.K.

I

पुरोवाक्

"तार सप्तक" का प्रकाशन हिन्दी साहित्य की एक महत्वपूर्ण घटना है । "तार सप्तक" को लेकर आलोचना एवं प्रत्यालोचना का जो क्रम चल पड़ा, उसने नयी कविता के विकास के पथ को प्रशस्त किया है । इस अर्थ में "तार सप्तक" नयी कविता की पूर्व पीठिका है । इतना तो सर्वमान्य और सर्वस्वीकृत तथ्य हैं कि "तार सप्तक" ने आधुनिक कविता को सुलभ बनाया है ।

"तार सप्तक" के सात कवियों में दो कवि मराठी भाषी हैं, मुक्तिबोध और प्रभाकर माचवे । मराठी भाषी होने पर भी उन दोनों ने हिन्दी के लिए अपने आप को अर्पित किया है । कवि के रूप में ही नहीं, बल्कि भारतीय साहित्यकार के रूप में अपने व्यक्तित्व को निखारने का काम भी किये हैं । यशस्वी साहित्यकार प्रभाकर माचवे ने कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, व्यंग्य,आलोचना, यात्रावृत्त, जीवनी, शब्द चित्र, संस्मरण, रिपोर्ताज, आदि सभी विधाओं में लिखा है । सभी विधाओं में अपने प्रयोगपरक दृष्टिकोण के कारण उनकी अलग पहचान बनी है । माचवे हिन्दी, मराठी और अँग्रेज़ी में समान अधिकार से लिखते रहे, फिर भी उनका रचनात्मक समर्पण हिन्दी के प्रति रहा है । हिन्दीतर क्षेत्र से आनेवाले साहित्यकारों में माचवे अकेले हैं, जो हिन्दी के लिए इतना स्पष्ट और संतुलित दृष्टि रखते हो । उनका कवि रूप "तार सप्तक" तक सीमित नहीं है । नई कविता के दौर में भी वे कविता

लिखते रहे । उनकी कविताओं का समग्र विश्लेषण, जो हिन्दी में अनिवार्य है, हुआ नहीं और यह शोध कार्य उस अभाव की पूर्ति ही है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध छः अध्यायों में विभाजित है । इसका पहला अध्याय "प्रभाकर माचवे के व्यक्तित्व और कृतित्व" शीर्षक से हैं । माचवे के व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं पर इसमें प्रकाश डाला गया है । प्रभाकर माचवे के शालीन व्यक्तित्व का पहला आकर्षक पक्ष उनके प्रेरणादायी स्वभाव है । माचव सादगी और सरलता के धनी रहे हैं । बहुभाषाविद् होने से भाषिक-संकीर्णता उनक जीवन कोश में उपलब्ध नहीं है । घुमक्कड होने के कारण उनकी भाषा-दृष्टि और जीवन बोध गहन है । उनके व्यक्तित्व के गुणों की चर्चा के उपरान्त, माचवे के कार्य क्षेत्रों पर भी प्रकाश डाला है । वे कई क्षेत्रों में सेवारत रहे । कई बार विदेश-यात्रायें भी की है । इन्दौर से प्रकाशित "चौथा संसार" के संपादक के रूप में कार्यरत रहते समय उनका देहवसान हुआ था । इस अध्याय में माचवे के "रचना-व्यक्तित्व" का भी विश्लेषण किया गया है । साहित्य की सभी विधाओं में वे लिखते रहे । हर विधा में कुछ नया ढूँढ लेना उनका उद्देश्य रहा है । विषय वैविध्य उनकी रचनाओं में लक्षित होता है । माचवे के व्यक्तित्व और कृतित्व को आकलित करने का प्रयास वस्तुतः इस अध्याय में हुआ है ।

"प्रयोगशील नयी कविता की पृष्ठभूमि और माचवे की तारसप्तकीय कवितायें नामक दूसरे अध्याय में "तार सप्तक" के महत्व एवं माचवे की तारसप्तकीय कविताओं का विश्लेषण किया गया है । माचवे

"तार सप्तक" के चौथे कवि हैं, उनकी 23 कवितायें इस में संकलित हैं । माचवे की इन कविताओं के रंग अनेक हैं, प्रकार भी बहुत हैं, विषय भी विविध हैं । प्रयोगवादी कविता की सभी प्रवृत्तियाँ माचवे की तारसप्तकीय कविताओं में उपलब्ध है । माचवे की तारसप्तकीय कविताओं के शिल्प-विधान की चर्चा "छठे अध्याय - माचवे की कविताओं का शैल्पिक अध्ययन" में किया गया है । माचवे के तारसप्तकीय कविताओं के समान, उनके "तारसप्तक" के वक्तव्य भी महत्वपूर्ण है । वक्तव्यों का कविता के संदर्भ में विश्लेषण भी इस अध्याय में किया गया है ।

"माचवे की कविताओं में सामाजिक विडम्बना के विविध आयाम" नामक तीसरे अध्याय में उनकी कविता में लक्षित सामाजिक विडम्बनात्मक स्थितियों का विश्लेषण है । माचवे, एक जनवादी कवि होने के कारण, उनकी कविता में जीवन की विभिन्न समस्याओं, विडम्बनाओं का प्रतिपादन है । उनमें आज के युग के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक आदि क्षेत्रों में व्याप्त असंगतियों का सन्निवेश है । माचवे की सामाजिक कविताओं में समाज के शोषित एवं पीड़ित वर्ग की यथार्थ झाँकी है । बेकारी, भुखमरी, लूट-मार, अशांति, शोषण आदि माचवे की कविताओं के विषय हैं । राजनीति की विडम्बनात्मक स्थितियों का भी विश्लेषण इस में हुआ है । कुल मिलाकर कवि दृष्टि की सामाजिकता का विश्लेषण इस अध्याय में हुआ है ।

चौथा अध्याय -"माचवे की व्यंग्य कविताओं" को लेकर लिखा गया है । माचवे व्यंग्यकार के रूप में काफी विख्यात है । उनकी वाक् पटुता भी प्रसिद्ध है । इसलिए ऐसे एक अध्याय की आवश्यकता महसूस हुई । इस अध्याय में सबसे पहले संक्षेप में व्यंग्य की प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला गया है । तदुपरान्त माचवे की व्यंग्य कविताओं का विषयानुसार विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है । सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक क्षेत्र में व्याप्त विषमताओं को एक व्यंग्यकार किस प्रकार देखता है, यही अध्याय का उद्देश्य है । माचवे की व्यंग्य कविताएँ आज भी प्रासंगिक है क्योंकि उनके केन्द्र में मनुष्य हैं ।

"माचवे की कविताओं में भारतीयता" नामक पाँचवें अध्याय में माचवे के व्यक्तित्व और कविताओं में भारतीयता के मूल-स्त्रोत को विश्लेषित करने का प्रयास है । भारतीयता एक महत्वपूर्ण मूल्य है । जीवन के प्रति माचवे की दृष्टि आस्थावादी हैं । माचवे ने हमेशा भारतीय मूल्यों को बढ़ावा दिया है और उसके चिह्न उनकी कविताओं में भरपूर मात्रा में उपलब्ध हैं । भारतीयता का दूसरा महत्वपूर्ण मूल्य है - आदर्शों की स्थापना । परंपरा, इतिहास और संस्कृति का समन्वित बोध भी भारतीयता का एक लक्षण हैं । माचवे की कविताओं में ये तत्व पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं । अपनी मिट्टी के प्रति माचवे का अनुराग है, अतः भारत के अनेक स्थानों, ऋतुओं, पर्वों एवं त्योहारों का भी चित्रण माचवे की कविताओं में मिलता है । भारतीय संस्कृति के अच्छे अध्येता होने के कारण, माचवे की कविताओं में सांस्कृतिक-मूल्यों की अभिव्यक्ति हुई है । इस अध्याय में ऐसी कविताओं का मूल्यपरक विश्लेषण किया गया है ।

"माचवे की कविताओं का शैल्पिक अध्ययन" नामक छठे अध्याय में माचवे की कविताओं के शिल्प पक्ष पर गौर किया गया है । माचवे ऐसे कवि हैं, जो कविता के शिल्पगत प्रयोग के प्रति सतत जागरूक है । "तार सप्तक" के कवियों में वह अकेले हैं, जो निरन्तर नवीनता और प्रयोग के प्रति इतना आग्रह रखते हैं । माचवे एक प्रयोगपरक कवि होने के कारण सॉनेट जैसे विदेशी छन्द को हिन्दी में प्रतिष्ठित किया है । रूबाई, लावनी, गीत, ग़ज़ल, षटपदी और गीतिनाट्य जैसे छन्दों और प्रणालियों को अपनाने के पीछे उनकी दृष्टि यह रही है कि नये कवि मुक्त-छन्द की रूढ़ियों में अपने को सीमित न कर लें । माचवे ने लोक गीत की धुन को अपनी कविता में स्थान दिया है । माचवे ने अलंकार रहित पंक्तियाँ भी लिखीं । अपनी कविता में माचवे ने जन भाषा के शब्दों, मुहावरों, टोन और लय को भी ग्रहण किया है । शिल्प परक दृष्टि से माचवे की कविता समृद्ध है । उस समृद्धि का यथाक्रम विवेचन इस अध्याय में हुआ है ।

उपसंहार में इन छह अध्यायों में प्रस्तुत विचारों को संक्षेप में पुनः प्रस्तुत करके, माचवे की कविता की प्रासंगिकता को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है । जब एक कवि की कविताएँ पुनर्मूल्यांकित होती है तो समय का महत्व सर्वाधिक है । आज इस कवि का महत्व क्या है, क्या उनकी कविता कालांकित है या नहीं । ऐसे सवाल निरंतर उठते हैं । अतः उपसंहार रूपी इस संक्षिप्तकार अध्याय में प्रभाकर माचवे की कविता की मूल्यवत्ता को पुनः दोहराकर उनका मूल्यांकन किया गया है ।

यह शोध कार्य कोचीन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्रोफसर डा. ए. अरविन्दाक्षन जी के निर्देशन में संपन्न हुआ है। अपने विद्वत्तापूर्ण सुझाव और बहुमूल्य उपदेश के सहारे मेरे मार्गनिर्देशन में उन्होंने जो महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है, उसकी झलक मेरे स्मृति-पटल में सदा के लिए रहेगी। उनके सामने नतमस्तक होकर अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

इस शोध कार्य में माचवे जी के परिवार के सदस्यों के प्रति मैं चिरऋणी हूँ। माचवे जी के सुपुत्र श्री असंग माचवे जी ने अपने व्यस्त जीवन से समय निकालकर मेरी सहायता की है। स्वर्गीय माचवे की कई अप्रकाशित रचनाएँ उनकी उदारता के कारण मुझे प्राप्त हुई। उनके स्नेह और सौहार्द सदैव स्मरण के योग्य है। श्रीमती माचवे जी के प्रति भी मैं आभारी हूँ, जिनके स्नेहपूर्ण व्यवहार और सद्भाव के लिए मैं धन्य रहूँगा।

अपनी शोध-यात्रा के दौरान मुझे डा. कमल किशोर गोयनका {प्रोफसर, दिल्ली विश्वविद्यालय} और सौमित्र मोहन {केन्द्रीय साहित्य अकादमी, नई दिल्ली} आदि से भी मिलने का सुअवसर मिला, जिनके सुझावों ने मेरा पथ-प्रदर्शन किया है। एतदर्थ उनके प्रति भी कृतज्ञ हूँ।

विभाग के आचार्य और अध्यक्ष डा. एम. ईश्वरी जी एवं भूतपूर्व अध्यक्ष डा. पी. वी. विजयन के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ । विभाग के अन्य अध्यापकों के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ । एरणाकुलम महाराजास कॉलिज के डा. के. जी. प्रभाकरन जी और डा. के. के. वेलायुधन के प्रति भी मैं आभारी हूँ, जिन्होंने कई प्रकार से इस शोध कार्य में, मेरी सहायता की है । तेवरा सेक्रड हार्ट कालेज के हिन्दी विभाग के अध्यापकों के प्रति भी मैं ऋणी हूँ, जो इस शोध कार्य की पूर्ति के लिए सदा मुझे प्रोत्साहन देते रहे ।

विभाग की पुस्तकालय की अध्यक्षा श्रीमती कुं क्कावुट्टी तंपुरान और सहायक पी. ओ. आन्टनी और उन सभी मित्रों के प्रति मैं विशेष रूप से आभारी हूँ, जिन्होंने शोध-कार्य के सामग्री-चयन में काफी मदद की है । केन्द्रीय साहित्य-अकादमी, दिल्ली के पुस्तकालय और सार्वजनिक पुस्तकालय , एरणाकुलम (कोचीन) के अधिकारियों के प्रति भी आभारी हूँ । इस शोध प्रबंध को यथा संभव त्रुटिहीन बनाने का प्रयास मैं ने किया है, फिर भी कुछ न कुछ कमियों का आना स्वाभाविक है । उन कमियों के लिए क्षमाप्रार्थी हूँ ।

कोचीन -22 पौलोस. के. के.

10. 03. 1995.

विषय - सूची

पृष्ठ-संख्या

पुरोवाक् I - VII

अध्याय एक 1 - 53

प्रभाकर माचवे व्यक्तित्व और कृतित्व

मध्यप्रदेश की सांस्कृतिक विरासत - माचवे का परिवार - राष्ट्रीय मजदूर संघ के मंत्री - माधव कालेज, उज्जैन के प्राध्यापक - आकाशवाणी में नौकरी - केन्द्रीय साहित्य अकादेमी में सचिव - भारतीय भाषा परिषद, कलकत्ता के निदेशक - व्यक्तित्व के कुछ अनूठे पक्ष - सहज जीवन के धनी - हिन्दी प्रेम - भ्रमणशील विश्वकोश - बहुभाषाविद्-चित्रकार - प्रेरणादायी व्यक्तित्व - अथक परिश्रम - ज़रूरत मंदों के सहायक - भारतीय लेखक - यायावर - माचवे का कृति व्यक्तित्व - उपन्यासकार माचवे - माचवे की कहानियाँ-एकांकीकार माचवे - व्यंग्य लेखन - आलोचक माचवे - अनुवादक - संपादक माचवे - संपादित ग्रंथ - माचवे की अकाल्पनिक रचनाएँ - दार्शनिक ग्रंथ - यात्रा-वृत्त - अभिनन्दन ग्रंथ - चित्रकार ।

अध्याय दो 54 - 92

प्रयोगशील कविता की पृष्ठभूमि और माचवे की तारसप्तकीय कवितायें

"तारसप्तक" का आयोजन - "तारसप्तक" का नामकरण -

पृष्ठ संख्या

"तारसप्तक" के प्रकाशन का उद्देश्य - "तार सप्तक" और आधुनिकता - प्रयोगवाद काव्य की प्रवृत्तियाँ - वैयक्तिकता - बौद्धिकता - स्थितियों का हल्का-फुल्कापन और व्यंग्यात्मकता की गहराई - यथार्थ की सघनता - अनुभूति की प्रामाणिकता - यांत्रिकता का विरोध - माचवे की तारसप्तकीय कवितायें - माचवे की काव्य-संबंधी मान्यताएँ - बौद्धिकता - वैयक्तिकता - व्यंग्य दृष्टि - यथार्थबोध - मानवतावादी दृष्टि - प्रकृतिपरक कवितायें - यांत्रिकता का विरोध - माचवे की तारसप्तकीय कविताओं की प्रासंगिकता ।

अध्याय तीन 93 - 134

माचवे की कविताओं में सामाजिक विडम्बना के विविध आयाम

नयी कविता में विडंबना का प्रतिफलन - नयी कविता सामान्य भूमिका - नयी कविता की प्रवृत्तियाँ - लघु मानव की प्रतिष्ठा - क्षण का महत्वा - अनास्था, संत्रास एवं संशय - लोकोन्मुखता - प्रखर युग बोध - विसंगति और विडम्बना - माचवे की कविताओं में सामाजिक विडंबना की गहराती स्थितियाँ - सामाजिक विडंबना - राजनीतिक विडंबना के संकेत - सांस्कृतिक विडंबना के चित्र - धार्मिक विडम्बना का परिदृश्य ।

पृष्ठ संख्या

अध्याय चार 135 - 185

माचवे की व्यंग्य कविताओं का विश्लेषण

व्यंग्य अनचाही स्थितियों से उत्पन्न मानवीय दृष्टि - विट - ह्यूमर - सटायर - आइरनी - व्यंग्य का प्रभाव - हिन्दी कविता और व्यंग्य की परंपरा - माचवे और व्यंग्य - माचवे का व्यंग्य की ओर रुझान - माचवे की काव्येतर व्यंग्य रचनाएँ - बेगुनी पकौड़ियाँ - विसंगति - खरगोश के सींग - माचवे की व्यंग्य कविताएँ - सामाजिक व्यंग्य कविताएँ - बेकारी की समस्या पर व्यंग्य - शोषण एवं असमत्व पर व्यंग्य - मद्यपान - पूँजीवादी व्यवस्था पर व्यंग्य - नैतिक ह्रास पर व्यंग्य - मध्यवर्गीय जीवन की विडम्बना पर व्यंग्य - संगठित शक्ति पर व्यंग्य - राजनीतिक व्यंग्य कविताएँ - अवसरवादी और मुखौटे बाज़ नेताओं पर व्यंग्य - नेताओं के कथनी और करनी पर व्यंग्य - जोड़-तोड़ की राजनीति पर व्यंग्य - सरकारी की अनैतिकता पर व्यंग्य - भाई-भतीजावाद पर व्यंग्य - नेताओं की अवसरवादिता पर व्यंग्य - राजनीतिज्ञों के ढोंग एवं वाक्पटुता पर व्यंग्य - राजनीति के बिकाऊ संस्कृति पर व्यंग्य - धार्मिक व्यंग्य कवितायें - विवेकशून्य धर्मान्धता पर व्यंग्य - विभिन्न धर्मावलंबी नेताओं पर व्यंग्य - धार्मिक ढकोसलों पर व्यंग्य - आध्यात्मिक अवमूल्यन एवं

पृष्ठ संख्या

शोषण पर व्यंग्य - अन्ध-श्रद्धालुओं पर व्यंग्य - साहित्यिक व्यंग्य कविताएँ - साहित्यिक प्रवृत्तियों पर व्यंग्य - साहित्य में प्रचलित भ्रष्टाचार पर व्यंग्य - संपादकों पर व्यंग्य - साहित्यकारों के कथनी और करनी पर व्यंग्य - साहित्य की विवेकहीनता पर व्यंग्य - सांस्कृतिक व्यंग्य कविताएँ - सभ्यता की कृत्रिमता पर व्यंग्य - मनुष्य की हिंसा वृत्ति पर व्यंग्य - मशीनी सभ्यता पर व्यंग्य - अन्धानुकरण की प्रवृत्ति पर व्यंग्य ।

अध्याय पाँच 186 - 220

माचवे की कविताओं में भारतीयता

भारतीयता के अग्रणी पुरुष - संस्कृति के उन्नायक - समन्वय की प्रवृत्ति - भारतीय मूल्यों के प्रति आस्थावादी दृष्टि - परंपरा, इतिहास और संस्कृति का समन्वित बोध - पारमार्थिकता और भौतिकता का समन्वय - कविताओं का प्रकृति संदर्भ और भारतीयता - पर्वों, त्योहारों का संकेत और भारतीय दृष्टि - भारतीय दर्शन के सिद्धांत - भारतीय परंपरा का आख्यान - "विश्वकर्मा" - भारतीय आदर्शों की स्थापना - स्वीकार की भावना ।

पृष्ठ संख्या

अध्याय छह — 221 - 263

माचवे की कविताओं का शैल्पिक अध्ययन

माचवे की कविता शिल्प की संभावनाएँ - माचवे की शिल्प-संबंधी मान्यता - माचवे की कविता का शिल्प-विधान - माचवे की काव्य भाषा - गीति नाट्य या संलाप का प्रयोग - क्लासिकी भाषा - भाषा की सहजता और व्यंग्यात्मक भाषा - लोकगीत के प्रभाव - भिन्न-भाषा शब्दावली - मुहावरे और लोकोक्ति का सही सन्निवेश - छन्द विधान - रुबाई का प्रयोग - षट्पदी का प्रयोग - लावनी का प्रयोग - मुक्तछन्द - सॉनेट - रूपपरक प्रयोग परकता - संस्कृत में दिये गए शीर्षक - अंग्रेज़ी शीर्षकों के कुछ उदाहरण - शीर्षक के मुद्रण में वैचित्र्य {प्रयोगपरकता} - विभिन्न भाषाओं से उद्धरण देने की प्रवृत्ति - बिंब योजना - माचवे की बिंब-संबंधी दृष्टि - दृश्यबिंब - श्रव्य बिंब - घ्राण बिंब - स्पर्श बिंब - प्रतीक विधान - प्राकृतिक प्रतीक - सामाजिक प्रतीक - पौराणिक प्रतीक - मिथक काव्य ।

उपसंहार — 264 - 272

संदर्भ ग्रंथ-सूची — 273 - 283

अध्याय एक

प्रभाकर माचवे व्यक्तित्व और कृतित्व

मध्यप्रदेश की सांस्कृतिक विरासत :-

मध्यप्रदेश किलों और दुर्गों से भरा पडा एक विषम भूखंड है । कोयले से लेकर हीरे और पन्ने तक की खानें यहाँ पाई जाती हैं । नर्मदा मध्यप्रदेश को प्राण देती है । उत्तरप्रदेश में संस्कृति का केन्द्र इलाहाबाद है तो मध्यप्रदेश में जबलपुर है । यहाँ सभी कुछ, हरे-भरे मैदान, ऊँचे पर्वत, गहरी-नदियाँ और घाटियाँ और रेगिस्तान जैसा उजडा हिस्सा भी पाये जाते हैं । क्षेत्रफल के हिसाब से मध्यप्रदेश भारत का सबसे बडा राज्य हैं ।

मध्यप्रदेश की साहित्यिक परंपरा बहुत ही प्राचीन है । यह राज्य अनेक साहित्यिक प्रतिभाओं का घर रहा है । अगस्त्य मुनि का नाम इस प्रदेश से जुडता है । कालिदास पूरी तरह मध्यप्रदेश के कवि हैं । संस्कृत के प्रसिद्ध नाटककार राजशेखर ने जबलपुर में रहकर कई ग्रंथों की रचना की थी । संस्कृत के विख्यात कवि भवभूति, दंडी आदि मध्यप्रदेश के ही निवासी हैं । अपभ्रंश, प्राकृत और पाली भाषाओं के कई प्रसिद्ध कवियों का जन्म-स्थान यही प्रदेश है । बौद्धधर्म के प्रसिद्ध दार्शनिक नागार्जुन इस प्रदेश के हैं । उनके पालि में लिखे अनेक बौद्ध ग्रंथों का प्रकाशन मध्यप्रदेश में ही हुआ है ।

हिन्दी साहित्य के विकास में सब से बडा योगदान मध्यप्रदेश का ही रहा है । अष्टछाप के कवियों में कुम्भनदास और

चतुर्भुजदास जबलपुर के निवासी थे । हिन्दी के विख्यात कवि भूषण और मतिराम के बड़े भाई चिन्तामणि का जन्म मध्यप्रदेश में हुआ था । आचार्य केशवदास और महाकवि बिहारी भी मध्यप्रदेश के कवि हैं । वैयाकरणिक कामताप्रसाद गुरु जबलपुर के निवासी थे । माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान, डा. रामकुमार वर्मा, भवानीप्रसाद मिश्र, गजानन माधव मुक्तिबोध, गिरिजाकुमार माथुर, शिवमंगल सिंह सुमन आदि अनेक कवि मध्यप्रदेश के हैं, जिन्होंने अखिल भारतीय ख्याति पाई । ग्वालियर मध्यप्रदेश का एक महत्वपूर्ण शहर है । झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई ने यहीं से युद्ध की घोषणा की थी । इसी शहर में प्रभाकर माचवे का जन्म 26 दिसम्बर 1917 को, एक साधारण परिवार में हुआ था । माचवे माता-पिता की अन्तिम एवं चौदहवीं संतान थी ।

माचवे का परिवार :-

उनके पिता बलवंत-विट्टल माचवे रेलवे से रिटायर होकर डाकखाने में थे । उनकी मृत्यु जल्दी ही हो गई । माचवे की माता का नाम लक्ष्मीबाई थीं । जब पिता की मृत्यु हुई, तब प्रभाकर माचवे आठ वर्ष के थे । पिता संस्कृत-प्रेमी, अनुशासन प्रिय व्यक्ति थे । माँ धार्मिक थीं । माचवे तेरह वर्ष की आयु में मैट्रिक करके क्रिश्चियन कालेज, इन्दौर गये । 17 वर्ष की आयु में दर्शन, इतिहास, अंग्रेजी से बी.ए. किया । आगरा कालेज से 19 वर्ष की आयु में एम.ए. (दर्शनशास्त्र) प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ । माचवे ने एम.ए. के साथ साथ "साहित्य-रत्न" की परीक्षा भी पास की ।

सन् 1957 में आगरा-विश्वविद्यालय से "हिन्दी-मराठी निर्गुण संत-काव्य" पर पी.एच.डी. प्राप्त हुई है । इसी बीच 1945 में उन्होंने अंग्रेजी में एम.ए. किया ।

विद्यार्थी जीवन से ही माचवे देश के आन्दोलनों में सक्रिय भाग लेते रहे । माचवे की पहली कविता मराठी में प्रकाशित हुई । 1935 में प्रेमचन्द ने "हंस" में पहली कहानी छापी । माचवे का पहला निबंध "नव्यकला में मनोविज्ञान" निराला ने "सुधा" में छापा । इसी समय महादेवी जी ने एक कहानी "चाँद" में प्रकाशित की । सन् 1937 में "जैनेन्द्र के विचार" नामक पहली पुस्तक नाथुराम प्रेमी ने बंबई से छापी । तब से निरंतर उनकी लेखनी अविराम गति से चलती रही । बंबई कांग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष डा. राजेन्द्र प्रसाद के भाषण का अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद किया । 1938 में अज्ञेय ने "विशाल भारत" में "दो इम्प्रेशनिस्ट कविताएँ" छापीं । सन् 1939 में माचवे गाँधीजी के संपर्क में आये और आधुनिक कवि ने स्वदेशी वेशभूषा को स्वीकार किया । 18 नवंबर 1940 को सेवाग्राम में महात्मागाँधी के निर्देश पर शरद पारनेरकर के साथ उनका विवाह हुआ और एक ऐसी जीवन-संगिनी मिली, जो कवि, विचारक और मस्तमौला प्रभाकर का ध्यान रखती रहीं और उनकी प्रेरणास्रोत रहीं । प्रभाकर माचवे का विवाह जब गाँधीजी ने सेवाश्रम में कराया, तब वे माधव कॉलिज, उज्जैन में दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक थे । श्री जगदीश चतुर्वेदी का कथन है - "माचवे जी की अध्ययन पिपासा को अनवरत बनाये रखने में श्रीमती माचवे का सहयोग सर्वोपरि रहा है ।"[1] माचवे कई क्षेत्रों में सेवारत

---

1. "भाषा" - दिसम्बर 1991, - पृ. 12, "प्रभाकर माचवे कवि, चिंतक और अध्येता" शीर्षक लेख से ।

रहे हैं । जैसे उनकी प्रतिभा बहुमुखी रही वैसा ही उनका जीवन बहुमुखी रहा ।

राष्ट्रीय मज़दूर संघ के मंत्री :-

जून 1937 को पहले-पहल नौकरी के क्षेत्र में प्रविष्ट हुए और राष्ट्रीय मज़दूर संघ, इन्दौर के मंत्री नियुक्त किये गये । इसके संबंध में स्वयं माचवे का कहना है -"हमारा ज्यादा ध्यान पढ़ने में लगता था, पर जब पढ़ लिये तो सोच आयी कि अब क्या करें । उस वक्त माहौल ऐसा था कि हर नौजवान न सिर्फ जागरूक था, बल्कि संग्राम में कूदना भी चाहता था । मैं भी कुछ करना चाहता था । सो चालीस रुपये माहवार पर राष्ट्रीय मज़दूर संघ में सेक्रेटरी हो गया ।"[1] माचवे ने अपनी आत्मकथा "फ्राम सेल्फ टू सेल्फ" में भी इसका जिक्र किया है - "मैं ने तन-मन से, एक युवा-देशभक्त के आदर्शोन्मुख उत्साह के साथ, इस नये कार्य के लिए अपने आप को लगा दिया । मैं ने कई अद्भुत कार्यों की प्रतीक्षा की, लेकिन आदर्श और यथार्थ का अन्तराल बढ़ता गया । संसार में परिवर्तन लाने की मेरी अधीरता और मेरे सामने खड़ी पहाड़ जैसी कठिनाइयों ने मुझे सिसिफस (पागल) बना दिया ।"[2]

---

1. धर्मयुग, जुलाई 1991, पृ. 32, "डा. प्रभाकर माचवे - एक उन्मुक्त ठहाके का खोना" शीर्षक से ।
2. प्रभाकर माचवे - "फ्राम सेल्फ टू सेल्फ" संस्करण-1976, पृ. 28

" I threw myself body and soul in to this new work, with the idealistic zeal of a young patriot. I expected miracles, but the chasm between the ideal and the real was widening. The impatient desire to change the world with in me and the mountains of misery outside me turned

इस कार्य में रुचि न होने के कारण उन्होंने अक्तूबर 1937 में इस्तीफा दे दिया। माचवे लिखते हैं - "इधर हमें सेक्रेटरी के तौर पर अहमदाबाद भेजा गया। फिर हम ने बड़ौदा में हड़ताल करवायी। यह हड़ताल मालिक-मजदूर के बीच बातचीत होने के मुद्दे को लेकर थी। पर यह काम हमें कुछ धीमा लग रहा था। तो हमने छोड़ दिया। उसके बाद हम उज्जैन के माधव कॉलिज में लेक्चरर हो गये।"[1]

माधव कॉलिज, उज्जैन के प्राध्यापक :-

माचवे के सेवाकाल का दूसरा दौर माधव कॉलिज उज्जैन में दर्शन के प्राध्यापक होने के साथ प्रारंभ होता है। माचवे कॉलिज के दर्शनशास्त्र विभाग में "निगमनात्मक-तर्कशास्त्र" विषय पढ़ाते थे। माचवे एक सफल और लोकप्रिय अध्यापक थे। उन्होंने माधव कॉलिज में दर्शनशास्त्र के साथ-साथ अंग्रेज़ी भी पढ़ाया। बहुत से लोगों ने उनकी अध्यापन-शैली का लाभ उठाया है। आज के यश प्रसिद्ध साहित्यकार एवं कवि माचवे के शिष्य थे। प्रकाशचन्द गुप्त, नरेश मेहता, हरिनारायण व्यास, मुक्तिबोध, जगदीश चतुर्वेदी, श्याम परमार आदि उनके विद्यार्थी थे, पर माचवे सब को अपना मित्र मानते थे।

बहुत से विद्यार्थी माचवे के गुणों से प्रभावित रहे हैं और उनके साथ उन्होंने व्यक्तिगत संपर्क स्थापित किया है। बहुत से विद्यार्थी

---

1. धर्मयुग, जुलाई 1991 - पृ. 32 (पद्मा सचदेव का लेख)

उनको आदर्श गुरु मानते थे । माचवे की प्रेरणा से ही कुछ विद्यार्थियों ने मिलकर 1946 में "हिन्दी साहित्य परिषद", उज्जैन की स्थापना की थी । इस संस्था ने हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए बहुत से काम किये । "हिन्दी साहित्य परिषद" उज्जैन वहाँ के अहिन्दी भाषा-भाषियों को, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की परीक्षाओं के लिए तैयार करते थे । स्वयं माचवे इन कक्षाओं में अध्यापन कार्य करते थे । माचवे ने शिवमंगल सिंह सुमन को भी अध्यापन कार्य के लिए प्रेरित किया ।

माचवे जी की सरलता, सादगी और सौम्य स्वभाव अनेक विद्यार्थियों के लिए प्रेरणा स्रोत रहा है । माचवे की विद्वत्ता और समीक्षा-दृष्टि के पैनेपन का प्रभाव उनके विद्यार्थियों पर पड़ा है । माचवे ने अपने विद्यार्थियों को सदा ऐसा मार्ग दर्शाया है, जो विवेक और विनय का है । सदा ऐसी शिक्षा दी है, जिससे नीर-क्षीर का सही ज्ञान हो सके । अध्यापक के रूप में उनकी लोकप्रियता के बारे में श्री जगदीश नारायण वोरा ने कहा है - "माधव कॉलेज में उनकी लोकप्रियता इतनी बढ़ी कि परीक्षा-काल में उनका घर "पोसाल" बन जाता था । सबेरे से साँझ तक विद्यार्थियों तथा विद्यार्थियों का जमघट बना रहता, उन में अमीर-गरीब, हरिजन-सवर्ण, दर्शन, अंग्रेज़ी, हिन्दी मराठी, पढ़नेवाले सब शामिल होते ।"[1]

माधव कॉलेज में प्रभाकर माचवे ही ऐसे प्राध्यापक थे, जो दो विषय अनायास ही पढ़ाते थे । अपनी आत्मकथा में माचवे ने लिखा है -

---

1. अक्षर-अर्पण, संस्करण-1977, पृ. 19 - "प्रभाकर माचवे एक बहुरंगी-व्यक्तित्व" शीर्षक लेख से ।

"हज़ारों लड़के और लड़कियाँ, हिन्दू और मुसलमान, जो अधिकतर मालवी बोलते थे और ज्ञान के इच्छुक थे, मेरी स्मृति की खिड़कियों से गुज़र रहे थे। कुछ ने मेरे किराये के मकान के अन्दर प्रवेश किया और कुछ हृदय के अन्दर जा बैठे।"[1]

आकाशवाणी में नौकरी :-

सन् 1948 में माचवे ने अध्यापन कार्य छोड़कर, आकाशवाणी नागपुर में नौकरी स्वीकार कर ली। इसका कारण यह था कि माचवे की उन्मुक्त विचारधारा से, तत्कालीन ग्वालियर रियासत की नौकरशाही रुष्ट थी। इसलिए कई वर्षों से उनकी वेतन-वृद्धि रुक सी गयी थी। अध्यापन कार्य छोड़ने के पश्चात् माचवे जी को उन्मुक्त वातावरण में कला-साधना का समुचित अवसर प्राप्त हुआ और वे साहित्य और कला की ऊँचाईयों को छूने लगे। आकाशवाणी के नागपुर, इलाहाबाद, दिल्ली, लखनऊ, आदि केन्द्रों में माचवे ने सेवा की है। नागपुर-दिल्ली रेडियो-स्टेशनों में रहते समय, अमेरिका के विस्कांसिन विश्वविद्यालय में तीन साल के लिए विज़िटिंग प्रोफ़ेसर बनकर चले गये थे। कैलिफोर्निया में भी वे अतिथि-अध्यापक बन गये।

---

1. प्रभाकर माचवे - "फ्राम सेल्फ टू सेल्फ" - पृ. 34, संस्करण - 1976.

"" Thousands of faces of boys and girls, of Hindus and Muslims and mostly Malwi speaking young aspirants of knowledge pass before the window of my memory. Some extened the doors of my little rented house, some went deeper into my heart".

माचवे ने अमेरिका में हिन्दी, भारतीय साहित्य और गांधी-दर्शन का अध्यापन किया। आकाशवाणी के अपने अनुभवों पर माचवे ने लिखा है - "मैं ने रेडियो पर भाषण देना और पुस्तकों की समीक्षा लिखना शुरू किया। रेडियो पर मेरा पहला भाषण 31 दिसंबर 1940 में, पन्द्रह मिनट के लिए था, जो समकालीन हिन्दी साहित्य पर था। मेरे मित्र गिरिजाकुमार माथुर आकाशवाणी में थे। कवि सम्मेलनों और साहित्य-चर्चाओं में भाग लेने के लिए मुझे बुलाया जाता था। इन सब अनुभवों ने मेरी तीसरी नौकरी में बड़ी मदद की। मैं ने छः साल तक रेडियो में काम किया।"[1] छह वर्ष की सेवा के उपरान्त माचवे ने आकाशवाणी से त्यागपत्र दे दिया। आकाशवाणी का उनका अनुभव माचवे को सुमित्रानन्दन पंत के निकट लाया और इलाहाबाद में जो जीवन उन्होंने बिताया, वह "परिमल" पत्रिका के बन्धुओं के बीच बीता। इसी बीच सन् 1942 में श्री शहीद लतीफ और वात्स्यायन के प्रयत्नों से दिल्ली में फासिस्ट विरोधी लेखक-सम्मेलन का आयोजन हुआ था। इस में सभी वामपंथियों ने भाग लिया। माचवे ने इस सम्मेलन में आधुनिक मराठी उपन्यासों

---

1. प्रभाकर माचवे - "सेल्फ टु सेल्फ", संस्करण-1976, पृ. 57.
" I had also started doing book reviews and talks on the radio. My first Hindi talk was for 15 minutes from Delhi on 31 December 1940, reviewing the Hindi literature of that year. My friend Girija Kumar Mathur was on AIR, Lucknow, and he called me to participate in poet's gatherings and literary discussions. All this experience helped me in my third job. xxx Ispent six years on the radio".

पर भाषण दिया । इस प्रकार सन् 1948 तक उनका जीवन लेखन और अध्ययन के बीच गुजरा । आकाशवाणी में प्रवेश के पूर्व माचवे ने महापंडित राहुल सांकृत्यायन के साथ, अंग्रेजी-हिन्दी शासन शब्द-कोश का संपादन किया था । इसके लिए माचवे भारत के अनेक प्रांतों में घूमकर भाषा-शास्त्रियों तथा कोशकारों से मिले और हिन्दी के मिशनरी की भाँति, हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के लिए यह कार्य किया था । इस कोश के लिए माचवे ने एक पैसा पारिश्रमिक नहीं लिया । इस कोश निर्माण में शुद्ध संस्कृत और सलीस हिन्दुस्तानी के दोनों छोरों को छोडकर मध्यम मार्ग का सिद्धांत अपनाया गया था । इस संबंध में डा. कैलाश चन्द्र भाटिया का कथन उल्लेखनीय हैं - " राहुल जी से उनका प्रगाढ़ संबन्ध रहा था । यहाँ यह उल्लेखनीय है कि राहुल जी ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन में डा. माचवे तथा डा. विद्यानिवास मिश्र के साथ कार्य किया । माचवे जी ने राहुल जी के साथ "शासन शब्द कोश" कई प्रदेशों में घूम-घूमकर तैयार किया । माचवे जी में जो काम करने की त्वरा प्रस्फुटित हुई, उसमें निश्चित रूप से राहुल जी का योगदान है ।"[1]

केन्द्रीय साहित्य अकादमी में सचिव के रूप में :-

सन् 1954 में साहित्य अकादमी की स्थापना हुई थी । पं. जवाहरलाल नेहरु और डा. राधाकृष्णन् ने सितम्बर 1954 में प्रभाकर माचवे को साहित्य अकादमी के लिए उपसचिव चुना । तब कार्यकारिणी समिति में जैनेन्द्र कुमार, बनारसीदास चतुर्वेदी, काका कालेलकर, उमा शंकर जोशी

---

1. भाषा - दिसम्बर 1991, पृ. 9-10 - बहुभाषाविद् और साहित्यकार - डा. प्रभाकर माचवे - शीर्षक लेख से ।

जैसे लेखक थे । माचवे की सभी भाषाओं में रुचि थी, विशेषकर हिन्दी के प्रति । इसलिए भारत की साहित्य अकादमी के पत्रों और कामकाज की भाषा हिन्दी होनी चाहिए, ऐसा विचार माचवे का था और उन्होंने यह सुझाव भी दिया था । लेकिन कुछ अंग्रेज़ी प्रेमियों के कारण ऐसा नियम वे लागू नहीं कर सके । माचवे जी को इसका बड़ा दुःख था ।

प्रभाकर माचवे साहित्य अकादमी की ओर से अलग-अलग भाषाओं के लेखकों के शिविरों का आयोजन किया करते थे । अकादमी के रहते हुए उन्होंने विभिन्न देशों, प्रदेशों की यात्राएँ कीं । भारतीय साहित्य की एकता के लिए विभिन्न प्रदेशों के नये पुराने लेखकों से संपर्क किया । पहला "हूज़ हू ऑफ इन्डियन राइटर्स" निकाला, जो आज भी प्रामाणिक है ।

प्रभाकर माचवे साहित्य अकादमी के केवल सचिव नहीं थे । वे भारतीय भाषाओं के साहित्य की नवीन गतिविधियों तक का परिचय भी पाते जाते थे । अधिकाधिक भाषाओं की चुनी हुई कविताएँ, सूक्तियाँ, ग्रंथों और लेखकों के नाम उनकी स्मृति में जम जाते थे । जिस प्रदेश में जाते, वहाँ की भाषा की बातें साधिकार कहते थे । भारत की अधिकांश भाषाओं के साहित्य पर अपनी जानकारी बढ़ाने की कोशिश वे हमेशा करते थे । इतनी जिज्ञासा, श्रद्धा और भारतीय वाङ्मय की साधना किसी भी अन्य साहित्यकार में मुश्किल से मिलती है । हिन्दी साहित्यकारों में माचवे में यह विशेषता रही है, इसलिए सभी भारतीय भाषाओं के क्षेत्रों में माचवे जी के मानसिक बन्धु और शिष्य हैं ।

साहित्य अकादमी के पदाधिकारी होने के नाते वे राष्ट्र के बहुत से साहित्यिक समारोहों में विदेश जाते थे । इसलिए एशियाई और यूरोप साहित्य के बारे में वे बहुत कुछ जानते थे । साहित्य अकादमी में रहते समय देश और विदेशों में उनके बहुत से मित्र थे । माचवे अपने मित्रों से मिलना और उनके साथ वार्त्तालाप करना बहुत पसन्द करते थे ।

जब माचवे साहित्य अकादमी के सचिव बने, तब सभी भारतीय भाषाओं के भाग्य खुल गये और साहित्य अकादमी भी अपने ध्येय की ओर सफलता से आगे बढ सकी । अकादमी के सचिव पद पर होते हुए भी, उस उच्चस्थान ने उनमें किसी प्रकार के "अहं" का निर्माण नहीं किया था । डा. चन्द्रकांत बांदिवडेकर का कथन है - "दिल्ली में साहित्य अकादमी में डा. माचवे से मिलना एक अच्छा बौद्धिक अनुभव है । डा. माचवे के कारण साहित्य अकादमी अपना नाम सार्थक करती हैं ।[1]" साहित्य अकादमी के अनुभवों के बारे में माचवे ने अपनी आत्मकथा में यों लिखा है -"साहित्य अकादमी ने करीब 400 पुस्तकों का प्रकाशन किया, जिन में अंग्रेज़ी और मूल रचनाओं के अतिरिक्त, भारतीय और विदेशी भाषाओं से अनूदित रचनाएँ भी शामिल थीं । लेकिन साहित्य अकादमी के लिए महत्वपूर्ण कार्य जो मैं ने किया, उनमें केशवसुत और कबीर नामक दो जीवनी, कई लेख, पुस्तक समीक्षाएँ और भारतीय साहित्य का संपादन भी था । मैं साहित्य अकादमी के प्रशासक

---

1. मारुतिनन्दन पाठक (संपादक) - "डा. प्रभाकर माचवे सौ दृष्टिकोण" प्रथम संस्करण-1988, पृ. 83, "क्यों न वे आत्मकथा लिखें" शीर्षक लेख से ।

मात्र नहीं था, बल्कि इस नयी संस्था के लिए देश-भर के लेखकों की सद्भावनाओं को जुड़ाने वाला भी था ।[1]

इस तरह हम देखते हैं कि सन् 1954 में केन्द्रीय साहित्य अकादमी की स्थापना के साथ, माचवे प्रथम सहायक सचिव के रूप में सेवारत रहे । बाद में 1971 से 1975 तक केन्द्रीय साहित्य अकादमी के सचिव के रूप में सेवारत रहे । 58 वर्ष की आयु में, 13 फरवरी 1975 को स्वेच्छा से सेवा निवृत्त हुए । इसी बीच कई देशों की यात्रा भी की हैं । अमेरिका, यूरोप, श्रीलंका और पश्चिमी जर्मनी की यात्रा आदि विशेष उल्लेखनीय हैं । इसके अतिरिक्त सन् 1964 से 66 तक संघ लोक सेवा आयोग में विशेष

---

1. फ्राम सेल्फ टू सेल्फ - प्रथम संस्करण -1976, पृ. 83 - 84

" The Akademi has published nearly 400 books in all Indian languages, including English, originals as well as Trianslation from one Indian language to another and from foreign languages in to Hindi xxxxx The original work I did for the Akademi Consisted of two monograph's - Keshavasut and Kabir-several articles and book reviews, and the editing of Indian Literature All this to indicate that I was not a mere administration, but gathered good will from writers all over the country for this new institution".

भाषाधिकारी के पद पर रहे हैं । सन् 1976-77 में भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान में, माचवे दो वर्ष के लिए फैलो बनकर गये थे ।

भारतीय भाषा परिषद्, कलकत्ता में निदेशक :-

साहित्य अकादमी छोड़ने के बाद माचवे सीताराम सक्सेरिया के बुलावे पर भारतीय भाषा-परिषद, कलकत्ता चले गये । वहाँ भी उन्होंने भारतीय साहित्य की सेवा की । कलकत्ता माचवे के लिए नयी जगह नहीं थी । सन् 1938 से वे कलकत्ता आता रहे थे, पर्यटक के नाते, साहित्य अकादमी के कार्यकर्ता के नाते और कई संगोष्ठियों में भाग लेने के लिए भी वे कलकत्ता आए हुए थे ।

कलकत्ता में माचवे को कई ज्ञानी, गुणी लोग लेखक-कलाकार साथी मिले । उनमें सीताराम सक्सेरिया और भगीरथ कानोडिया प्रमुख थे । इन सब के अतिरिक्त कलकत्ते में हिन्दी के पुराने नये लेखक और पत्रकार मिले । माचवे के अपने शब्दों में - "कलकत्ते में हिन्दी के पुराने-नये लेखक और पत्रकार भी मिले, जिन से मैं ने बहुत कुछ सीखा और पाया । किनके-किनके नाम गिनाऊँ ।"[1]

---

1. परिषद-समाचार - जुलाई-अगस्त-सितम्बर 1991 (संयुक्तांक) - पृ. 29 "कलकत्ता में साढे छह वर्ष" शीर्षक लेख से ।

हिन्दी और बंगला लेखकों के अतिरिक्त कलकत्ता में अनेक अन्य भाषा-भाषी साहित्य संस्थाओं और कार्यकर्ताओं से माचवे का संबंध था। भारतीय संस्कृति परिषद के नाम से एक संस्था कलकत्ता में थी। माचवे ने भारतीय संस्कृति परिषद को एक आदर्श स्मृतिग्रंथ प्रकाशित करने की प्रेरणा दी और स्वयं कष्ट उठाया। इसके फलस्वरूप दो जिल्दों का "भारतीय-संस्कृति" नामक ग्रंथ उपलब्ध है। कलकत्ते में रहते समय माचवे वहाँ के सांस्कृतिक क्षेत्र के अनिवार्य अंग हो गये थे। कलकत्ते में रहते समय सारे भारत में घूमकर माचवे ने कई संगोष्ठियों में भाग लिया। स्वयं माचवे के शब्दों में - "यह सब सार्वजनिक सेवा कार्य मैं ने परिषद में प्रति मास दो साहित्यिक आयोजनों के अतिरिक्त किये। इसी अवधी में सारे भारत में घूमकर मैं ने कई शताब्दि संगोष्ठियों में भाग लिया। कोच्चीन, बंबई, आसाम, उड़ीसा, इलाहाबाद और दिल्ली आदि स्थानों में, वल्लत्तोल, प्रेमचन्द, रामचन्द्र शुक्ल, भारतेन्दु-पुण्यतिथि, सुब्रह्मण्य-भारती, पराड़कर आदि कुछ नामों का संकेत मात्र मैं दे रहा हूँ।"[1]

"साप्ताहिक हिन्दुस्तान" में पाँच साल तक हर मास "कलकत्ता की चिट्ठी" माचवे जी लिखते रहे। उस में बहुत कुछ कलकत्ता के बारे में लिखा है। हिन्दी, मराठी एवं अंग्रेजी के अतिरिक्त रवीन्द्र साहित्य के बारे में भी माचवे बहुत कुछ जानते थे। वे बंगला भी अच्छी तरह जानते थे। इस नाते बंगला साहित्यकार भी उनका सम्मान करते थे। माचवे के अनेक बंगाली मित्र भी थे। श्री कन्हैयालाल ओझा लिखते हैं - "अपने कलकत्ता प्रवास में

---

1. रतनलाल सुराणा (संपादक) - माचवे जीवन यात्रा एक पडाव कलकत्ता - संस्करण, दिसंबर 1985, पृ. 20.

माचवे ने हिन्दी के प्रति न केवल हिन्दी-समाज में, बल्कि बंगला और हिन्दीतर साहित्यकारों में भी एक नयी चेतना जागृत की । हिन्दी के साहित्यकार तो मानो एक नींद से ही जागे । अपनी मौलिक प्रतिभा से वे भारतीय भाषा-परिषद् को देश की भाषिक-एकता का संवाहक बनाने की भूमिका प्रदान कर गये ।"[1]

भारतीय भाषा-परिषद, कलकत्ता एक अनन्य प्रकार की भाषा संस्था है, जो संपूर्ण भारतीय संस्कृति के प्रचारार्थ स्थापित है । माचवे ने उस संस्था का नाम उज्ज्वल बना दिया । उन्होंने परिषद् की पत्रिका - "संदर्भ भारती" को अखिल भारतीय साहित्य की पत्रिका बनाया था । भारतीय भाषा-परिषद से उन्होंने भारतीय साहित्य के अनेक प्रतिनिधि ग्रंथ निकाले । "शतदल" (कविता संकलन) भारतीय संस्कृति (दो खंड), भारतीय उपन्यास कथासार (दो खंड) भारतीय श्रेष्ठ कहानियाँ आदि उनमें से कुछ है । बड़े पैमाने पर महत्वपूर्ण अखिल भारतीय ग्रंथों और आयोजनों की योजना तैयार करने और उसे अमल में लाने में माचवे अत्यन्त कुशल थे ।

कलकत्ता के भारतीय परिषद के निदेशक के रूप में माचवे ने परिषद को जो रूपाकार दिया, साहित्य की एवं भाषा सेतु की जो नींव डाली, वह चिरस्मरणीय है । कलकत्ते में माचवे कितने सारे साहित्यिक

---

1. डा. प्रभाकर माचवे सौ दृष्टिकोण प्रथम संस्करण- 1988 - पृ. 276, "गौरवमय अक्षर-पुरुष" शीर्षक लेख से ।

अनुष्ठानों व सांस्कृतिक गतिविधियों से जुड़े थे, ज्ञान की कितनी शाखाओं और कितनी भाषाओं से उनका परिचय था, यह आश्चर्य का विषय है । डा. सुकीर्ति गुप्ता का कथन है - "ऐसी ही नगरी को माचवे जी का दीर्घकाल तक संग-साथ प्राप्त रहा है । यह महानगर और यहाँ के साहित्यकारों के लिए सौभाग्य की बात है । माचवे जी "भारतीय भाषा परिषद" के निदेशक के रूप में छह वर्ष रहे हैं । यद्यपि वे दिल्ली के ही साहित्यकार माने जाते रहे, पर इस महानगर में बड़े आत्मीय हो गये थे । प्राय: किसी भी भाषा की साहित्यिक गोष्ठी बिना माचवे जी के संपन्न नहीं होती थी । वे सभापति या विशिष्ट प्रवक्ता के रूप में अवश्य वहाँ निमंत्रित होते ।"[1] यह सच हा है कि माचवे को ज्ञान पिपासा, कर्मठता युवकों को चुनौती देनेवाले गुण हैं ।

माचवे का, भारतीय परिषद की सेवा के संबंध में प्रसिद्ध संपादक डा. बालशौरि रेड्डी का मत है - "डा. माचवे ने भारतीय भाषा परिषद के निदेशक के रूप में साढ़े छ: वर्ष तक कार्य किया । उनके कार्यकाल में जो योजनाएँ कार्यान्वित हुई, वे पाठकों एवं समीक्षकों के द्वारा प्रशंसित हुई और आज भी वे योजनाएँ प्रासंगिक बनी हुई हैं ।"[2]

---

1. "डा. प्रभाकर माचवे सौ दृष्टिकोण" - संस्करण 1988 - पृ. 284
   {"समदर्शी" शीर्षक लेख से }
2. "परिषद-समाचार" - जुलाई-अगस्त-सितम्बर 1991, अंक - 8-9-10,
   "संपादकीय" से ।

माचवे कलकत्ते से बाहर शांतिनिकेतन, रानीगंज, श्रीरामपुर, खड़गपुर, जमशेदपुर आदि स्थानों में भाषण दिया करते थे । माचवे नये-पुराने रचनाकारों के लिए प्रकाश-स्तंभ ही नहीं, प्रेरणा-स्रोत भी थे । भारतीय परिषद की सेवा के संबंध में प्रसिद्ध कवि एवं संपादक डा. रणजीत साहा का कथन है - "डा. माचवे नये-पुराने रचनाकारों के लिए प्रकाश-स्तंभ ही नहीं, आधार स्तंभ भी थे । साथ ही उनके रचना-संकल्प को नयी दिशा और प्रस्थान देनेवाले पुरोधा भी थे । पारिवारिक दायित्व, कलकत्ता प्रवास की अपनी कठिनाइयाँ, साहित्यिक आयोजनों की भरमार, पत्रिका "संदर्भ-भारती" का संपादन, साहित्य सेवियों का विराट सैन्य संचालन और परिषद में आये दिन अतिथियों और अभ्यागत विद्वानों की सेवा भी उनके कार्य-दायित्व में जैसे सम्मिलित थीं ।"[1]

प्रभाकर माचवे सन् 1979 से 1985 तक भारतीय भाषा-परिषद, कलकत्ता की अनुपम सेवा की है । इन साढ़े छः वर्षों के अनुभवों पर स्वयं माचवे का कहना है - "इन साढ़े छह वर्षों के अनुभवों पर एक पूरी पुस्तक लिखी जानी चाहिए । कलकत्ता के गली-कूचों, पार्क-बागीचों, मन्दिर-मठों में आवारा की तरह घूमा हूँ । मुझे केवल इसी का आनन्द है कि मैं जहाँ भी रहा, वहाँ मैं ने निन्दा-स्तुति की परवाह नहीं की, और न आलोचना से विचलित हुआ । जो मुझे अच्छा लगा वही किया ।"[2] भारतीय भाषा-परिषद

---

1. "डा. प्रभाकर माचवे सौ दृष्टिकोण" - प्रथम संस्करण -1988, पृ. 217
   ("दा सुपर्णा सयुजा सखाया" शीर्षक लेख से)
2. "परिषद-समाचार" - जुलाई-अगस्त-सितम्बर-1991 (संयुक्तांक) - पृ. 28

की सेवा के संबंध में श्री कन्हैयालाल ओझा का कथन बहुत ही सार्थक है - "भारत की सभी भाषाओं के मिलन-तीर्थ के रूप में यहाँ की भारतीय भाषा-परिषद उनके लिए एक उपयुक्त मंच था, जहाँ भारत की सभी भाषाओं को एक संपर्क-सूत्र में पिरोने का काम सर्वथा योग्य था । यह स्वीकार करना चाहिए कि देश के साहित्यिक मानचित्र में आज जो स्थान यह परिषद प्राप्त कर सकी है, वह बहुत कुछ माचवे जी के कुशल और कल्पनाशील निदेशन का ही प्रतिफल है । उनकी उपस्थिति से कलकत्ते का साहित्य-समाज, विशेषकर हिन्दी साहित्य समाज, सदा प्राण-स्फूर्त रहा ।"[1]

इसी बीच अतिथि अध्यापक के रूप में माचवे ने कई संस्थाओं की सेवा भी की हैं । भाषा-विज्ञान संस्थान, आगरा और कश्मीर विश्वविद्यालय इन में से कुछ हैं । पश्चिमी जर्मनी, जापान, हाँगकाँग, नेपाल जैसे देशों की यात्रा भी उन्होंने की ।

सन् 1988 से माचवे "चौथा-संसार" के प्रधान संपादक का दायित्व निभा रहे थे । उनका अन्तिम क्षण इन्दौर में ही आया, जब वे इसके संपादक थे । ग्वालियर में जन्म और इन्दौर में मृत्यु । मध्यप्रदेश उनका कर्म-भूमि बन गया । दिल्ली में घर बनाया, पर दिल्ली उन्हें कभी रास नहीं आयी । अन्तिम समय तक कर्मठ और आत्मीयता के धनी के रूप में उन्होंने जीवन बिताया ।

---

1. "डा. प्रभाकर माचवे सौ दृष्टिकोण" - संस्करण 1986, पृ. 275,
   ("गौरवमय अक्षर-पुरुष" शीर्षक लेख से)

व्यक्तित्व के कुछ अनूठे पक्ष :-

प्रभाकर माचवे के व्यक्तित्व में सीधापन नज़र आता है । वह क्लिष्ट नहीं है । उनकी मुक्त हँसी के समान वह व्यक्तित्व कुछ अनूठे पक्षों से युक्त है, जो हमेशा दूसरों के लिए आकर्षक ही नहीं बल्कि प्रेरणादायी भी है ।

सहज जीवन के धनी :-

प्रभाकर माचवे के व्यक्तित्व का सब से बड़ा गुण उनकी सादगी, सरलता और सहजता है । उनका व्यक्तित्व हमेशा सरल और निष्कपट ही था । माचवे "सादा जीवन उच्च विचार" वाले सिद्धांत पर विश्वास रखते थे । वे हमेशा खादी के सादे लिबास में रहते थे । वे आडम्बर से परे रहे । उनकी निष्कलंक हँसी, जिज्ञासु-बोध से भरी आँखें, भाषा का सहज तारल्य आदि में यही सहजता झलकती हैं । माचवे ऐसा एहसास कभी नहीं देते कि वे कुछ भिन्न हैं, अलग हैं, विशिष्ट हैं और शेष सभी अति सामान्य हैं । वे सब के बीच के व्यक्ति मालूम पड़ते हैं । कई संस्थाओं के बड़े-बड़े पदों पर होते हुए भी "अहं" उनको छू तक नहीं गया । डा. विलास गुप्ते का कथन है - "उनकी सरलता और विनम्रता उन लोगों के लिए एक मिसाल हो सकती है, जो यश, पद या धन की छोटी-सी चिंदी पा लेने पर ही इतराए घूमते हैं ।"[1] अपनी आत्म कथा "फ्राम सेल्फ टु सेल्फ" का यह वक्तव्य ही इसका ज्वलंत उदाहरण है कि माचवे सहज जीवन के धनी हैं" "मैं ने अपने विद्यार्थियों और शिष्यों से बहुत कुछ सीखा और विशेषकर

---

1. "नई दुनिया" - इन्दौर, 20. 9. 1991, पृ. 6 - "अपनी उपेक्षा से वे अप्रसन्न थे" - शीर्षक लेख से ।

अल्प - संख्यक समूहों से । मैं ने जानबूझकर अपने आप को वर्ग और जाति की दृष्टि में च्युत स्वीकार किया ।"[1]

हिन्दी प्रेम :-

प्रभाकर माचवे के व्यक्तित्व का दूसरा गुण हिन्दी के प्रति उनका अगाध प्रेम है । माचवे हिन्दी के साधकों में अन्यतम् है । मराठी भाषी होते हुए भी, हिन्दी में वे अधिक लिखते रहे । उनकी जननी मराठी भाषा है, पर हिन्दी माँ है । वस्तुतः अंग्रेज़ी और मराठी के माध्यम से वे हिन्दी की सेवा करते थके नहीं । अन्य भाषाओं के माध्यम से भी माचवे ने राष्ट्रभाषा हिन्दी को समृद्ध किया है । हिन्दी के संबंध में उनका दृढ़ विचार "भारत और एशिया का साहित्य" नामक ग्रंथ में स्पष्ट किया गया है - "भारतीय संविधान में 14 भाषायें मानी गई हैं । जैसे अलग-अलग रंग और आकार के वर्ण और सुगन्ध के फूल हो, किन्तु उनकी माला एक ही धागे में पिरोकर तैयार करना है । वह धागा हिन्दी है ।"[2] इसी प्रकार माचवे का विश्वास है कि "हिन्दी भाषा प्रांतीय भाषा के शब्दों से ही समृद्ध होगा । उसका सहा विकास और विस्तार बोलियों के सहारे ही होगा ।

1. "From self to self" संस्करण-1976, पृ. 36,"Budding" शीर्षक लेख से ।

2. डा. प्रभाकर माचवे - भारत और एशिया का साहित्य, प्र. संस्करण - 1967, पृ. 3, भूमिका से ।

3. वही

हिन्दी के लिए अपने को समर्पित करनेवाले माचवे को लोग "अहिन्दी भाषी" समझते हैं । एक साक्षात्कार में माचवे ने स्पष्ट कहा है कि उनको यह शब्द "अहिन्दी भाषी" अच्छा नहीं लगता । उनका मत है - "मुझे यह शब्द "अहिन्दी भाषी" अच्छा नहीं लगता । इस में कुछ "अछूत", "अस्पृश्य" जैसी गन्ध आती हैं । "हिन्दी है - हम वतन है हिन्दोस्तां हमारा" इकबाल की इस पंक्ति को माननेवाला हूँ ।"[1]

माचवे की राय में आज़ादी के बाद हिन्दी व्यवसाय बन गई हैं । अब "हिन्दी को सीढी बनकर अपना "कैरियर" बनाने वाले लोग अधिक हैं । लेकिन अब भी हिन्दी को योगदान देनेवाले लोगों में माचवे जैसे अहिन्दी भाषी बडी मात्रा में है । हिन्दीतर-भाषा, हिन्दी लेखकों में माचवे अग्रणी है और हिन्दी को इसका गौरव हैं । पूरे भारत में, विशेषकर बुद्धिजीवि और लेखक वर्गों में सुपरिचित, सम्मानित हिन्दी विद्वान के रूप में माचवे सर्वाधिक जाने माने व्यक्ति हैं । हिन्दी प्रेमी प्रचारकों के बीच माचवे का महत्वपूर्ण स्थान हैं । अहिन्दी प्रांत के हिन्दी विद्यार्थियों के लिए प्रभाकर माचवे एक मसीहा है । अहिन्दी भाषी होते हुए भी माचवे ने हिन्दी की अटूट सेवा की और साहित्य की अनेक विधाओं पर अपना अद्भुत अधिकार दिखाया । माचवे के शब्दों में -"यह हिन्दी सेवा मैं ने केवल साहित्य-सेवा के शुद्ध उद्देश्य से की है ।"[2]

---

1. डा. कृष्णा रैणा - प्रभाकर माचवे के हिन्दी उपन्यास, सं. 1985, पृ. 88, "प्रभाकर माचवे से साक्षात्कार" शीर्षक लेख से ।
2. डा. प्रभाकर माचवे - "भारत और एशिया का साहित्य", संस्करण-1967, पृ. 3, "भूमिका" से ।

भ्रमणशील विश्व कोश :-

भ्रमण शील विश्वकोश के रूप में प्रभाकर माचवे प्रायः याद किये जाते हैं । यह कोई प्रशंसा या अलंकरण नहीं है, अपितु वास्तविकता है । सूचना के तो माचवे खजाना हैं । डा. जगदीश चतुर्वेदी के शब्दों में - "यों माचवे जी की वह वाक्‌पटुता जीवन भर अक्षुण्णा रही । किसी भी विषय पर धाराप्रवाह बोलने की अदम्य क्षमता प्रभाकर माचवे में थी और उनको हम साहित्यकार "जिन्दा-विश्वकोश" कहा करते थे । वे किसी भी विषय पर बोल सकते थे, लिख सकते थे और बहस कर सकते थे ।"[1] दरअसल माचवे एक व्यक्ति नहीं, एक संस्था है, एक युग है । कोई भी कुछ जानने के लिए उनके पास जाते हैं तो कभी निराश होकर नहीं लौटते । डा. विलास गुप्ते लिखते हैं - "साहित्य संबंधी जानकारियों के वे चलते फिरते कम्प्यूटर थे । व्यक्ति, संस्था, पुस्तक, पत्रिका, साहित्यान्दोलन प्रवृत्तियाँ आदि के संबंध में उन्हें अथाह जानकारी थी ।"[2] डा. कृष्ण बिहारी मिश्र ने भी कहा है - "सामान्य पाठक और उनके श्रोता उनके अध्ययन के विशद क्षेत्र और असाधारण स्मृति-शक्ति को देखकर चकित हो उठते थे । अतीत जन भी माचवे को चलता-फिरता संदर्भ कोश मानते थे ।"[3] सचमुच माचवे विविध जानकारियों

---

1. "भाषा" दिसंबर 1991, पृ. 12 - "प्रभाकर माचवे कवि, चिंतक और अध्येता" शीर्षक लेख से ।
2. "नयी दुनिया", इन्दौर, 20. 9. 1991, पृ. 6, "अपनी उपेक्षा से वे अप्रसन्न थे" शीर्षक लेख से ।
3. "परिषद-समाचार" -जुलाई-अगस्त-सितम्बर-1991, अंक-8, 9, 10, पृ. 16

के चलते-फिरते विश्व कोष रहे । श्रीमती आशारानी व्होरा के शब्दों में - "देश-विदेश का ज्ञान, विभिन्न भाषाओं का ज्ञान, उनके साहित्य का ज्ञान, संस्कृति, इतिहास, परंपराओं का ज्ञान, और विविध सामान्य ज्ञान - यानी ज्ञान की जिन ऊँचाईयों को मैं ने हमेशा एक ललक के साथ देखा है, हमेशा कुछ न कुछ पढ़ते रहने के बावजूद, जिनका अभाव मैं अपने भीतर हमेशा महसूसती रही हूँ, डा. प्रभाकर माचवे हर बार मुझे ज्ञान की उसी ऊँचाई पर खड़े मिले-विविध जानकारियों के अंबार सरखे ।"[1] श्री जयकिशनदास सादानी ने माचवे को Pilgrim of knowledge" कहा है, जो विशेषण माचवे के लिए बिलकुल समीचीन है ।

बहुभाषाविद् :-

माचवे जी के व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण गुण है कि वे बहुभाषाविद् हैं । माचवे हिन्दी के ही नहीं, समस्त भारतीय भाषाओं के विद्वान हैं, लेखक हैं । माचवे राष्ट्रीय एकता के जीवन्त प्रतीक हैं । भारत की सब भाषाओं का साहित्य और साहित्यकारों के संपर्क में रहना ही उनका काम था । माचवे को अनेक देशी-विदेशी भाषाओं और साहित्यों का गहरा ज्ञान है । उनके बारे में यह सर्वज्ञात है कि वे बहुभाषा विज्ञ हैं, भारत की प्राय: सभी भाषायें जानते हैं, अंग्रेज़ी के अतिरिक्त कई विदेशी भाषाएँ भी । श्री जगदीश नारायण वोरा कहते हैं -"किसी चीज़ को

---

1. "डा. प्रभाकर माचवे सौ दृष्टिकोण" - संस्करण-1988 - पृ. 41,
   {"चलते-फिरते विश्वकोष" शीर्षक लेख से}

सीखने की शक्ति और साहस उनमें अतुल्य है । मराठी मातृभाषा है, बंगला कालेज में सीखी, उर्दू सेवाग्राम में, 1948 में कटक में उड़िया, रेडियो में पंजाबी, अहमदाबाद में गुजराती, कुछ दिन डा. शारलोत क्राउजे से जर्मन, राहुल जी से रूसी और स्वयं शिक्षकों से फ्रेंच और तमिल सीखने का यत्न उनकी बहुभाषा विज्ञता प्रकट करता है ।"[1] माचवे के इस विविध-भाषा-ज्ञान का लाभ हिन्दी को ही मिला है । माचवे ने स्वयं कहा है - "हिन्दी से भिन्न और अधिक एक कोई भाषा जानना हिन्दी के लिए बहुत उपादेय और आवश्यक है । उससे प्रांतों और प्रांतों के बीच में अधिक सहिष्णुता और उदारता बढ़ेगी ।"[2] शायद इसी कारण ही माचवे ने कई भाषाएँ सीखी । अपनी आत्मकथा "फ्राम सेल्फ टु सेल्फ" में माचवे ने कहा है - "अनेक भाषाओं के अध्ययन करने की मेरी अभिलाषा,अपने स्कूल के दिनों की दूसरी दिलचस्प बात रही थी ।"[3] कई भाषाओं के ज्ञाता होने के कारण, माचवे की रचनाओं में भाषागत कौशल दिखाई पड़ता है । डा. अरविन्द का कथन इस संदर्भ में

---

1. "अक्षर-अर्पण", संस्करण - 1977, पृ. 21, "प्रभाकर माचवे एक बहुरंगी व्यक्तित्व" शीर्षक लेख से ।
2. "भारत और एशिया का साहित्य", प्रथम संस्करण - 1967, पृ. 106, "राष्ट्रभाषा हिन्दी समृद्ध कैसे हो" शीर्षक लेख से ।
3. "फ्राम सेल्फ टु सेल्फ", संस्करण - 1976, पृ. 10. " Roots" शीर्षक से । "The other interesting thing in my high school days was my desire to learn many languages".

विशेष रूप से उल्लेखनीय है - "काव्य भाषा के प्रयोग में डा.प्रभाकर माचवे तरह-तरह के प्रयोग करते दिखाई पडते हैं । एक ओर संस्कृत तत्सम पदों का, दूसरी ओर उर्दू, मराठी पदों का, तीसरी ओर बोलचाल के शब्दों का प्रयोग वह अपनी रचनाओं में करते चलते हैं । भाषा की दृष्टि से भी माचवे ने सब से अधिक प्रयोग किए हैं ।"[1] वस्तुतः माचवे के इस विविध भाषा ज्ञान का लाभ हिन्दी को ही मिला है । हिन्दी और हिन्दीतर भाषाओं के मध्य सेतु का काम माचवे ने किया । भाषा ज्ञान को एक महत्वपूर्ण लक्ष्य के लिए उपयुक्त बनाने के प्रति वे सदैव दत्तचित्त रहे ।

चित्रकार :-

प्रभाकर माचवे की बहुमुखी प्रतिभा चित्रकला के क्षेत्र में भी बडी प्रेरणादायिनी रही थी । रंग और तूलिका से संबद्ध लोग माचवे को एक अच्छे चित्रकार के रूप में जानते हैं । माचवे ने कॉलेज शिक्षा के समय ही आर्ट-स्कूल में भी प्रवेश पाया, जहाँ मकबूल फिदा हुसेन जैसे प्रसिद्ध चित्रकार माचवे के सहपाठी थे । साहित्यकारों के साथ साथ चित्रकारों के साथ भी माचवे जी की मित्रता थी । चित्रकला के क्षेत्र में भी उनका कौशल बहु आयामी है । डा. कैलाश चन्द्र भाटिया का कथन है - "डा. माचवे साहित्य की अनगिनत विधाओं में सिद्धहस्त रहे हैं, पर किसी व्यक्ति के चित्रांकन में उनकी गति अप्रतिम रहा । आप साहित्यिक रेखा-चित्र के साथ तूलिका से भी चित्रांकन करने में सक्षम थे । उनके लिखे अनेक रेखा-चित्रों का संकलन भी

---

1. डा.अरविन्द - "सप्तक काव्य", प्रथम संस्करण - 1976, पृ.45.

में ले कर लिया था, जो अप्रकाशित ही रहा । इस प्रकार न जाने कितनी सामग्री अप्रकाशित पड़ी हुई हैं । उनका पहला रेखा चित्र "दानिश" शीर्षक से सन् 1933 में प्रकाशित हुआ, जिसका संशोधन भी यशस्वी रेखा-चित्रकार रामवृक्ष बेनीपुरी द्वारा किया गया ।"[1]

माचवे साहित्यिक रेखा चित्र के साथ, तूलिका से भी चित्रांकन करने में सक्षम हैं । उनके तूलिका चित्रों का संग्रह "शब्दरेखा" शीर्षक से आया है । यह इस विधा की पहली पुस्तक है । सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, उमाशंकर जोशी, डा. एस. राधाकृष्णन आदि अनेक साहित्यकारों के चित्र "शब्द-रेखा" में समाहित है । "शब्द-रेखा" में उनके द्वारा बनाये गये विशिष्ट व्यक्तियों की 52 मुखाकृतियाँ, संबद्ध व्यक्ति के हस्ताक्षरों सहित प्रकाशित हैं । उनके द्वारा दी गई टिप्पणियाँ भी कम रोचक नहीं है । "शब्द-रेखा" के संबंध में प्रसिद्ध चित्रकार एवं कवि जगदीश गुप्त का कथन है - "यह पुस्तक उनके आत्मीयता-वृत्त की झलक तो देती ही है, उनके बहुज्ञ होने का प्रमाण भी प्रस्तुत करती है । बिना आत्मीय भाव के ऐसे चित्रों का बनाना और सहेजना संभव ही नहीं था । बहुत सी मुख रेखाएँ इतनी सजीव और सांकेतिक लगती है कि व्यक्ति स्वयं सामने आ जाता है ।"[2]

---

1. भाषा दिसंबर-1991, पृ. 7, "बहुभाषाविद् और साहित्यकार डा. प्रभाकर माचवे" शीर्षक लेख से ।
2. "दस्तावेज़" - अप्रैल-जून-1991, पृ. 81, "रेखाचित्रों में, पत्रों में प्रभाकर माचवे" शीर्षक लेख से ।

माचवे बैठे-बैठे आसपास के लोगों के अच्छे - रेखाचित्र खींच लेते हैं । वे फाउंटेन पेन से या डॉट पेन से भी चेहरे बनाने में अभ्यस्त हैं । जब परिचर्चाओं में दूसरे लोग बोलते हैं तो माचवे जी बैठकर लोगों के रेखाचित्र बनाते जाते और परिचर्चा भी सुनते जाते हैं । साहित्यिक क्षेत्र के समान, रेखाचित्र के क्षेत्र में भी माचवे लोगों को प्रेरित करता रहे हैं । प्रसिद्ध चित्रकार जगदीश गुप्त ने स्वीकार किया है - "उनका आशु चित्रण मुझे सदा प्रेरित करता रहा, पर उनका ढंग और था, मेरा कुछ और । दोनों फाउन्टेन पेन को लेखन और अंकन का माध्यम मानते और परस्पर चित्रण की होड भी लगाते । मैं ने उनके अनेक रेखांकन बनाये और उन्होंने भी । ऐसा बहुत कम होता है कि आदमी एक दूसरे की प्रेरणा बन सके ।"[1]

चित्रकला के साथ-साथ अन्य कलाओं में भी उनकी प्रतिभा बहुआयामी थी । प्रसिद्ध कवि गिरिजा कुमार माथुर का कथन है - "लेखक होने के साथ-साथ वे अच्छा रेखांकन करते थे । चित्रकार के साथ-साथ कुशल दस्तकार थे । कपडे की सिलाई में पारंगत थे ।"[2]

संगीत कला से भी माचवे का घनिष्ठ संबंध है । न जाने कितने संगीतज्ञों से माचवे ने प्रत्यक्ष उनका गायन-वादन सुना है । उनकी

---

1. "दस्तावेज" - अप्रैल -जून-1991, पृ. 81 - "रेखाचित्रों में, पत्रों में प्रभाकर माचवे" शीर्षक लेख से ।
2. "परिषद-समाचार", जुलाई-अगस्त-सितम्बर-1991, पृ. 25 - "प्रभाकर माचवे की याद" शीर्षक लेख से ।

संगीतज्ञ - मित्र - संपदा विशाल है । संगीत में उनकी पैठ और संगीत से उनके प्रेम गहरा है । भर्तृहरि के अनुसार "साहित्य", "संगीत" और "कला" का संस्कार ही श्रेष्ठ मनुष्यत्व का प्रमाण है । माचवे का व्यक्तित्व इस दृष्टि से हिन्दी जगत में एक विशिष्ट स्थान रखता है ।

<u>प्रेरणादायी व्यक्तित्व :-</u>

प्रभाकर माचवे के व्यक्तित्व का एक बहुत बडा गुण उनका प्रेरक व्यक्तित्व है । माचवे नवोदित लेखकों के प्रेरणास्रोत के रूप में सुविख्यात है । उनके व्यक्तित्व के इस रूप ने बहुतों को आकर्षित किया है । माचवे ने कई लेखकों और कवियों को प्रेरणा दी है । जब वे साहित्य-अकादमी में थे, तब यह काम जोरों से हुआ । राजेन्द्र उपाध्याय ने लिखा है - "मा भै (भय मत करो) का दो शब्दों का मंत्र उन्होंने मुझे दिया था और यही उनके जीवन का मूल मंत्र रहा । उनकी यही निर्भयता उनका मार्ग प्रशस्त करती थी, इसी निर्भयता के चलते वे 74 वर्ष की उम्र में एक नए दैनिक का संपादन कर रहे थे ।"[1]

हिन्दी के कई नये कवियों को साहित्य जगत् में लाने का श्रेय माचवे को हैं । नये लेखकों की रचनाओं को ध्यान से पढते-सुनते और टिप्पणी करते थे । वस्तुतः माचवे का जीवन एक विशाल ग्रंथ है और इस

---

1. "परिषद समाचार" - जुलाई-अगस्त-सितम्बर 1991, पृ. 17

ग्रंथ के प्रत्येक पृष्ठ प्रेरणा का है । माचवे ने लोगों को सदा ऐसा मार्ग दर्शाया है, जो विवेक और विनय का है । डा. नारायण दत्त पालीवाल का कहना है - "माचवे ने पनपते हुए, उदीयमान और नवोदित लेखकों को सदैव एक बरगद के वृक्ष के समान आश्रय, प्रेरणा और प्रोत्साहन दिया । उनके असंख्य शोधपरक तथा अन्य सामान्य लेख साहित्य की अमूल्य निधि रहेंगे ।"[1] यह सच है कि उदीयमान साहित्यकारों को प्रोत्साहन देने में उनकी ओर से त्रुटि कभी नहीं हुई । यह गुण समकालीन लेखकों में कम ही दिखाई पडती है । यह उनके व्यक्तित्व का एक विशेष गुण है । प्रसिद्ध कवि, पत्रकार और समीक्षक श्री सत्येन्द्र शर्मा ने स्वीकार किया है - "हिन्दी साहित्य, जगत् के बहुभाषी मूर्धन्य लेखक डा. प्रभाकर माचवे कवि, कहानीकार, उपन्यासकार और समीक्षक के रूप में तो जाने-माने हैं ही, नवोदित लेखकों के प्रेरणास्रोत के रूप में भी सुख्यात हैं । उनके इस दूसरे रूप ने ही मुझे आज से 35 वर्ष पूर्व अपनी ओर आकर्षित किया था ।"[2]

अनेक लेखकों और कवियों ने माचवे को एक "प्रेरणादायी व्यक्तित्व" के रूप में स्वीकार किया है । श्री अनिल कुमार का कथन इस संदर्भ में उल्लेखनीय है - "अनेक भारतीय भाषा क्षेत्रों में उनके परिचय का दायरा फैला था । उससे लाभान्वित होने की प्रेरणा मिलती रही । उनसे

---

1. हिन्दुस्तान पत्रिका, 7 जुलाई 1991, "डा. प्रभाकर माचवे, याद आते हैं तो इसलिए...... " शीर्षक लेख से ।
2. "डा. प्रभाकर माचवे सौ दृष्टिकोण" प्रथम संस्करण-1988, पृ. 273, "प्रेरक व्यक्तित्व" शीर्षक लेख से ।

ही "सॉनेट" की दीक्षा मिली और किताबें भी, जिन से भरपूर लाभ उठाकर मैं ने अपनी कविता को जुल्फें उतारना शुरू किया । सभी भारतीय भाषाओं के एकांकी नाटकों के संकलन और संपादन की प्रेरणा मुझे उनसे ही मिली ।"[1] भारतीय साहित्य के प्राय: सभी लेखकों और उनकी रचनाओं से माचवे का प्रत्यक्ष परिचय है । थोडी देर उन से बात करने का मतलब यह होता है कि हमने अपनी भाषाओं और उनके साहित्य के संबंध में काफी जानकारी हासिल की है । उन से बिदा होते समय हम अनुभव करते हैं कि हमारे अन्दर एक नई प्रेरणा और नयी चेतना जाग गई हैं ।

अथक परिश्रम :-

अथक परिश्रमशीलता माचवे के व्यक्तित्व का एक पहलू है, जिसके कारण वे आज इतनी सारी रचनाओं के रचयिता, निर्माता बन चुके हैं । माचवे जी अवस्था से वृद्ध थे, पर उन में युवकों का-सा उत्साह था । किसी भी कार्य करने में वे पीछे नहीं थे । बडी प्रसन्नता से हर नये कार्य करने के लिए वे तैयार रहते थे । कवि-आलोचक डा. विष्णु खरे का कथन उल्लेखनीय है - "माचवे जी की सबसे बडी विशेषता थी कि उन्होंने वक्त कभी बर्बाद नहीं किया । वे शायद ही कभी निष्क्रिय रहे हो ।"[2] उनकी लगन दुष्कर कार्यों को भी आसान बना देती है । माचवे की कार्य-पद्धति की विशेषता अनुकरणीय है - वह है समय पर कार्य संपन्न की-प्रवृत्ती ।

---

1. "अक्षर-अर्पण", प्रथम संस्करण-1977, पृ. 5, "गरुड की उड़ान का आकाश" शीर्षक लेख से ।
2. "नवभारत टाइम्स", बंबई, 23 जून 1991, पृ. 6, "भारतीय साहित्यों का सेतु" शीर्षक लेख से ।

वे किसी काम के लिए जो समय देंगे, उस में उसे पूरे कर देंगे । रतनलाल सुराणा ने ठीक कहा है - "भारतीय संस्कृति, कर्मप्रधान संस्कृति हैं और माचवे जी कर्मठता के प्रतीक हैं । और कर्मप्रधान चिंतन सांस्कृतिक - मूल्यों के पुष्ठ पोषण की एक शर्त है ।"[1] माचवे का जीवन अथक शक्ति से निरन्तर लेखन-कार्य में जुटे रहे ।

जरूरत मंदों के सहायक :-

माचवे पीडित एवं जरूरत मंदों की सहायता करना अपना दायित्व समझते थे । जरूरत मंदों को वे अपने घर ठहराते, उनके लिए कहीं काम दिलवाने की व्यवस्था में लगे रहते । वे किसी भी व्यक्ति की सहायता करने को हमेशा तत्पर रहते । माचवे का घर प्राय: सभी साहित्यकारों का घर था । जो भी बनारस, इलाहाबाद, लखनऊ से आता - उनके लिए माचवे का घर खुली धर्मशाला-सा लगता । राजेन्द्र उपाध्याय का कथन सच है - "नये से नये कवि दिल्ली आते थे, तो माचवे जी के यहाँ ही ठहरते थे - शमशेर, रघुवीर सहाय, प्रेमलता वर्मा, विष्णु खरे आदि ।"[2]

अपने निजी जीवन की तमाम परेशानियों के बावजूद भी,

---

1. "माचवे जीवन यात्रा एक पडाव कलकत्ता", संस्करण 1985, पृ. 31, "माचवे अज्ञ हैं" शीर्षक लेख से ।
2. "परिषद-समाचार", जुलाई-अगस्त-सितम्बर- 1991, पृ. 28, "माचवे सौ राहों के यात्री थे" शीर्षक लेख से ।

माचवे ने दूसरों को सहज-स्नेह और सहायता दी है । निस्वार्थ भाव से हर नये लेखक, कार्यकर्ता, शोध-छात्रों की सहायता करने के लिए वे हमेशा तत्पर रहते । उनकी सुपुत्री श्रीमती-चेतना कोहली के शब्दों में - "छोटे से छोटे लेखक से लेकर मोटे-से-मोटे सेठ तक, हरिजनों से लेकर विदेशियों तक सभी ने महीनों काका के घर में {माचवे} निवास किया और काका और आई ने उनकी निःस्वार्थ सेवा की । x x x साहित्यिक सेवा, मानव सेवा, पारिवारिक सेवा करते-करते 70 वर्ष बीत गये, किन्तु आज भी "लाइट हाउस" की तरह चमकते खड़े हैं - मार्ग दर्शन करते हुए - हमारा, समाज का, साहित्यकारों का - भव्य, अडिग, अचल ।"[1]

जब वे साहित्य अकादमी में थे, तब अपनी सीमा से बाहर जाकर भी लोगों, विशेष रूप से लेखकों की मदद किया करते थे । माचवे अपने से छोटों को भी समान आदर एवं सम्मान देते थे । वस्तुतः माचवे स्नेह की छाया देने वाले बरगद हैं । माचवे के साथ काम करने में व्यक्ति का अपना आत्मविश्वास जागृत होता है । प्रसिद्ध समाज सेवी एवं कवि श्री रतनलाल सुराणा का कथन हैं - "हृदय के गुण ने माचवे को सिर्फ सर्जक साहित्यकार व कवि ही नहीं बनाया, बल्कि उससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण उनको एक संवेदनशील मानव बनाया । कितने विद्यार्थियों को किताबें खरीद कर दी होगी, कितनों की फीसें चुकाई होंगी । न जाने कितने साहित्यकारों के लिए इनका घर एक शरण-स्थली रहा होगा । कितने व्यक्तियों को पुरस्कार,

---

1. "डा. प्रभाकर माचवे सौ दृष्टिकोण", संस्करण-1988, पृ. 80, {"मेरे पिता" शीर्षक लेख से ।}

पारिश्रमिक एवं नौकरी दिलाने में निःस्वार्थ भाव से सहयोगी रहे होंगे ; इन सब का आकलन एक दुष्कर कार्य है ।"[1]

भारतीय लेखक :-

प्रभाकर माचवे के व्यक्तित्व का एक प्रमुख गुण उनकी भारतीय दृष्टि है । दूसरे शब्दों में माचवे को एक भारतीय कलाकार कहना समीचीन लगता है । भारतीयता का सबसे बडा उदाहरण उनका पहनावा ही है । पाश्चात्य देशों में रहते समय भी वे सूट, टाई, जूते आदि पाश्चात्य पहनावों से मुक्त रहे । डा. श्री भा. वर्णेकर का कहना सच है -"सभी भारतीय भाषाओं के साहित्यों में एवं सभी साहित्यिकों के बारे में अपनी रुचि और जानकारी रखनेवाले किसी दूसरे व्यक्ति से, इसके पहले कभी मेरा परिचय नहीं हुआ था ।"[2]

माचवे भीतर-बाहर गाँधी-युग की उपज है । विदेशों से लंबे संपर्क और निवास के बाद भी, उन पर कोई विदेशी रंग नहीं चढा है । माचवे के व्यक्तित्व और कृतित्व से उनको किसी एक भाषा का आदमी कहना, उनके साथ अन्याय करना है । माचवे अपने आप को शुद्ध भारतीय कहना ही

---

1. "माचवे जीवन यात्रा एक पडाव कलकत्ता" - संस्करण-1985, पृ.30 §"माचवे अज्ञ हैं" शीर्षक लेख से ।§
2. "परिषद-समाचार", जुलाई-अगस्त-सितम्बर 1991, पृ.22, "भारतीय साहित्य का असाधारण व्यक्तित्व डा.प्रभाकर माचवे" शीर्षक लेख से ।

पसन्द करते थे ।

यायावर :-

प्रभाकर माचवे एक भ्रमणशील व्यक्ति है । माचवे ने स्वयं स्वीकार किया है -

" मेरे मन के भीतर कोई जिप्सी या कि घुमन्तू बैठा,
यात्रा, यात्रा, केवल यात्रा, यात्रा, यात्रा, यात्रा"।[1]

अपने देश के कई चक्कर तो उन्होंने किये ही हैं, विदेश-भ्रमण के भी उन्हें अवसर मिले हैं । उन्होंने विभिन्न स्थानों को निकट से देखा है, लोगों के बीच रहे, सहे हैं, उनकी सामाजिकता और संस्कृति की जानकारी ली है और अपनी कविता में उनका खुलकर उपयोग किया है । नगरों और कस्बों पर उनकी कई कविताएँ हैं । काशी, प्रयाग, मालवा, उज्जैन, आगरा, असम, पुरानी-दिल्ली, नयी-दिल्ली आदि कवितायें कुछ उदाहरण मात्र हैं ।

माचवे की यायावरी, वृत्ति, उनके साहित्यिक व्यक्तित्व को निर्मित करनेवाला सर्वप्रमुख तत्व हैं । माचवे को लेखक-कवि बनाने में यात्राओं की महत्वपूर्ण भूमिका है । दुनिया के कई साहित्यकारों से उनका सीधा संपर्क है । साहित्य अकादमी के सचिव और भाषा-परिषद के निदेशक के नाते भी, माचवे विभिन्न देशों के साहित्यकारों के संपर्क में आये हैं ।

---

1. प्रभाकर माचवे - "स्वप्न भंग", प्रथम संस्करण-1957, पृ. 55 - "यात्रा" शीर्षक से ।

यहाँ-वहाँ घूमना और देखे-भोगे पर कलम चलाना, माचवे के व्यक्तित्व का अत्यन्त क्रियाशील भाग है । बचपन से उन्होंने इतना भ्रमण किया है कि कदाचित् अन्य किसी ने किया होगा ।

माचवे की विदेश-यात्राओं में अमेरिका, श्रीलंका, पश्चिम जर्मनी, बंगला-देश, नेपाल, मौरीशस, जापान, हाँगकाँग, थाइलैंड आदि देशों की यात्राएँ महत्वपूर्ण है । भारत के बाहर लगभग 25 देशों का उन्होंने भ्रमण किया है और वहाँ की लोक-संस्कृति और भाषा-साहित्य का सूक्ष्म अध्ययन किया है । माचवे की यात्रा के बारे में गिरिजा कुमार माथुर ने लिखा है - "यात्रा करने का उन्हें बड़ा चाव था । यात्राएँ भी ऐसी कि किसी सुविधा के साथ नहीं, बल्कि वे मामूली बसों और ट्रेन से यात्रा करते थे । यात्राओं के क्रम में उन्होंने कई रेखाचित्र बनाए जो अपनी तरह के यात्रावृत्त हैं - रेखांकनों के रूप में ।"[1]

माचवे को स्वयं अनुभव हुआ है - "यात्रा ने उन्हें यह एहसास दिया - विभिन्न संस्कृतियों के बावजूद मनुष्य अन्ततः एक है ।"[2]

---

1. "परिषद-समाचार", जुलाई-अगस्त-सितम्बर-1991, पृ.26 "प्रभाकर माचवे की याद" शीर्षक लेख से ।

2. फ्राम सेल्फ टु सेल्फ, संस्करण-1976, पृ. 151, "Fruition " शीर्षक से ।
" The more you travel, the more you realize that human beings all over the world are the same below their skins".

संस्कृति के बाह्य विधान का महत्व है । फिर भी मानवीयता के संदर्भ में वह अलग-अलग नहीं है । इस कारण से उनकी यात्राएँ कभी भी किसी कौतुक व्यक्ति की सामान्य जिज्ञासा से प्रेरित यात्राएँ नहीं हैं । वह एक ऐसे मनुष्य की यात्रा है जो मनुष्य के अनवरत मार्ग का अनुसरण करती है । यह पहचान उनकी साहित्यिक दृष्टि को भी विकसित किया है ।

माचवे का कृति व्यक्तित्व :-

माचवे के व्यक्तित्व के समान उनकी साहित्यिक प्रतिभा भी बहुआयामी है । माचवे की साहित्यिक प्रतिभा के संबंध में डा. कमल किशोर गोयनका का कथन उल्लेखनीय है - "असल में वे बहुआयामी प्रतिभा के स्वामी हैं, अनेक भाषाओं के ज्ञाता हैं, प्रयोगधर्मी साहित्यकार हैं, परन्तु मुख्य बात यह है कि वे बन्धनमुक्त हैं जीवन में भी और साहित्य में भी । यह बन्धन मुक्तता उन्हें उच्छृंखल एवं संयमहीन नहीं बनाती, बल्कि सृजनात्मक बनाती है । गृहस्थी होकर जैसे वे परिव्राजक हैं, उसी तरह सृजन के अनुशासन में बँधकर भी वे गद्य-पद्य की किसी भी विधा में लिखने, किसी भी प्रकार का नया प्रयोग करने तथा विधाओं को परस्पर मिश्रित करने में सक्षम एवं स्वतंत्र हैं । वे इसी कारण नवीनता प्रेमी हैं ।"[1] यह सत्य है कि माचवे ने प्राय: हर विधा में लिखा है - कविता, उपन्यास, कहानी, नाटक, व्यंग्य, आलोचना, यात्रावृत्त, जीवनी, शब्द-चित्र, संस्मरण, रिपोर्ताज आदि में अपने प्रयोग के कारण अलग पहचान बनाई है । माचवे की प्रतिभा के बारे में कहा गया है - "डा. माचवे

---

1. डा. कमल किशोर गोयन्का (संपादक) - "प्रभाकर माचवे प्रतिनिधि रचनाएँ" - संस्करण-1984, "भूमिका" से ।

की प्रतिभा किसी बंधन को नहीं स्वीकारती । शब्दकोश जैसा नीरस शास्त्र हो या चित्रकला का आधुनिक आयाम - उनकी ग्राहकता का क्षितिज सर्वत्र व्यापक है ।"[1] माचवे का साहित्य धरती के आदमी से जुडा था । "अपनी साहित्य सेवा के माध्यम से माचवे जी ने एक नई भाषायी संस्कृति के विकास का प्रयास किया तथा साहित्य की विभिन्न विधाओं को नए आयाम दिये । कवि, चिंतक, विचारक, मनीषी लेखक, पत्रकार, चित्रकार सभी कुछ तो वह थे । उन्होंने सदैव मानव के उत्पीडन को वाणी दी और धरती के आदमी से जुडे हुए साहित्य का सृजन किया ।"[2] यह सत्य है कि डा. प्रभाकर माचवे "तार सप्तक" से लेकर नवें दशक से पहले सुपरिचित कवि और अनेकानेक विधाओं के लब्ध प्रतिष्ठ साहित्यकार हैं । माचवे की बहुज्ञता का प्रमाण पत्र विजयेन्द्र स्नातक यों देते हैं - "माचवे ने मराठी भाषी होते हुए भी हिन्दी साहित्य में मूर्धन्य कोटि के रचनाकार का गौरव प्राप्त किया । विगत पचपन वर्षों में माचवे ने किस विधा में लिखा यह शोध का विषय नहीं है, शोध का विषय तो यह है कि उन्होंने किस विधा और किस विषय में नहीं लिखा ।"[3] इस प्रकरण में माचवे की काव्येतर रचनाओं का सामान्य एवं संक्षिप्त विश्लेषण वांछित है ।

---

1. "अक्षर -अर्पण" संस्करण-1977, पृ. 6 - "गरुड की उडान का आकाश" शीर्षक लेख से ।
2. "हिन्दुस्तान", 7 जुलाई 1991, "याद आते हैं तो इसलिए........" शीर्षक लेख से ।
3. डा. प्रभाकर माचवे - "सादुल्ला की खरी-खरी", संस्करण-1992, पृ. 6, "भूमिका" से ।

उपन्यासकार माचवे :-

हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में माचवे के उपन्यासों की चर्चा किये बिना, समकालीन उपन्यास-साहित्य अधूरा ही रह जायेगा। माचवे हिन्दी के जाने-माने लघु-उपन्यासकार के रूप में जाने जाते हैं। माचवे के अब तक 16 उपन्यास प्रकाशित हैं। हिन्दी में अन्तःसंज्ञा प्रवाह वाले मनोविश्लेषणवादी लघु-उपन्यासों के माचवे प्रथम प्रयोक्ता हैं। प्रभाकर माचवे के उपन्यासों के बारे में रजनीकांत जोशी का कथन है - "उपन्यास विधा के क्षेत्र में डा. प्रभाकर माचवे के उपन्यास हिन्दी के उपन्यासों में उल्लेखनीय स्थान रखते हैं। उनके उपन्यास ऐसे विषयों को उठाते हैं, जिनकी चर्चा कम ही हुई हो। वे अपने उपन्यासों से विगत-अतीत की भारतीय परंपरा को कथावस्तु के अन्तर्गत गुंफित करते हुए साम्प्रत की जटिल समस्याओं का मनोविश्लेषण करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं।"[1] माचवे के उपन्यास के बारे में मारुतिनन्दन पाठक का मत है - "पश्चिम में विचार प्रधान उपन्यासों की एक धारा अवश्य चल पड़ी थी जो अल्डस हक्स्ले से काम्यू तक बहुत ख्यात हुई थी। किन्तु हिन्दी में अपनी ज़मीन से जुड़कर अपने परिवेश के परिप्रेक्ष्य में अपनी समस्याओं और मानसिकताओं से जूझते हुए यह संज्ञा-प्रवाह वाला उपन्यास-लेखन माचवे जी का अवदान है।"[2] माचवे ने एक भेंट वार्त्ता में कहा है कि इस विधा में उनकी रुचि बढ़ती जा

---

1. "अक्षर-अर्पण" (1977) पृ. 31, "प्रभाकर माचवे के उपन्यास" शीर्षक से
2. "डा. प्रभाकर माचवे सौ दृष्टिकोण" - (1988) - पृ. 19, "दृष्टिपथ" से।

रही है - "कविता अब भी कभी-कभी लिख लेता हूँ, पर इधर उपन्यास ही अधिक लिखे हैं, अधिकतर छोटे उपन्यास, इस में मेरी रुचि बढ़ती जा रही है ।"[1] माचवे के लघु उपन्यासों में "परन्तु" सब से पहला है जो 1951 में प्रकाशित हुआ था । "परन्तु" नामक उपन्यास प्रयोगात्मक शिल्प को लेकर प्रस्तुत हुआ है । "परन्तु" के बाद "साँचा", "द्वाभा" और "एक तारा" में भी यही स्थिति है । इन उपन्यासों के बारे में डा. इन्दिरा दीवान का मत यों है - "परन्तु", "द्वाभा", "जो तीस-चालीस-पचास", "दर्द के पैबंद", "किस लिए", "दूत मात्र उपन्यास ही नहीं," सभी विधाओं में सिद्धहस्त लेखक ने कुछ कोमल एवं कुछ सशक्त आयामों को शब्दों में परिवर्तित कर, आगे बढ़ाया ।"[2]

"तीस-चालीस-पचास" माचवे का बहुचर्चित उपन्यास है । आज के मानव की विचारधारा स्वतंत्र न रहकर राजनीतिक दृष्टिकोणों से प्रभावित व हिप्पी जैसों के कारण किस प्रकार का वैचारिक परिवर्तन होता रहता है, उसका वर्णन इस उपन्यास में प्रस्तुत है । "जो" हिन्दी में एक मात्र उपन्यास है, जिसमें वर्ण-द्वेष के कारण, जाति-भेद पर करारी चोट है । "दशभुजा" में आर्थिक स्वावलंबन तलाशती हुई नारी की समस्याओं का चित्रण है । "लापता", "कहाँ से कहाँ", "किसलिए" आदि उपन्यासों में दार्शनिक प्रश्नों का प्रत्यक्ष जीवन के दृष्टिकोण के साथ टकराहट है । इस तरह माचवे

---

1. डा. कृष्णा रैणा - "प्रभाकर माचवे के हिन्दी उपन्यास" (1985) -पृ. 90
2. डा. प्रभाकर माचवे सौ दृष्टिकोण - संस्करण-1968, पृ. 48

के कुल सोलह उपन्यास प्रकाशित हैं । माचवे के उपन्यासों के बारे में कृष्णा रैणा ने कहा है - "माचवे जी आरंभ से ही प्रयोगवादी रहे हैं । उपन्यासों के क्षेत्र में भी उन्होंने कई प्रयोग किये हैं । उनकी सर्जना का अपना अलग ढंग है जो पाठक को अपील करता है ।"[1] डा. रणवीर रांग्रा का मत है - "अपने उपन्यासों में जितने अधिक "टेकनीकों" का माचवे जी ने प्रयोग किया है, उतना शायद ही हिन्दी के किसी अन्य उपन्यासकार ने किया हो ।"[2]

माचवे की कहानियाँ :-

कहानीकार के रूप में माचवे का माननीय स्थान है । सन् 1935 में "हंस" में माचवे की प्रथम हिन्दी कहानी प्रकाशित हुई थी, उसी समय से उन्होंने मराठी, अंग्रेजी और हिन्दी तीनों भाषाओं का लिखना आरंभ किया । माचवे का एकमात्र कहानी संग्रह "संगीनों का साया" सन् 1942 में प्रकाशित हुआ था । श्री जगदीश नारायण वोरा का मत है - "अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से माचवे की सहानुभूति वामपक्षीय देशों के साथ थी, जब कि उसका स्वदेश-प्रेम उसे पीछे खींचता था और युद्ध-मात्र का विरोधी बनाता था । इस काल में उन्होंने फासिस्ट-विरोधी कहानियाँ लिखीं, जिनका संग्रह "संगीनों का साया" नाम से 1942 ई. प्रकाशित हुआ ।"[3]

---

1. डा. कृष्णा रैणा - "प्रभाकर माचवे के हिन्दी उपन्यास", संस्करण-1985, पृ. 23
2. डा. रणवीर रांग्रा - "हिन्दी साहित्यकारों से साक्षात्कार", सं. 1991, पृ. 249, "परन्तु मैं जो" तक शीर्षक लेख से ।
3. "अक्षर-अर्पण", संस्करण-1977, पृ. 20

कथ्य की नवीनता और ताज़गी माचवे की कहानियों की अपनी विशेषता है। अधिकतर कहानियाँ शोषितों और पीड़ितों पर हैं, मज़दूरों पर भी कई कहानियाँ हैं। माचवे की कहानियों की विशेषता भारतिनन्दन पाठक यों देते हैं - "अधिकतर कहानियाँ शोषितों और पीड़ितों पर हैं। मज़दूरों पर भी कई कहानियाँ हैं। कोई भी विसंगति उनकी नज़र से नहीं बच पाती और तब वह मनोविश्लेषण के औज़ार का इस्तेमाल करते हैं।"[1]

एकांकीकार माचवे :-

एकांकीकार के रूप में भी माचवे का आदरणीय स्थान है। माचवे का "एकांकी संग्रह", "गली के मोड़ पर" के नाम से प्रकाशित है। इस संग्रह का दो संस्करण सन् 1960 और पुनः 1988 में हुआ था। माचवे के एकांकियों के बारे में भारतिनन्दन पाठक का कथन है - "सृजनात्मक क्षेत्र में माचवे जी ने एकांकी भी काफी लिखे हैं। साठ से अधिक एकांकियों की संख्या होगी। "गली के मोड़ पर" एकांकी में बेजान वस्तुओं को पात्र बनाया गया है। लेटर बॉक्स, लैम्पपोस्ट और दीवार जिस पर पोस्टर चिपकाये जाते हैं, आपस की बातचीत में मनुष्यों के व्यवहार पर टिप्पणी करते हैं। एक में पंचकन्याओं के पौराणिक संदर्भ को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में देखा गया है। कुछ प्रहसन भी है जहाँ व्यंग्य और चित्र भरे हुए हैं।"[2] माचवे के

---

1. "डा. प्रभाकर माचवे सौ दृष्टिकोण", संस्करण-1988, पृ. 18, "दृष्टिपथ" से।
2. "डा. प्रभाकर माचवे सौ दृष्टिकोण" - संस्करण-1988 - पृ. 18 - "दृष्टिपथ" से।

एकांकी के एकाध संवाद यों हैं -

डॉक्टर :- आप डरिए नहीं । अब कोई पागल खाने कहीं रहे नहीं है । आप जानते हैं कि मनोविज्ञान की नयी शोध के हिसाब से हम सब में कुछ न कुछ पागलपन का हिस्सा ज़रूर रहता ही है । मसलन आप में एक बटा तीस पागलपन हो मुझमें एक बटा सत्तर पागलपन ज़रूर है । इसे दूर करने का एक ही उपाय है कि आदमी, जो भी उसकी इच्छा हो पूरी करो । अब आप बोलो कि आप की क्या इच्छा है ?

सत्यपाल मेरी केवल मात्र एक ही आकांक्षा है, जो कि मैं नाटक, थियेटर के काम में जादू.........

डॉक्टर (कुछ सोचकर) आप की शक्ल-सूरत, कपडे, वगैरह देखकर कोई आप को एक्टर तो बतायेगा नहीं । फिर ?

सत्यपाल नहीं मुझे नाटक का लेखक, गीतकार बनना है जो ।"[1]

<u>व्यंग्य लेखन :-</u>

हास-परिहास और व्यंग्य के माचवे माहिर हैं । उनके व्यंग्य का लक्ष्य कभी भी व्यक्ति नहीं होता, प्रवृत्ति होता है । डा. कृष्ण बिहारी मिश्र का कथन है - "माचवे जी ने गंभीर सवालों से जुडे अपने विचार को

---

1. डा. प्रभाकर माचवे - "तेल की पकौडियाँ" - संस्करण-1962, पृ. 73 "उलटफेर" शीर्षक एकांकी से ।

अभिव्यक्ति के लिए जिस रम्य रचना-विधा को अपनाया, वह व्यंग्य-विनोद की सहज रंगत के कारण भी, पाठकों को प्रिय हैं ।"[1]

माचवे के कई व्यंग्य रचनाएँ प्रकाशित हैं । "खरगोश के सींग", "बेरंग", "तेल की पकौड़ियाँ", "विसंगति" और "खबरनामा" है । "खरगोश के सींग" माचवे के बहुचर्चित व्यंग्य कृति है । यह उनका पहला व्यंग्य संग्रह है । जब यह संग्रह प्रकाशित हुआ तो विद्वानों के बीच चर्चा का विषय था । डा. कैलाश-चन्द्र भाटिया ने माचवे के बारे में लिखा है - "निबंधकार और वह भी व्यंग्य निबंध लेखन में निष्णात थे । "खरगोश के सींग" से बहुप्रतिष्ठित उनकी कृति "विसंगति" विख्यात है । "तेल की पकौड़ियाँ" में अमेरिका प्रवास के अनुभव हैं ।"[2]

व्यंग्य लेखन में माचवे को असीम सफलता मिली इसका कारण उनकी पैनी दृष्टि है । कम से कम शब्दों में माचवे ने व्यक्तियों की मानवीय विशेषताओं पर प्रकाश डाला है । माचवे की लेखनी व्यंग्य कराने में बेमिसाल है । माचवे के व्यंग्य के बारे में हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है - "माचवे जी में व्यंग्य करने की बड़ी शक्ति है । उनके व्यंग्य बहुत-चुभते हुए होते हैं,

---

1. "माचवे जीवन यात्रा एक पड़ाव कलकत्ता", संस्करण-1985, पृ. 15 - "अभिज्ञता के मुखर उल्लास" शीर्षक लेख से ।
2. "परिषद्-समाचार" - संस्करण-1991, पृ. 25

परन्तु सर्वत्र उनमें एक प्रकार की अनासक्ति वर्तमान रहती है । वे व्यंग्य करके यह सोचने में नहीं उलझते कि उसका क्या और कितना असर हुआ । इस प्रकार निश्चिन्त हो जाते हैं जैसे कुछ किया ही नहीं ।"[1] माचवे की सब से बड़ी बात स्वयं खूब हँसते हैं, और अपनी तीक्ष्ण व्यंग्य रचनाओं द्वारा पाठकों को हँसाना जानते हैं । एक अनिवार्य हल्का-फुल्कापन उनके व्यंग्य का अभिन्न पक्ष है जो एक सामान्य विषय को भी अर्थवान बना देता है । दरअसल व्यंग्य लेखन में माचवे की प्रतिभा उन्मुक्तता से प्रस्फुटित हुई है ।

आलोचक माचवे :-

माचवे एक अच्छे आलोचक भी है । सन् 1935 में निराला जी ने "सुधा" में उनका पहला लेख "नव्यकला में मनोविज्ञान" छापा था, जो उनकी आलोचनीय दृष्टि का प्रमाण था । सन् 1937 में विस्तृत भूमिका तथा पर्याप्त नोट्स के साथ "जैनेन्द्र के विचार" नामक संपादित पुस्तक प्रकाशित हुई, जो काफी चर्चित और प्रशंसित भी हुई थी । डा. कैलाशचन्द्र भाटिया ने इस संबंध में लिखा है - "आलोचना जगत में तो उनकी प्रतिष्ठा "जैनेन्द्र के विचार" (पूर्वोदय प्रकाशन) सन् 1937 से ही इतनी अधिक हो गयी थी कि प्रभाकर माचवे को जैनेन्द्र कुमार का "बॉसवेल" कहा जाने लगा । इस संकलन में डा. माचवे की लंबी भूमिका भी थी । अंत में परिशिष्ट भी था ।"[2]

---

1. "डा. प्रभाकर माचवे सौ दृष्टिकोण", संस्करण-1988 - पृ. 85
2. "भाषा" दिसंबर 1991, पृ. 8, "बहुभाषाविद् और साहित्यकार डा. प्रभाकर माचवे" शीर्षक लेख से ।

माचवे के अब तक कई समीक्षा-ग्रंथ प्रकाशित हैं । नाट्य-चर्चा, हिन्दी गद्य की प्रवृत्तियाँ, हिन्दी पद्य की प्रवृत्तियाँ, व्यक्ति और वाङ्मय, समीक्षा की समीक्षा, मराठी और उसका साहित्य, सन्तुलन, भारत और एशिया का साहित्य, हिन्दी ही क्यों तथा अन्य निबन्ध, मराठी साहित्य का इतिहास आदि करीब 20 समीक्षा-ग्रंथ प्रकाशित हैं । इनके अतिरिक्त माचवे ने कुछ परिचयात्मक - आलोचनात्मक पुस्तकें भी लिखी है । इनको निबन्धिका (*Monograph*) कह सकते हैं । ये पुस्तकें छोटी होने पर भी बहुत उपयोगी हैं । कबीर, केशवसुत, राहुल-सांस्कृत्यायन, मैथिलीशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा नवीन, माखनलाल-चतुर्वेदी आदि इनमें कुछ हैं । इनके अतिरिक्त मध्यकाल के विभिन्न संतों और मनीषियों - कबीर, नामदेव, ज्ञानेश्वर, गुरुनानक, तुलसी, रैदास, मीराबाई, तुकाराम आदि का व्यवस्थित आकलन माचवे ने किया है । इन सब के अतिरिक्त माचवे के सैकड़ों महत्वपूर्ण-आलोचनात्मक लेख पत्र-पत्रिकाओं में बिखरे पड़े हैं, जिन्हें पुस्तकार रूप प्राप्त नहीं हो सका है ।

अनुवादक :-

प्रभाकर माचवे एक समर्थ एवं कुशल अनुवादक भी हैं । माचवे की दृढ़ धारणा थी कि अनुवाद के माध्यम से ही कोई भाषा समृद्ध बन सकती है । किसी भी साहित्य को समृद्ध बनाने के लिए अनुवाद का होना अनिवार्य है । स्वयं माचवे का मत है - "अनुवाद का काम हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाने का एक महत्वपूर्ण उपाय है । संसार की सभी समुन्नत भाषाएँ प्रचुर अनुवाद करती हैं । हिन्दी अब अपने में सिमटी नहीं रह सकती ।"[1] इस

---

1. डा. प्रभाकर माचवे - "भारत और एशिया का साहित्य" - सं. 1967 - पृ. 170 - "राष्ट्रभाषा हिन्दी समृद्ध कैसे हो" शीर्षक से ।

कथन से स्पष्ट है कि अनुवाद पर माचवे का दृढ़ विश्वास है । माचवे ने अपनी आत्मकथा में लिखा है - "मुझे पता था कि एक संकरे कुएँ के कूपमंडूक के समान रहकर मैं कभी संतुष्ट नहीं होता । जितना विशाल मैं ने अपना जाल बिछाया था, उतनी मेरी साहित्यिक रुचि बढ़ी थी । अमृता-प्रीतम के साथ बैठकर, मैं ने उनकी कविता का अनुवाद अंग्रेज़ी में किया ।"[1] भग्न मूर्ति(1958), "उल्का" (1950), अवलोकिता (1971), रानडे (1971), ब्राह्मण-कन्या (1971) आदि उनकी अनूदित पुस्तकें हैं । हिन्दी से मराठी में भी अनुवाद का काम माचवे ने किया है । इन में सुमित्रानन्दन पंत का "चिदंबरा" का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।

अंग्रेज़ी में भी कई अनूदित कृतियाँ प्रकाशित हुईं । इन में "केशवसुत", "कबीर", "राहुल सांकृत्यायन, "नामदेव:लाइफ एंड पोएट्री", तुकाराम पोएम्स, "लिटररी स्टडीज़ एंड स्केचेज़, विशेष रूप से उल्लेखनीय है । इन सब के अतिरिक्त सैकडों पृष्ठों का अनुवाद-पत्र-पत्रिकाओं में बिखरे पडे हैं, जिनको पुस्तक का रूप अब तक नहीं मिला है । यही नहीं माचवे का विचार था कि "इस विषयांतर का आशय इतना ही है कि हिन्दी को अभी

---

1. फ्राम सेल्फ टु सेल्फ - संस्करण-1987, पृ. 78,"Blossoming" शीर्षक से ।

" I knew that I could never be happy by remaining like a frog in the narrow well. The wider I spread my net, the more my circle of literary interests increased. I sat with Amrita Pritam and translated her poems in to English."

अन्य भारतीय भाषाओं से बहुत कुछ सीखना, जानना, अपनाना, स्वीकार करना और विनयपूर्वक ग्रहण करना है ।[1] दरअसल माचवे ने अनुवाद के द्वारा हिन्दी साहित्य को संपन्न किया है ।

संपादक माचवे :-

माचवे एक कुशल एवं समर्थ संपादक भी हैं । इस कुशलता के कारण ही "चौथा संसार" को मध्यप्रदेश के प्रमुख दैनिकों की पंक्ति में ला खड़ा किया । 1988 के सितम्बर से माचवे इस दैनिक के प्रधान संपादक रहे । तब से नित्य तीन संपादकीय - एकस्थानीय, एक राष्ट्रीय, एक अंतराष्ट्रीय लिखते रहे हैं । संपादक के नाते माचवे का नाम "भारतीय-संस्कृति" (मासिक), "संदर्भ-भारती", "चौथा-संसार" आदि से जुड़े हुए हैं । "संदर्भ-भारती" को एक भारतीय पत्रिका के रूप में स्थापित करने में माचवे का सब से बड़ा हाथ है । पिछले कई वर्षों से, जीवन के अन्त तक माचवे दैनिक "चौथा संसार" के प्रधान संपादक थे । प्रधान संपादक के नाते माचवे प्रतिदिन सामयिक विषयों पर लिखते रहे । संपादकीय के अतिरिक्त सामयिक विषयों पर वे "सादुल्ला" नाम से टिप्पणियाँ लिखते थे । इन व्यंग्यभरी, मर्मभरी चुटीली टिप्पणियों का संग्रह "सादुल्ला की खरी-खरी" के नाम से प्रकाशित है । देवकृष्ण व्यास का कथन है - "आज साहित्य सृजन के साथ-साथ पत्रकारिता को गौरवान्वित करनेवाले दिवंगत साहित्यकारों

---

1. डा. प्रभाकर माचवे - "भारत और एशिया का साहित्य" - संस्करण-1967 पृ. 7, "भूमिका" से ।

की सूची में डा. प्रभाकर माचवे का नाम भी जुड़ गया है ।"[1]

प्रधान संपादक के अतिरिक्त, सह संपादक या सहयोगी संपादक के रूप में भी माचवे का नाम चिरस्मरणीय है । हिन्दी के बड़े-बड़े संपादकवर्षि और साहित्यिक संपादकों से माचवे का निकट संबंध रहा है । माखनलाल जी, बनारसीदास, रामवृक्ष बेनीपुरी, काका कालेलकर, प्रेमचंद, अज्ञेय, जैनेन्द्रकुमार, महादेवी वर्मा, इलाचन्द्र जोशी आदि उनमें कुछ हैं । इनमें अज्ञेय, राहुल-सांकृत्यायन जैसे महान संपादक के साथ भी माचवे सहयोगी संपादक रहे हैं । स्वयं माचवे का कथन है - "अज्ञेय" एक संपादक रहे हैं । मैं उनके कुछ संपादनों का जिक्र करूँगा, जिन में मेरा भी "भाई" जैसा साथ रहा है ।"[2] कई अभिनन्दन ग्रंथ, शब्दकोश आदि के सहयोगी संपादक की हैसियत से माचवे ने महत्वपूर्ण काम किया है ।

संपादित ग्रंथ :-

माचवे द्वारा संपादित ग्रंथों की संख्या भी काफी है । इनमें कई प्रकार की पत्रिकाएँ, ग्रंथ, अभिनन्दन ग्रंथ आदि सम्मिलित है ।

---

1. "परिषद-समाचार" - जुलाई-अगस्त-सितम्बर - 1991, पृ. 30
2. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी (संपादक) - "अज्ञेय", प्रथम संस्करण - 1978, पृ. 235

"जैनेन्द्र के विचार" माचवे द्वारा संपादित प्रथम ग्रंथ है । "जैनेन्द्र के विचार" के संपादक के रूप में माचवे बहुत पहले ख्याति प्राप्त कर चुके थे । इसके अतिरिक्त भारतीय साहित्य की दृष्टि रखनेवाले कई ग्रंथ संपादित है । ऐसे ग्रंथों में "भारतीय उपन्यास कथासार" और "शतदल" ｛कविता-संकलन｝ विशेष उल्लेखनीय हैं । माचवे द्वारा संपादित ग्रंथों में त्रैमासिक पत्रिका "भारतीय-संस्कृति" भी काफी विख्यात है । इनके अतिरिक्त, गांधी-शतदल, बारह कदम, आदर्श पद-संग्रह, रेती के रात-दिन, वाद और सिद्धांत, मैत्री और सेवा, राहुल-स्मृति, धर्म-दर्शन-संस्कृति आदि कई ग्रंथ हैं । माचवे द्वारा संपादित ग्रंथों की संख्या 15 से अधिक है ।

प्रधान-संपादक, सहयोगी संपादक के अतिरिक्त पत्रकार के रूप में भी माचवे की अलग पहचान है । सक्रिय पत्रकारिता से उनका संबंध कम रहा है, फिर भी हरेक साहित्यिक पत्रिकाओं से माचवे जुड़े हुए थे । इनमें "कर्मवीर," "स्वराज्य", "अर्जुन", "हिन्दुस्तान" "नवभारत", "धर्मयुग", "साप्ताहिक हिन्दुस्तान" आदि अनेक पत्रिकाओं के नाम लिये जा सकते हैं । माचवे ने अपनी आत्मकथा में यों लिखा है - "मैं ने कई स्थानीय पत्रिकाओं के लिए लिखा, "अमृत-पत्रिका", "भारत", "संग्राम", "सरस्वती", "माया", "सम्मेलन-पत्रिका" और बच्चों की पत्रिकायें भी ।"[1] माचवे हिन्दी पत्रिकाओं के अतिरिक्त, मराठी और अंग्रेजी पत्रों में भी नियमित कालम लिखते थे।

---

1. फ्राम सेल्फ टु सेल्फ - प्रथम संस्करण - 1976, पृ. 68

" I wrote for several local papers, Amrit Patrika, Bharat, Sangam, Saraswati, Maya, Sammelan Patrika and even children's Magazines".

माचवे की अकाल्पनिक रचनाएँ :-

माचवे की अकाल्पनिक रचनाओं की चर्चा भी वांछित है । इनमें माचवे के बाल-साहित्य, दार्शनिक-ग्रंथ, यात्रावृत्त, रेखाचित्र, अभिनंदन ग्रंथ आदि सम्मिलित हैं । माचवे की रुचि बाल-साहित्य में भी रही है । माचवे ने बच्चों के लिए बहुत कुछ लिखा है । विद्यार्थियों के जलसे में माचवे बोलने के लिए जाते थे । उनका भाषण बच्चों के लिए प्रेरणादायी रहा है । माचवे ने बच्चों के कई ग्रंथ लिखे । उनमें "असम", "केरल", "महाराष्ट्र", आदिवासी बच्चे, "पाँच ऊँगलियाँ- मुट्ठी एक" आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं ।

दार्शनिक ग्रंथ :-

माचवे, साहित्य की अनगिनत विधाओं में सिद्धहस्त रहे हैं । दर्शन जैसे गंभीर विषय पर भी वे लिखते रहे । दर्शन में भी उनकी गहरी दिलचस्पी थी । वैदिक, औपनिषदिक, ब्राह्मण, बौद्ध, जैन दर्शनों के ज्ञाता वे हैं । डा. कृष्णा रैणा का कथन है - "माचवे की रुचि दर्शन के प्रति भी अधिक रही है, इन्होंने बाइबल का अध्ययन किया, विवेकानन्द और टैगोर की कई पुस्तकें पढ़ीं, वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में भाग लेकर कई पदक लिये हैं ।"[1] माचवे ने अपनी आत्मकथा में लिखा है - "चित्रकला के अतिरिक्त दर्शन में भी मेरी रुचि थी । मेरे अपने धर्म के अलावा, कई अन्य धर्मों के बारे में अध्ययन करने लगा । विवेकानन्द, टैगोर आदि के ग्रंथ

---

1. डा. कृष्णा रैणा - "प्रभाकर माचवे के हिन्दी उपन्यास" - संस्करण-1985, पृ. 9

भी पढ़े । इस अध्ययन से उनकी तर्क दृष्टि विकसित हुई । स्वीकृत मान्यताओं को ललकारने की शक्ति मिली ।"[1] यह सच है कि माचवे दर्शन के गंभीर विद्वान हैं तो उस क्षेत्र में भी कलम चलाने से नहीं चूके । विभिन्न धर्मों में ईश्वर कल्पना, "आधुनिक भारतीय विचारक", ईस्ट वेस्ट वेस्ट इन फिलॉसफी एण्ड लाइफ", बुद्धिज्म इन इण्डिया एण्ड सीलोन, हिन्दुइज्म इट्स कन्ट्रीब्यूशन टु साइंस एण्ड सिविलाइजेशन" आदि माचवे की प्रसिद्ध दार्शनिक पुस्तकें हैं ।

यात्रा-वृत्त :-

माचवे के यात्रा-वृत्त भी काफी प्रसिद्ध हैं । "गोरी नजरों में हम" माचवे का एक ऐसा यात्रा विवरण है, जिसे हम कभी भुला नहीं पाएँगे । यह यात्रा-वृत्त पहले "ज्ञानोदय" के आठ भागों में प्रकाशित था, बाद में इसे पुस्तकाकार रूप प्राप्त हुआ था । माचवे का एक अन्य यात्रा-वृतांत "रूस में" भी अपनी जीवन्त-दर्शन-शैली के लिए सदा-याद की जाएगी ।

---

1. "From self to self , पृ. 15,"Sprouting", शार्षक से ।
"Besides painting, my second greatest interest was philosophy I started reading more about different religions, including my own. xxx I read many books by Vivekananda,Tagore and so on and began to question a lot of the things in Hinduism which are taken for granted".

अभिनन्दन-ग्रंथ :-

माचवे अभिनन्दन - ग्रंथकार के रूप में भी विख्यात है। कितने संदर्भ अथवा अभिनन्दन ग्रंथों में माचवे के लेख छपे, यह शोध का विषय है। राजेन्द्रप्रसाद, संपूर्णानन्द, महादेवी, जगजीवन राम, गाँधी, काका-कालेलकर आदि अनेक अभिनन्दन-ग्रंथों में माचवे का योगदान स्मरणीय है। श्री जगदीश नारायण वोरा कहते हैं - "1947 में निराला अभिनन्दन ग्रंथ के लिए अथक परिश्रम से सामग्री इकट्ठी की। 1945 में भेंट किए गए 'प्रेमी-अभिनन्दन ग्रंथ' के मराठी - गुजराती विभाग के संपादक माचवे रहे।"[1]

चित्रकार :-

यह सर्वज्ञात है कि माचवे एक अच्छे चित्रकार हैं। कुछ समय तक उन्होंने विधिवत् चित्रकला की शिक्षा ली थी। रेखाचित्र बनाना उनका हॉबी है। मिनट से डेढ़ मिनट के अन्दर वह किसी भी व्यक्ति या किसी भी दृश्य का रेखाचित्र बना डालता है। उसके लिए उनको किसी आयोजन की जरूरत नहीं पड़ती। साधारण से कागज़ और साधारण-सी कलम से ही माचवे यह काम करते रहते हैं। उनकी एक प्रसिद्ध पुस्तक है - 'शब्द-रेखा'। इस में अनेक महापुरुषों और साहित्यकारों के रेखाचित्र भी है और शब्द चित्र भी। दर असल यह पुस्तक इस विधा के एकमात्र ग्रंथ है, जिसमें 52 विशिष्ट व्यक्तियों की मुखाकृतियाँ, संबद्ध व्यक्तियों के हस्ताक्षरों सहित प्रकाशित हैं। उनके द्वारा दी गई टिप्पणियाँ भी कम रोचक नहीं है। सागर-निज़ामी, डॉ. राधाकृष्णन, उमाशंकर-जोशी, स्टीफेन स्पेंडर, मादाम सोफिया, हुमायूँ,

---

1. अक्षर-अर्चना - प्रथम संस्करण-1977, पृ. 21

कबीर, जी शंकरा-कुरुप्प, यशपाल, महादेवी वर्मा आदि न जाने कितने प्रसिद्ध साहित्यकारों के नाम और चित्र इस में समाहित हैं ।

डा. माचवे की विषय-सीमा यहीं पर समाप्त नहीं होती । उनकी रुचि ललित-कला, चित्रकला के अतिरिक्त नृत्य, संगीत और शिल्प में भी है । माचवे को दर्शन के अतिरिक्त भाषा-विज्ञान, मनोविज्ञान और इतिहास में गहरी रुचि है । उनकी रुचि बाल-साहित्य में भी है । डा. विजयेन्द्र स्नातक का कथन बिलकुल सच है - "माचवे की सवा सौ से अधिक कृतियों में भाषा-वैविध्य, विषय-वैविध्य, विधा वैविध्य और विचार वैविध्य देखकर विस्मय होता है कि यह किसी एक माचवे की प्रतिभा और मनीषा का रचना कौशल है या प्रभाकर माचवे की देहयष्टि में संश्लिष्ट शताधिक मेधाओं का प्रतिफलन है ।"[1]

साहित्य, संस्कृति, राजनीति, धर्म, दर्शन और आध्यात्म से ऐसा अटूट रिश्ता रखनेवाले साहित्यकार आज भारतीय भाषाओं में नहीं है । दर असल माचवे सिर्फ साहित्यकार ही नहीं, बल्कि विभिन्न क्षेत्रों में काम करनेवाले असंख्य लोगों के मददगार और शुभ चिंतक थे । माचवे जैसे विराट व्यक्तित्व वाले, उनके जैसे बहुभाषी प्रतिभा वाले विरले ही जन्म लेते हैं । माचवे के अभाव में हिन्दी जगत् उस व्यक्ति की खोज करता रहेगा, जो भारतीय भाषाओं और साहित्यों के मध्य सेतु बनकर भारतीयता को सही परिदृश्य में परिभाषित करने में समर्थ हो ।

---

1. डा. प्रभाकर माचवे "सादुल्ला का खरी-खरी", सं. 1992, पृ. 5 - "भूमिका" से ।

अध्याय : दो

प्रयोगशील कविता की पृष्ठभूमि और माचवे की तारसप्तकीय कवितायें

तारसप्तक का आयोजन :-

"तारसप्तक" का आयोजन, संकलन, संपादन और प्रकाशन हिन्दी काव्य जगत् की एक महत्वपूर्ण घटना है । सन् 1943 में अज्ञेय के संपादकत्व में इसका प्रकाशन हुआ । इस संकलन के साथ "प्रयोगवाद", "प्रयोगशील" "नयी कविता" आदि काव्य-प्रवृत्तियों का संबंध है । वास्तव में ये नाम हिन्दी कविता के विकास की विभिन्न अवस्थाओं एवं दिशाओं को सूचित करते हैं ।

"तार सप्तक" के उद्भव एवं प्रकाशन के बारे में अज्ञेय का कथन है - "जब हिन्दी में "अखिल भारतीय लेखक सम्मेलन" की आयोजना की गयी थी, तब कुछ उत्साही बन्धुओं ने विचार किया कि छोटे-छोटे फुटकर संग्रह छापने की बजाय एक संयुक्त संग्रह छापा जाये, क्योंकि छोटे-छोटे संग्रह की पहले तो छपाई की समस्या होती है, फिर भी वे छपकर सागर में एक बूंद से खो जाते हैं ।"[1] यह सिद्धांत रूप से मान लिया गया था कि योजना का मूल आधार सहयोग होगा अर्थात् उस में भाग लेनेवाला प्रत्येक कवि पुस्तक का साझी होगा । दूसरा मूल सिद्धांत यह था कि संगृहित कवि सभी ऐसा होंगे जो कविता को प्रयोग का विषय मानते हैं जो यह दावा नहीं करते कि काव्य का सत्य उन्होंने पा लिया है, केवल अन्वेषी ही अपने को मानते हैं । इस तरह "तार सप्तक" के आयोजन का वास्तविक इतिहास यहीं से आरंभ होता है ।[2]

---

1. "तार सप्तक" - "विवृत्ति और पुरावृत्ति" (प्रथम संस्करण की भूमिका) पृ. ।।
2. "तारसप्तक" - विवृत्ति और पुरावृत्ति"(प्रथम संस्करण की भूमिका) पृ. ।।

इस संदर्भ में "तारसप्तक" के कवि प्रभाकर माचवे ने "तारसप्तक" को सहयोगी प्रकाशन कहा है ।[1]

"तारसप्तक" के आयोजन के बारे में एक अन्य मत भी है - ""तारसप्तक" की मूल योजना मध्यप्रदेश के चार तरूण कवियों - माचवे, मुक्तिबोध, प्रभागचन्द्र शर्मा और नेमिजी - की थी । इन्होंने वीरेन्द्रकुमार जैन और गिरिजाकुमार को सम्मिलित कर पहले छः कवियों की कविताओं का संकलन निकालने की कल्पना की थी, पर बाद में "सप्तर्षि" या "सप्तक" नाम के चलते एक और कवि को सम्मिलित करना ज़रूरी हो गया । पहले सोचा था कि सारे कवि मध्य-प्रदेश के ही होंगे, और ऐसा कवि जिनका कोई संग्रह उस समय तक न निकला हो । बाद में बन्धन शिथिल कर दिये गये और कवियों के नामों में भी परिवर्तन हुआ । सातवें कवि के रूप में अज्ञेय को रखने की बात तय हुई, क्योंकि वे संपादन और प्रकाशन का दायित्व वहन करने वाले थे । संपादन कविताओं का चुनाव आदि अज्ञेय ने अकेले नहीं किया था । लेकिन अज्ञेय ने उस कार्य को संभव बनाने के लिए अधिक प्रयत्न और परिश्रम किया था ।"[2] "तार सप्तक" की योजना के संबंध में वीरेन्द्र मोहन का मत है - "तार सप्तक" और प्रयोगवाद के समय से ही मध्यप्रदेश के कवि अपनी पहचान के लिए संघर्ष करते रहे हैं । "तारसप्तक" की योजना में भी मध्यप्रदेश की भूमिका रही है ।"[3] इतने पर भी अज्ञेय की भूमिका को अनदेखा

---

1. गगनांचल - वर्ष-10, अंक-2, 1987, पृ. 14
2. "साक्षात्कार"-104-106, जुलाई-सितम्बर 1988, नन्द किशोर नवल का लेख - "मुक्तिबोध नई कविता बनाम प्रगतिशीलता" शीर्षक से ।
3. "आजकल नवम्बर 1987, वीरेन्द्र मोहन का लेख "मध्यप्रदेश के नये कवि और उनकी कविता" शीर्षक से ।

नहीं किया जा सकता और यह एक ऐतिहासिक तथ्य है जिसकी चर्चा करते हुए डा. माचवे का कहना है - "तार सप्तक" कलकत्ते में छपा । तब आसाम मोर्चे पर वात्स्यायन जी कप्तान थे - युद्ध में मोर्चे पर । नेमीचन्द्र, भारत भूषण सब कलकत्ता में थे । उन सब ने मिलकर अन्तिम निर्णय लिये होंगे । मैं समझता हूँ, वात्स्यायन जी का जैसा स्वभाव हैं, जब वे कोई चीज़ संपादित करते हैं तो पूरे अपने निर्णय और दायित्व पर ही करते हैं ।"[1] अज्ञेय की संपादकीय कुशलता पर प्रकाश डालते हुए, "तारसप्तक" के संपादन पर माचवे ने कहा है - "1943 में सात्रह सब की कवितायें मंगाकर, छाँटकर, हरेक के परिचय स्वयं अर्द्धविनोदी शैली में लिखकर "अज्ञेय" ने एक ऐसा संपादन का कीर्तिमान स्थापित कर दिया कि उसके बाद पचासों लोगों ने उनकी नकल में कई "प्रारंभ" किए और कई " पहचान" में आनेवाली और न आनेवाली सहकारी संकलन-योजनाएँ बनाईं । पर "अज्ञेय" वाली जुगत फिर दुबारा न जम सकी । जादू एक बार ही होता है । स्वयं उनके बाद के 7-7 वर्ष वाले "दूसरा सप्तक" और "तीसरा सप्तक" के प्रयत्न उतने नहीं जमपाए ।"[2]

तार सप्तक का नामकरण :-

अज्ञेय के संकलन और संपादन का लाभ यह हुआ कि रचनाओं का संकलन एक अनुभवी कवि ने किया और प्रकाशन का उद्देश्य भी भूमिका में उन्होंने स्पष्ट कर दिया है । प्रथम संस्करण के अन्तर्गत संपादक की भूमिका,

---

1. डा. श्याम परमार - "अकविता और कला संदर्भ" - पृ. 119
2. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी (संपादक) - "अज्ञेय" प्रथम संस्करण-1978, पृ. 237, संपादक "अज्ञेय" शीर्षक से ।

संकलित कवि का संक्षिप्त परिचय, और वक्तव्य एवं कविताएँ दी गयी है। कविताओं की संख्या में कोई समरूपता नहीं है। इस तरह "तार सप्तक" का प्रकाशन हुआ है। "तार सप्तक" के नामकरण में माचवे का योगदान है। इस ओर वे संकेत करते हैं - "मैं ने यह कल्पना सब से पहले शुजालपुर में नेमिचन्द्र और मुक्तिबोध से चर्चित की। मराठी में रवि किरण मंडल के सप्तर्षि जिसपर अंकित होते हैं, ऐसी कई कविता पुस्तकें छपी थीं। मैं ने पहला नाम "सप्तर्षि" रखना चाहा था। नेमिचन्द संगीत प्रेमी थे। उन्होंने "सप्तक" सुझाया। "तार" मैं ने जोडा। दिल्ली में, फासिस्ट - विरोधी लेखक सम्मेलन के समय। एक विचार केवल "सात कवि" जैसा बँगला के तब "एक पोयेशाय एकटि" सीरीज़ जैसा सामान्य नाम देकर अलग-अलग छोटे-छोटे हर एक के संग्रह छापने का भी था। पर अन्ततः वात्स्यायन जी ने "तार सप्तक" चुना। उन्होंने कलकत्ते में मुखपृष्ठ बनवाया।"[1] ये सात कवि अन्त में स्वीकृत हुए - गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, रामविलास शर्मा और अज्ञेय।

अज्ञेय संगृहीत कवियों को राहों के अन्वेषी स्वीकार करते हैं। सातों कवि एक दूसरे से परिचित हैं - बिना इनके इस ढंग का सहयोग कैसे होगा? किन्तु इससे यह परिणाम न निकाला जाए कि वे कविता के किसी एक "स्कूल" के कवि हैं या कि साहित्य जगत् के किसी गुट अथवा दल के सदस्या या समर्थक हैं। बल्कि उनके एकत्र होने का कारण यही है कि वे किसी एक स्कूल के नहीं है, किसी मंजिल पर पहुँचे हुए नहीं हैं-राही नहीं, राहों के अन्वेषी।

---

1. डा. श्याम परमार - "अकविता और कला संदर्भ"- पृ. 119

तार सप्तक के प्रकाशन का उद्देश्य :-

"तार सप्तक" के बारे में प्रभाकर माचवे का कहना है - "यह संग्रह छायावाद और प्रगतिवाद दोनों प्रचलित शैलियों से भिन्न था, यद्यपि प्रगतिशील सामाजिक प्रवृत्ति की कविताएँ उस में थीं ।"[1] माचवे के कथन से स्पष्ट है कि वे प्रचलित छायावादी और प्रगतिवादी दोनों शैलियों से असंतुष्ट थे । प्रभाकर माचवे ने छायावाद पर बड़े व्यंग्यपूर्ण टिप्पणी की है - "छायावाद हिस्टीरिया की भाँति हिन्दी कविता का एक मानसिक रोग है । अत: एक तरुण, स्वस्थ मना कवि के लिए छायावाद का माध्यम स्थविर, स्त्रैण और जीर्ण जान पड़ता है ।"[2] माचवे की यह आक्रमक उक्ति छायावादी कविता की पलायनवादी-प्रवृत्ति को लेकर प्रकट हुई । यथार्थ को नकारने के कारण उन्होंने संभवत: ऐसा लिखा है । यह वह समय था कि कविता बदल रही थी । इसलिए माचवे ने अपने वक्तव्य के एक अन्य स्थान पर कहा है - "आज हिन्दी कविता में रोमान्स के छिछले और गन्दले हो जाने के कारण, यथार्थ पर अधिक जोर दिया जा रहा है ।"[3] माचवे की राय में यह आवश्यक और इष्ट भी है । यदि इस मत की आड़ में प्रयोगवादी कवियों को देखें तो प्राय: सभी कवि छायावादी कुहासे से निकलकर बाहर आने को तत्पर हैं । अज्ञेय का विचार है - "ऐसे संग्रह की आवश्यकता इसलिए थी कि कवि ने महसूस किया कि छायावाद जहाँ नितान्त वैयक्तिक होकर समाज से कट गया है, वहाँ प्रगतिवाद समाज के निकट होते हुए काव्य शिल्प से बहुत दूर है, राजनीति से बुरी तरह प्रतिबद्ध है । परंपरित शिल्प

---

1. "गगनांचल" वर्ष-10, अंक-2, 1987, पृ. 14
2. "तारसप्तक"-प्रभाकर माचवे - वक्तव्य - पृ. 184
3. "तारसप्तक" - प्रभाकर माचवे - वक्तव्य - पृ. 183

और शब्द समकालीन अभिव्यक्ति के उपयुक्त नहीं है । अतः "तार सप्तक" एक नयी प्रवृत्ति का पैरवीकार मात्र था, इससे अधिक कुछ नहीं ।"[1] यही कारण है कि प्रत्येक कवि तद्युगीन कविता से असंतुष्ट थे । कवि मुक्तिबोध का कहना है कि - "मेरा मन नव-क्लासिकवादी की तरफ दौड़ रहा है अर्थात् ऐसी काव्य रचना की ओर जिसका कथ्य व्यापक हो, जिस में जीवन के विश्लेषित तथ्यों और उनके संश्लिष्ट निष्कर्षों का चित्रण हो ।"[2] नेमिचन्द जैन मानते हैं कि - "उनकी (संगृहित कविताओं की) अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों तत्कालीन सामाजिक और साहित्यिक परिस्थितियों की स्वाभाविक और लगभग अनिवार्य परिणति थी ।"[3] प्रभाकर माचवे ने तत्कालीन साहित्यिक स्थिति को स्पष्ट करते हुए उसके प्रति अस्वीकृति का कारण सहित वक्तव्य दिया है । माचवे का कथन है - "इस प्रकार वस्तु की दृष्टि से, हिन्दी कविता में अभी विषयों की विविधता, व्यंग्य का तीक्ष्ण और सुरुचिपूर्ण प्रयोग, प्रकृति के संबंध में अधिक वैज्ञानिक दृष्टि, जन जीवन के निकटतम जाकर ग्राम-गीत, लोक-गाथा और बाज़ारू कहलाई जोकर हेय मानी जाने वाली बहुत सशक्त और मुहावरेदार जबान से नये-नये शब्द रूपों और कल्पना चित्रों को ग्रहण करना और प्रयोगशील अभिव्यंजना के प्रति औदार्य आना चाहिए ।"[4] इन वक्तव्यों से स्पष्ट है कि "तारसप्तक" के प्रकाशन का उद्देश्य किसी "वाद" की शुरूआत करना नहीं था, बल्कि प्रचलित काव्य धाराओं से असहमति प्रकट करना था ।

---

1. "तीसरा सप्तक" की भूमिका से ।
2. "तारसप्तक"- मुक्तिबोध का वक्तव्य - पृ. 14 (संस्करण-1972)
3. "तारसप्तक" - नेमिचन्द का वक्तव्य - पृ. 74
4. "तारसप्तक" - प्रभाकर माचवे का वक्तव्य - पृ. 185

तार सप्तक और आधुनिकता :-

"तार सप्तक" के साथ हिन्दी में आधुनिक कविता के प्रारंभ की चर्चा हमेशा उठी और वह सच भी है । लेकिन कालान्तर में इसको लेकर भी मत वैषम्य उभरने लगे हैं । नामवर सिंह ने "कविता के नए प्रतिमान" में इस ओर संकेत किया है - "जहाँ तक "तार सप्तक" की ऐतिहासिकता का प्रश्न है, उसके बारे में अभी तक जो भी तथ्य सामने आये हैं, उन से स्पष्ट है कि "तारसप्तक" एक नयी काव्यात्मक क्रांति का अग्रधावक नहीं, बल्कि उसकी कुछ आरंभिक प्रवृत्तियों की सामूहिक अभिव्यक्ति मात्र है । x x x प्रथमतः निराला में ही न केवल "तारसप्तक" के लगभग सभी प्रयोग बल्कि उससे भी और कहीं अधिक, कहीं अधिक, उसके पन्त जी में उनकी अतुकान्त और मुक्त छन्द की कविताओं में - लगाकर "ग्रंथि" से युगवाणी तक । फिर नरेन्द्र शर्मा ने भी अपनी कतिपय वर्णनात्मक अतुकान्त मुक्तछन्द की कविताओं में अपनी एक विशिष्ट शैली का परिचय दिया है । यद्यपि वह उनकी सामान्य धारा नहीं ।"[1] स्पष्ट है कि नामवर सिंह आधुनिक कविता का प्रारंभ या कविता में आधुनिक संकेत तारसप्तक से पहले मानते हैं । उसी लेख में उन्होंने इतना स्वीकार किया है - तारसप्तक" के प्रकाशन से 4-5 वर्ष पूर्व "तारसप्तक" के कवियों के अतिरिक्त केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह, त्रिलोचन, भवानीप्रसाद मिश्र जैसे अनेक समर्थ कवि नये ढंग की काव्य रचना कर रहे थे । इसी बीच नरेन्द्र शर्मा ने भी रूमानियत से अलग हटकर नये काव्य प्रयोग किये । निराला की "अनामिका" में संकलित 1937-38 की कविताओं और आगे चलकर 1941

---

1. नामवर सिंह - "कविता के नये प्रतिमान" - तृतीय संस्करण, 1982, पृ. 78

में प्रकाशित "कुकुरमुत्ता" शीर्षक लंबी कविता से स्पष्ट है कि हिन्दी में "तार सप्तक" के प्रकाशन से पहले ही नये परिवर्तन की जोरदार हवा बह चुकी थी । "रूपाभ", "उच्छृंखल" जैसी अल्पकालिक एवं "हंस", "विशाल भारत" जैसे प्रतिष्ठित पत्रिकाएँ इस परिवर्तन का उद्घोष कर रही थी । इनके अतिरिक्त माखनलाल चतुर्वेदी का "कर्मवीर" भी क्षेत्रीय प्रतिभाओं की नयी रचनाएँ प्रकाश में ला रहा था । "तारसप्तक" इसी जीवन्त परिवेश की उपज और एक अभिव्यक्ति है ।"[1]

लेकिन नामवरसिंह से पहले सन् 1946 में शमशेर ने "नया-साहित्य पत्रिका में "तारसप्तक" के बारे में यों लिखा - "प्रयोग ही "तार सप्तक" का नारा है । इस दिशा में "तार सप्तक" की क्या विशेषता है ? एकदम स्पष्ट कहा जाय, तो कोई खास नहीं । पहला कारण यह कि "तार सप्तक" के प्रयोग अन्य कवियों के संग्रहों में मिल जायेंगे । निराला में, पंत में, नरेन्द्र शर्मा में, जिनकी एक कविता "बटनहोल" भी पाठकों को अपरिचित न होगी ।"[2] वास्तव में सन् 1968 में नामवर सिंह ने शमशेर के उक्त कथन को दुहराया है । इसी मत की पुष्टि परवर्ती आलोचकों ने भी की है । श्री अशोक वाजपेयी का कहना है - "इस पर विवाद है कि हिन्दी में क्रांतिकारी परिवर्तन की शुरूआत 1943 में प्रकाशित "तारसप्तक" से मानी जाये या नहीं । पर इतना निर्विवाद है कि वह हिन्दी कविता एक

---

1. नामवर सिंह - "कविता के नये प्रतिमान" - संस्करण 1982, पृ. 79
2. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना व मलयज (संपादक) - "शमशेर" संस्करण-1971, पृ. 59

महत्वपूर्ण पड़ाव है और अनेक नये रुझानों का प्रस्थान बिन्दु भी ।"[1] डा. केदारनाथ सिंह का कहना है - "मेरा ख्याल है कि तत्कालीन साहित्यिक तथ्यों की जाँच पड़ताल की जाए तो ज्ञात होगा कि यह परिवर्तन न तो एकबारगी आया था, न ही अप्रत्याशित रूप में । "रूपाभ" (1938 ई.) के प्रकाशन के आसपास ही उसके लिए भूमि तैयार हो गयी थी । निराला, नरेन्द्र शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल की कुछ कविताओं में अनुभूतियों के "स्थानीकरण" के साथ-साथ एक सर्वथा नए प्रकार का शिल्प भी विकसित होने लगा था, जिस में पूर्ववर्ती कविता के छन्दानुशासित शिल्प से कहीं अधिक लचीलापन था ।"[2] डा. प्रयाग शुक्ल का मत है - "तार सप्तक" के संपादक ने इस में संकलित कवियों को "राहों का अन्वेषी" कहा था । छायावादी, राष्ट्रीयधारा और स्वच्छन्दतावादी कविताओं और कवियों के बरक्स में "नये राहों के अन्वेषी" थे भी । हालाँकि 1946 में प्रकाशित "सात आधुनिक हिन्दी कवि" शीर्षक समीक्षा लेख में शमशेर बहादुर सिंह ने लिखा था -"प्रयोग ही "तारसप्तक" का नारा है । इस दिशा में "तार सप्तक" की क्या विशेषता है ? एकदम स्पष्ट कहा जाये तो कोई खास नहीं है । कारण इसके दो हैं - एक तो यह कि मौलिक रूप से "तार सप्तक" के प्रयोग अन्यत्र कई और कवियों के, उससे काफी पहले के संग्रहों में मिल जायेंगे । प्रथमतः निराला में ही, न केवल "तार सप्तक" के लगभग सभी प्रयोग बल्कि उससे भी कहीं और अधिक, दूसरे पंत जी में......"[3] डा. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने "तार सप्तक"

---

1. "पूर्वग्रह" - अंक - 63-64, सितम्बर 1984, "संपादकीय" से ।
2. केदारनाथ सिंह - "मेरे समय के शब्द", संस्करण 1993, पृ. 32
3. नवभारत टाइम्स, नवंबर 20, 1994 - प्रयाग शुक्ल का लेख - "तार सप्तक" की अर्धशती होने पर" शीर्षक लेख से ।

के बारे में यों लिखा - "तार सप्तक " के प्रकाशन से हिन्दी साहित्य में आधुनिक संवेदना का सूत्रपात माना जाता है । वही नवलेखन के प्रारंभ की तिथि मानी जाती है । आगे उनका कहना है कि - "वैचारिक मतभेद के बावजूद इन कवियों को एक साथ लानेवाला मुख्य तत्व उनका प्रयोग पर आग्रह है । समाज के हित में जैसे क्रांति की सतत् प्रक्रिया काम्य है, वैसे ही रचना के हित में प्रयोग की ।"[1] इन आलोचकों के कथनों से स्पष्ट है कि "तार सप्तक" के प्रकाशन के पूर्व ही हिन्दी कविता में एक विशिष्ट शैली प्रचलित थीं । लेकिन "तार सप्तक" के प्रकाशन के साथ ही, उसे एक समवेत् रूप प्राप्त हुआ । हिन्दी में क्रांतिकारी परिवर्तन की शुरूआत 1943 में प्रकाशित तारसप्तक से मानी जाती है और यह आधुनिक कविता के प्रारंभ की तिथि मानी जा सकती है । डा. प्रयाग शुक्ल का कहना बिलकुल सही है कि - "प्रयोग के मामले में "कोई खास नहीं" होकर भी "तार सप्तक" एक प्रकार से मील पत्थर तो बना ही ।"[2] सन् 1938 के आसपास प्रस्फुटित काव्य-प्रवृत्तियों को एक सामूहिक-प्रभावशाली रूप देने में "तार सप्तक" के कवि सफल हुए हैं । 1943 में "तार सप्तक" का प्रकाशन उसी आवश्यकता की पूर्ति है ।

प्रयोगवाद काव्य की प्रवृत्तियाँ :-

"तार सप्तक" का प्रकाशन जिस साहित्यिक पृष्ठभूमि में हुआ, उसकी कई अन्तर्धाराएँ थीं । उन में यथार्थवादी दृष्टि, समाजवादी

---

1. रामस्वरूप चतुर्वेदी - "हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास" - संस्करण- 1986, पृ. 227
2. नवभारत टाइम्स - 20 नवंबर 1994, "तारसप्तक की अर्धशती होने पर " शीर्षक लेख से ।

वैचारिकता, मानवतावाद आदि मनुष्योन्मुखी काव्य-प्रवृत्तियों के अलावा संशय, अस्वीकार, अनास्था आदि निषेधात्मक प्रवृत्तियाँ भी थीं। संश्लिष्ट जीवन-दृष्टि के प्रभाववश व्यक्ति का जटिल अहं अपनी अन्तरंगता की पहचान के लिए संघर्ष करता है। यह एक प्रकार की वैयक्तिक दृष्टि है, लेकिन व्यक्तिवादी नहीं है। यही दृष्टि बौद्धिकता में ओतप्रोत जीवन दृष्टि प्रदान करती है। निर्ममता और तटस्थता भी इसी का परिणाम है। इन्हीं प्रवृत्तियों के साथ-साथ असंतोष और अहंवाद से उत्पन्न विद्रोह आदि का भाव भी था। "तार सप्तक" में इन सब की समवेत अभिव्यक्ति हुई है। यही कारण है कि "तारसप्तक" का प्रकाशन अपने आप में एक महत्वपूर्ण घटना मानी जाती है। डा. नरेन्द्र मोहन का कहना है - "प्रयोगवादी कवियों ने अपने प्रयोगों द्वारा पुरानी काव्य रीतियों और रूढ़ियों को तोड़कर, नयी और अनजानी राहें पर चलने के खतरे उठाये थे और कविता के स्तर पर प्रयोगों की सार्थकता और औचित्य प्रमाणित करने की कोशिश की थी।"[1] इस संदर्भ में डा. कृष्णलाल का कथन है - "हिन्दी कविता में कोई ऐसा प्रतिनिधि संकलन नहीं प्रकाशित हुआ था, जो तत्कालीन कवि-मानस की मिली-जुली प्रवृत्तियों, आस्था-अनास्था, आशा-निराशा, व्यंग्य-विद्रूप, रोष, नागरिक-शोषों, ग्राम्य जीवन तथा प्रकृति की सुन्दर छवियों के प्रति आकर्षण, नवीन प्रयोग -चमत्कार के प्रति मोह, अवसादग्रस्त अन्तर्मुखी अहं, सामाजिक जीवन में फैली घोर विषमता की अनुभूति आदि को समग्रतः प्रकाशित कर सकें। अतः "तार सप्तक" में एक ऐतिहासिक आवश्यकता की पूर्ति अवश्य की है।"[2]

---

1. "परिशोध" तेरहवाँ अंक, नवंबर, 1970 - पृ. 38
2. कृष्ण लाल - "तार सप्तक के कवि काव्य शिल्प के मान", संस्करण-1979, पृ. 71

"तारसप्तक" की प्रत्येक प्रवृत्ति का संक्षिप्त में विश्लेषण यहाँ वांछित है -

वैयक्तिकता :-

प्रयोगवाद में व्यक्ति-तत्व की प्रधानता है । प्रयोग-भावना व्यक्ति-निष्ठ होती है । व्यक्ति की स्वतंत्र चिन्तन-पद्धति को विशेष महत्व देने के कारण ही प्रयोगवाद में व्यक्ति की प्रतिष्ठा अनिवार्य थी । इस संदर्भ में डा. नरेन्द्र मोहन का कहना है - "अहं की प्रवृत्ति या आत्मग्रस्तता प्रयोगवादी कविता के व्यक्ति की मुख्य प्रवृत्ति है । यह व्यक्ति, छायावादी कविता के "व्यक्ति" के समान वायवी और रहस्यात्मक न होकर, जटिल और कुंठित है, व्यक्ति परक कविता के समान भावुक और कल्पनाशील न होकर, मन की भीतरी तहों में विचरण करनेवाला बौद्धिक प्राणी है ।"[1] "तार सप्तक" की कविताओं में भिन्न-भिन्न पैमाने पर वैयक्तिकता की यह प्रवृत्ति परिलक्षित होती है । उदाहरण द्रष्टव्य है -

"मैं अपने से ही सम्मोहित, मन मेरा डूबा निज में ही,
मेरा ज्ञान उठा निज में से, मार्ग निकाला अपने से ही ।
मैं अपने में ही जब खोया तो अपने से ही कुछ पाया,
निज का उदासीन विश्लेषण आँखों में आँसू भर लाया ।।"[2]

---

1. "परिशोध" नवंबर 1970, अंक-13, पृ. 38
2. "तार सप्तक", संस्करण-1966, पृ. 67 - मुक्तिबोध की कविता "अन्तर्दर्शन" शीर्षक से ।

बौद्धिकता :-

प्रयोगवादी काव्य की सर्वाधिक प्रमुख प्रवृत्ति उसकी बौद्धिकता है । बौद्धिकता आज के वैज्ञानिक युग की परिणति हैं । प्रयोगवादी कविता में निहित यथार्थ चित्रण, सूक्ष्म-व्यंग्य, नये-नये अर्थों को ध्वनित करनेवाला अभिनव प्रतीक विधान इत्यादि के पीछे, बुद्धिगत रूप दिखाई देता है । आज का मनुष्य बुद्धि प्रधान दृष्टि रखता है । इस संदर्भ में डा. अरविन्द का मत है - "बौद्धिकता का अभिप्राय यह है कि भावात्मक अभिव्यक्ति से पल्ला छुडाकर कवि ने विवेक से गठबंधन कर लिया है । इस तरह कविता बौद्धिक हो गई है और उसका निकट का संबंध विवेक से जुड गया है । कवि अपने पाठक को माधुर्य, विह्वलता, मुग्धता से ओतप्रोत नहीं करना चाहता बल्कि खरोंच मारकर उसे सचेत तथा जीवनगत सत्यों के प्रति सतर्क करना चाहता है ।"[1] बौद्धिक दृष्टि मात्र यथार्थ दृष्टि का परिणाम नहीं है । उसका आधार यथार्थ होते हुए, कल्पना की ऊँची उडानों से मुक्त होकर जीवन की संश्लिष्टता को व्यक्त करने के लिए, बौद्धिक दृष्टि की आवश्यकता है । कविता में निर्वैयक्तिक दृष्टि से भावगत तटस्थता उपजती है, जिससे बौद्धिक दृष्टि का विकास होता है । जीवनगत सत्यों के प्रति पाठकों को सतर्क करने का एक अनुभूत्यात्मक स्तर उसमें होता है । यह विदित बात है कि भोगी हुई स्थितियों में ईमानदारी अधिक है । उदाहरण द्रष्टव्य है -

---

1. डा. अरविन्द - "सप्तक-काव्य", प्रथम संस्करण-1976, पृ. 152

"इस मुसाफिरी का कुछ न ठिकाना, भइया !
यहाँ हार बन गया अदना दाना, भइया ।
है पता न कितनी और दूर है मंजिल ,
हम ने तो जाना केवल जाना भइया ।"[1]

स्थितियों का हल्का-फुल्कापन और व्यंग्यात्मकता की गहराई :-

स्थितियों का हल्का-फुल्कापन और व्यंग्यात्मकता प्रयोगवादी कविता की प्रमुख प्रवृत्ति है । नामवर सिंह का कथन है - "हिन्दी कविता में यह प्रवृत्ति छायावादी मिज़ाज के टूटने की स्थिति में उत्पन्न हुई, जिसका ऐतिहासिक दस्तावेज़ है निराला का "कुकुरमुत्ता" । x x x अकस्मात् एक हल्की बात कहकर गंभीरता को झटके से तोड़ने की प्रवृत्ति छायावादोत्तर काव्य के सन्धिकाल की व्यापक प्रवृत्ति थी । "तार सप्तक" के अधिकांश कवियों ने इस कौशल का उपयोग किया है ।"[2] डा. शेरजंग गर्ग का मत है - "तार सप्तक" के प्रयोगवादियों की कविताओं में व्यंग्य एक अनिवार्यता के रूप में आया है । x x x प्रयोगवादियों में आधुनिक, वैज्ञानिक और मशीनी सभ्यता, महानगरीय वातावरण की विभीषिका से त्रस्त विश्वमानवता की आन्तरिक पीडा, गरीब और अमीर के शोषित-शोषक संबंधों, झूठे प्रपंचपूर्ण एवं भीतर से कोरे आकर्षणों पर मार्मिक, तीखा और करुण व्यंग्य मिलता है ।"[3]

---

1. "तार सप्तक", संस्करण-1966, पृ. 194 - "राही से" शीर्षक से ।
2. नामवर सिंह - "कविता के नये प्रतिमान", संस्करण-1982, पृ. 147
3. डा. शेरजंग गर्ग - "स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य" - संस्करण 1973, पृ. 246

हल्का-फुल्कापन और व्यंग्यात्मकता के कौशल का प्रयोग, कविता के अन्दर तनाव को ढीला करने के लिए और कविता के समग्र भाव को और भी गहरा करने के लिए इस्तेमाल किये गये हैं । अज्ञेय, भारत भूषण अग्रवाल, भवानी प्रसाद मिश्र, प्रभाकर माचवे आदि की कविताओं में यह हल्का-फुल्कापन और व्यंग्यात्मकता की प्रवृत्ति काफी प्रखर हैं । उदाहरण द्रष्टव्य है -

"हर आदमी में देवता है,
और देवता बड़ा बोदा है
हर आदमी में जन्तु है
जो पिशाच से न थोड़ा है
हर देवतापन हम को
नपुंसक बनाता है
हर पैशाचिक पशुत्व
नये जानवर बढ़ाता है
हम क्या करें -
देवता और राक्षस के क्रम से कैसे छूटें ।"[1]

यथार्थ की सघनता :-

प्रयोगवादी कवि यथार्थवादी हैं । ये अपने परिवेश के प्रति अत्यन्त संवेदनशील है - उसका "सत्य" उसके युग की व्यक्ति ही है । प्रयोगवादी कवि की जीवन दृष्टि गहन है । वह वास्तव की प्रतीति को

---

1. "तार सप्तक", संस्करण-1966, पृ. 163, "दो पाटों की दुनिया" शीर्षक से

उसकी समग्रता में चित्रित करना चाहता है । शैल-सिन्हा का कहना है - "प्रयोगवाद का उदय ही मोह-भंग से हुआ, अतः छायावादी कल्पनाशीलता के स्थान पर इस में यथार्थ का आग्रह अधिक रहा ।"[1] प्रयोगवादी कविता जीवन के सभी क्षेत्रों से अनुभवों का चयन करती है । जीवन विस्तार उसका अनुभूत संसार है । अतः यथार्थ उसका प्रेरणास्रोत है । इस संदर्भ में माचवे का अभिमत है - "हमारे समय में आस्था का अभाव नहीं था, आज अनास्था का युग है । हम लोगों ने सचेतन रूप से चाहा था कि हिन्दी कविता को पुरानी लीकों से मुक्त किया जाए - स्वस्थ, शुद्ध, ताज़े वातावरण में उसे अधिक सहज और जीवन के यथार्थ के सन्निकट लाया जाए ।"[2] यह सच है कि काव्य में यथार्थ की सघनता के कारण संश्लिष्टता आ जाती है । माचवे के संबंध में जयंत बख्शी का कथन है - "माचवे की यह विशेषता है कि और कवियों की तरह सिर्फ प्रकृति-प्रेम और गरीबी-अमीरी के अन्तर के बारे में ही नहीं लिखते थे । जो कुछ माचवे जी लिखते उसमें वास्तविकता और व्यंग्य भरपूर होते हैं ।"[3] उदाहरण द्रष्टव्य है -

"नोन तेल लकड़ी की फिक्र में लगे घुन से,
मकड़ी के जाले से, कोल्हू के बैल से ।
मकान नहीं रहने को, फिर भी ये घुन से
गंदे, अंधियारे और बदबू भरे दड़बों में
जनते हैं बच्चे ।"[4]

---

1. शैल सिन्हा - "प्रयोगवाद और अज्ञेय" - संस्करण-1969, पृ. 44
2. डा. रणवीर रांग्रा - "हिन्दी साहित्यकारों से साक्षात्कार"-संस्करण-1991, पृ. 246
3. डा. प्रभाकर माचवे: सौ दृष्टिकोण, संस्करण-1988, पृ. 105
4. "तार सप्तक", संस्करण-1966, पृ. 204

इसकी यथार्थ दृष्टि एकायामी नहीं है । यह कविता संश्लिष्ट जीवन स्थितियों की तरफ संकेत करती है । अभावग्रस्त जीवन की विडम्बना का चित्र इसमें अंकित है । यथार्थवादी दृष्टि ने ही तार सप्तक के कवियों को लोक-जीवन की गहराइयों तक पहुँचा दिया है ।

अनुभूति की प्रामाणिकता :-

आभिजात्य वर्ग एवं निम्न वर्ग के मध्य में लटकता मध्यम वर्गीय व्यक्ति ही प्रयोगवादी काव्य का "सत्य" है । "व्यक्ति अनुभूत" को उसकी अक्षुण्णता में समष्टि तक पहुँचा देना ही प्रयोगवाद का प्रथम उद्देश्य था । प्रयोगवादी कवि के लिए परंपरा कोई पोटली नहीं थी, जिसे वह सिर पर रख लेता और चल पड़ता । प्रयोगशील कवियों ने इस परंपरा का खंडन किया । उन्होंने "व्यक्ति-सत्य" और "व्यापक-सत्य" अथवा व्यक्ति-अनुभूत और समष्टि अनुभूत को एक ही सत्य के दो रूप माना । स्थापित सत्य को प्रयोगवादियों ने नहीं ओढा, वरन् "नये सत्य" के अन्वेषण में ही वे व्यस्त रहे । प्रयोगवादियों ने परंपरा का पूरी तरह खंडन नहीं किया, बल्कि परंपरा के निर्जीव तत्वों के स्थान पर नये जीवन्त तत्वों का अन्वेषण भी किया । अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के विषय में प्रयोगवादी ईमानदार हैं । अनुभूतियाँ, प्रयोगवाद के लिए महत्वपूर्ण हैं । अतः अपनी अनुभूतियों (व्यक्तिगत सत्य) को, उनकी संपूर्णता में पाठकों तक पहुँचाने के लिए वस्तु और शिल्प दोनों ही में नवीनता की खोज करते हैं । अतः प्रयोगवादी कवियों की दृष्टि में नवीनता भी है । अभिव्यक्ति के माध्यम को प्रयोगवादी कवि इच्छानुसार तोड़-मरोड़ भी सकते हैं । किन्तु रूढिबद्ध होकर अनुभूतियों को काट-छाँट करना वे पसन्द नहीं करते हैं । "तार सप्तक" की भूमिका में

अज्ञेय का कहना है - "काव्य के प्रति एक अन्वेषी दृष्टिकोण उन्हें समानता के सूत्र में बाँधता है । इसका यह अभिप्राय नहीं है कि प्रस्तुत संग्रह की सब रचनाएँ प्रयोगशीलता के नमूने हैं या कि इन कवियों की रचनाएँ रूढि से अछूती है या कि केवल यही कवि प्रयोगशील है और बाकी सब घास छीलने वाले, वैसा दावा यहाँ कदापि नहीं दावा केवल इतना है कि ये सातों अन्वेषी हैं ।"[1] वस्तुतः यह अन्वेषी दृष्टिकोण ही तारसप्तक के प्रेरणास्रोत थे ।

यांत्रिकता का विरोध :-

प्रयोगवादी कविता में विज्ञान के विकास से उत्पन्न औद्योगीकरण की प्रतिक्रियाएँ, यांत्रिकता से उत्पन्न मानसिक संत्रास, मानवीय संबंधों का विघटन, विकृतियाँ आदि मुखर हैं । जीवन की इस जटिल स्थिति की ओर प्रायः सभी कवियों का ध्यान गया है । जहाँ मनुष्य को संत्रस्त बनने को अभिशप्त करने का वातावरण विकसित होता है । उसके विरुद्ध अपनी तीखी प्रतिक्रिया "तार सप्तक" के कवियों ने व्यक्त की हैं । आधुनिक विज्ञान ने मनुष्य की आस्था, विश्वास, करुणा और प्रेम जैसी चिरंतन भावनाओं को ज़ोरदार आघात पहुँचाया है । उदाहरण द्रष्टव्य है -

"बीसवीं सदी ने हमें क्या दिया ?
मोटर, रेल, विमान, क्रांतियाँ......
यह बेतार, सवाक् चित्रपट
कागज-मुद्रा, आर्थिक संकट,

---

1. "तार सप्तक", संस्करण-1966, "विवृति और पुरावृत्ति" - पृ. 13

गति अतिशयता, वेगातुरता,
कहीं प्रपीडन, कहीं प्रचुरता,
इन सारे आविष्कारों ने,
जग को उन्नत किस तरह किया ?
क्रय-विक्रय संस्कारों ने
और आलसी हमें कर दिया ।
बढ़ती शोषण-यंत्र किया,
बीसवीं सदी ने यही दिया ।"[1]

बीसवीं शताब्दी के वैज्ञानिक आविष्कारों के प्रति, कवि का आक्रोश इसमें व्यक्त हुआ है । वर्तमान संसार की ज्वलंत यांत्रिक एवं आणविक समस्याओं पर कवि ने करारा प्रहार किया है । प्रयोगवादी काव्य प्रवृत्तियाँ कविता की मौलिकता को प्रमुखता देती है । मौलिक बनाने के लिए जीवन-सापेक्ष दृष्टि के प्रति उनकी सजगता दर्शित होती है । सबसे बढ़कर आधुनिक कविता के नए प्रतिमानों एवं नई काव्याभिरुचियों का फलक भी इस काव्य प्रवृत्तियों से स्पष्ट होने लगता है । भले ही परवर्ती युग में प्रयोगवाद की सीमाओं पर विस्तार से विवेचन मिलता है फिर भी यह सर्वस्वीकृत तथ्य है कि प्रयोगवाद आधुनिक विधा की वास्तविक भूमिका है । आधुनिक काव्य शास्त्र की व्यापकताएँ भी प्रयोगवादी काव्य प्रवृत्तियों की भूमिका है, भले ही वह अविकसित रूप में हो ।

---

1. "तार सप्तक" - संस्करण-1966, पृ. 214

माचवे की तार सप्तकीय कवितायें :-

"तार सप्तक" एक सहयोगी प्रकाशन है । प्रभाकर माचवे "तार सप्तक" के चौथे कवि हैं । "तार सप्तक" में माचवे की छोटी-बड़ी 23 कविताएँ संकलित हैं । माचवे की तार सप्तकीय कविताओं के संबंध में डा.मारुतिनन्दन पाठक का कथन है - "माचवे ने "तार सप्तक" की "वह एक" "निम्नमध्यवर्ग", "मैं और खाली चा की प्याली", "बीसवीं सदी", "कविता क्या है", "कापालिक" आदि कविताओं के द्वारा कविता की जो नयी ज़मीन तलाश की थी, उसकी सही अभिव्यक्ति के लिए जो नया शिल्प तराशा था, फिर उसकी अदायगी के लिए एक नयी भंगिमा अख्तियार की थी, वह प्रयोगवादी कवियों में भी उनकी अलग पहचान बनाती है ।"[1] यह सच है कि "तार सप्तक" के कवियों में वे अकेले कवि हैं, जो निरन्तर सामाजिक विडंबनाओं को अपने ढंग से प्रस्तुत किया । उनका हर प्रयोग इसलिए सार्थक लगता है ।

माचवे की काव्य-संबंधी मान्यताएँ :-

माचवे की तार सप्तकीय कविताओं के समान, उनका वक्तव्य भी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । "तार सप्तक" के वक्तव्यों में माचवे ने कथ्य और शिल्प संबंधी मान्यता दी हैं । "तार सप्तक" के वक्तव्य में प्रभाकर माचवे ने लिखा - "कविता और पाठक के बीच में सीधा भाव-विनिमय होने के पक्ष में, मैं हूँ, इन दोनों के बीच में व्यक्ति कवि को

---

1. "डा.प्रभाकर माचवे सौ दृष्टिकोण" - संस्करण-1988, "दृष्टिपथ", पृ. 13.

लाना मैं अवांछित और अप्रस्तुत समझता हूँ ।"[1] इस वक्तव्य से स्पष्ट है कि कविता स्वयं संप्रेषण की क्षमता रखती है । वह अपने माध्यम से आस्वादनीय होती है । उसके लिए कवि को माध्यम बनने की आवश्यकता नहीं । आधुनिक कविता ने इस विचारधारा को काफी आगे बढ़ाया है ।

छायावादोत्तर काल में एक तरह की छटपटाहट सभी कवि महसूस कर रहे थे । एक परिचर्चा में स्वयं माचवे ने कहा था - "मैं छायावाद और प्रगतिवाद दोनों से असन्तुष्ट था, मुझे दोनों में अतिरंजना और रूमानियत, अ-यथार्थ जान पड़ता था ।"[2] तार सप्तक के अपने वक्तव्य में माचवे ने छायावाद पर बड़े व्यंग्यपूर्ण टिप्पणी की है -"छायावाद हिस्टीरिया की भाँति हिन्दी कविता का एक मानसिक रोग है । अतः एक तरुण, स्वस्थ मना कवि के लिए छायावाद का माध्यम स्थविर, स्त्रैण और जीर्ण जान पड़ता है ।"[3] माचवे की यह आक्रमक उक्ति छायावादी कविता की पलायनवादी प्रवृत्ति के कारण प्रकट हुई है । यथार्थ को नकारने के कारण, उन्होंने संभवतः ऐसा लिखा । यह वह समय था कि कविता बदल रही थी । इसलिए प्रभाकर माचवे ने अपने वक्तव्य के एक अन्य स्थान पर कहा है - "आज हिन्दी कविता में रोमांस के छिछले और गन्दले हो जाने के कारण, यथार्थ पर अधिक ज़ोर दिया जा रहा है ।"[4] माचवे की राय में यह आवश्यक और इष्ट भी है ।

---

1. "तारसप्तक" - संस्करण-1966, प्रभाकर माचवे - वक्तव्य - पृ. 183
2. डा.श्याम परमार - अकविता और कला संदर्भ - पृ. 116
3. "तारसप्तक" - संस्करण-1966, माचवे का वक्तव्य - पृ. 184
4. "तारसप्तक" - संस्करण-1966, माचवे का वक्तव्य - पृ. 184

यदि इस मत की आड में प्रयोगवादी कवियों को देखे तो प्रायः सभी कवि छायावादी कुहासे से निकलकर बाहर आने को तत्पर हैं ।

माचवे ने तार सप्तक के वक्तव्यों में कथ्य संबंधी-मान्यता भी दी है । माचवे का कथन है - "इस प्रकार वस्तु की दृष्टि से, हिन्दी कविता में अभी विषयों की विविधता, व्यंग्य का तीक्ष्ण और सुरुचिपूर्ण प्रयोग, प्रकृति के संबंध में अधिक वैज्ञानिक दृष्टि, जन जीवन के निकटतम जाकर ग्राम-गीत, लोक-कथा और बाज़ारू कहलाई जाकर हेय मानी जानेवाली बहुत सशक्त और मुहावरेदार ज़ुबान से नये-नये शब्द रूपों और कल्पना चित्रों को ग्रहण करना और प्रयोगशील अभिव्यंजना के प्रति औदार्य आना चाहिए ।"[1] स्पष्ट है कि माचवे ने इस वक्तव्य में काव्य भाषा, छन्द, बिंब पर भी टिप्पणी की हैं । "तार सप्तक" के एक अन्य वक्तव्य में माचवे ने अपनी भाषा-संबंधी मान्यता स्पष्ट की है - "कविता-गत भाषा को भावानुकूल अदलने-बदलने का पूरा अधिकार होना ही चाहिए । ज्यों-ज्यों कविता की भाषा अधिकाधिक आम जनता की भाषा बनती चलेगी, उस में प्रादेशिक शब्द अधिक आयेंगे और यह इष्ट ही होगा ।"[2] यह सत्य है कि माचवे ने तो अधिकतर कविताओं में सहज भाषा का ही प्रयोग किया है । ब्रज और मालवी जैसी प्रादेशिक भाषाओं के कई मीठे शब्दों का भी प्रयोग माचवे ने किया है । छन्द रचना के संबंध में माचवे की मान्यता है - "छन्दोरचना के विषय में हमें नव-नवीन

---

1. "तार सप्तक" - संस्करण-1966, प्रभाकर माचवे-वक्तव्य - पृ. 185
2. "तार सप्तक" - संस्करण-1966, प्रभाकर माचवे-वक्तव्य - पृ. 185

प्रयोग अपनाने होंगे । अन्य भाषाओं के छन्द भी हम लें ।"[1] माचवे ने अन्य भाषाओं के सॉनिट, गज़ल, रूबाई, आदि का प्रयोग अपनी कविताओं में किया है । बिंब के संबंध में माचवे का विचार है - "हमारी कविता में पाये जाने वाले अधिकांश कल्पना-चित्र या बिंब {इमेज} बच्चों के से निरे शाब्दिक, सहस्मृत या परंपरागत होते हैं । इन शाब्दिक, साहचर्यात्मक और पारंपरिक बिंबों की बजाय हमें राग और ज्ञान से पूरित ऐन्द्रिय, आवेगाश्रित और अभिजात बिंबों की सृष्टि करना है ।"[2] इन वक्तव्यों से स्पष्ट है कि माचवे तत्कालीन काव्यान्दोलनों के दोषों पर विचार करने के साथ साथ अपने सुझाव भी देते हैं । दर असल आधुनिक हिन्दी कविता को समझने के लिए माचवे के काव्य संबंधी मान्यताओं का विश्लेषण अनिवार्य है । उनकी मान्यताओं में नई काव्याभिरुचि का पूरा स्पन्दन है ।

माचवे के "तार सप्तक" में संकलित 23 कविताओं के रंग अनेक हैं, प्रकार भी बहुत हैं, विषय भी विविध हैं । प्रयोगवादी काव्य की सभी प्रवृत्तियाँ, माचवे की तारसप्तकीय कविताओं में परिलक्षित होती हैं । माचवे के तार सप्तकीय कविताओं को कई वर्गों में बाँटा जा सकता है ।

<u>बौद्धिकता :-</u>

प्रयोगशील कविता में "बौद्धिकता" हैं, खासकर माचवे की तार सप्तकीय कविताओं में भी बौद्धिकता की प्रधानता रही है । बौद्धिकता

---

1. तार सप्तक - संस्करण-1966, प्रभाकर माचवे - वक्तव्य - पृ. 185
2. तार सप्तक - संस्करण-1966, प्रभाकर माचवे - वक्तव्य - पृ. 186

यथार्थ दृष्टि का ही परिणाम है । लेकिन यथार्थवाद का परिणाम नहीं । माचवे की यथार्थ-दृष्टि बहुत ही व्यापक है । वह इसलिए है कि उन्होंने समाज की धडकन ही पहचाना नहीं है, उनकी समाज गहराईयों को भी पहचाना है ।

"यहाँ आज सब कुछ है बिकता,
हृदय और ईमान देवता !
सब ममता की यहाँ दिखावट
शून्य, खोखली और बनावट ।
सभी स्वार्थमय यहाँ बुलाहट,
किसने पायी सच्ची आहट ....
किसने जाना वह रस्ता है
किसने पाया वह रस्ता है ।
x x x x x
मरी सुहागिन, दो दिन बीते,
त्यों ही नये ब्याह की आशा ?
पंछी चीं-चीं कर थकने पर
पुनः नया तरु
नया-नया घर, नवीन कोटर
यही तुम्हारी प्रामाणिकता ?
जिसका अर्थ क्षणिकता ।"[1]

---

1. "तार सप्तक" - संस्करण - 1966, पृ. 217

<u>वैयक्तिकता</u> :-

माचवे की कविताओं में वैयक्तिकता का एक धरातल भी है। "तार सप्तक" की "मैं और खाली चा की प्याली" शीर्षक कविता में यह प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। यह कविता माचवे का अपना व्यक्तिगत अनुभव है। इस व्यक्ति-बोध ने ही प्रयोगशील कविता में "मैं" को प्रतिष्ठित किया है, क्योंकि "मैं" की अनुभूति की ईमानदारी पर शंका नहीं की जा सकती -

"मैं अपने सूने कमरे में मोटे ग्रंथों में डूबा -
जूझ रहा हूँ उस मस्तिष्क-प्रधान शिला से, कब ऊबा हूँ ?
x x x x x x x x
मुझे कौन दे संजीवन ? दिन का प्याला कब से खाली है,
शून्य दिशाएँ आँधी-लक्षप, मैं हूँ, यह-चा की प्याली है।
बादल सागर की आशीषें या कि धरित्री का प्रतिग्रण है ?
करुण-सजल बातास, अकेलापन क्यों मानव को दारुण है ?"[1]

इस कविता में वैयक्तिकता का जो परिपार्श्व है वह उतना व्यक्तिकेन्द्रित और वायवीय नहीं है जितना व्यक्तिवादी-व्यक्तिकेन्द्रित दृष्टि है। कविता में "मैंपन" का विस्तार होता है। व्यक्तिनिष्ठ अनुभूति और समष्टिनिष्ठ अनुभूति का सामंजस्य होता है।

---

1. तार सप्तक - संस्करण-1966 - पृ. 212

व्यंग्य-दृष्टि :-

व्यंग्यात्मकता माचवे की कविता की अहम प्रवृत्ति है जो तारसप्तक काल से शुरू हुआ है । विनोदप्रियता उनके व्यक्तित्व का भी अहम पक्ष है । माचवे की तार सप्तकीय कविताओं में "पालतू", "डरू संस्कृति", "देशोद्धारकों" आदि कविताओं में व्यंग्यविद्रूपता झलकती है । माचवे के व्यंग्य का क्षेत्र व्यापक है । माचवे ने व्यंग्य को कथ्य के रूप में भी लिया है । "पालतू" माचवे की बहुचर्चित कविता है । पूँजीपतियों के घर में यदि दो-चार कुत्ते-बिल्ली न हो तो यह उनकी शानो-शौकत के विरुद्ध होगा -

"पहले उसने पाले कुछ पिल्ले,
बड़े हुए, भाग गये ;
पालीं कुछ बिल्लियाँ, वे
दोस्तों को दे दीं ।
फिर पालीं कुछ लाल मछलियाँ,
वे मर गयीं;
पाला एक तोता, जो उड़ गया ।
जोड़े का एक बया,
उठ गयी मित्र की बिडाली उसे ।
पालने की यह आदत
कम न हुई ।"[1]

---

1. "तारसप्तक" - संस्करण-1966, पृ.221 - "पालतू" शीर्षक से ।

यह कविता अमीरों के कुत्ते, बिल्ली पालने की प्रवृत्ति पर कड़ा व्यंग्य है । "देशोद्धारकों से" शीर्षक कविता भी व्यंग्य प्रधान है । राष्ट्र के कर्णधारों की मुखौटेबाजी पर तीखा व्यंग्य इस कविता में मिलता है ।

"मृदुल नींद नीड़ की गोद में,
और परों की सेज नरम,
बाहर झुलसी हवा बह रही,
रह-रहकर लू तेज़ गरम,
बाहर अर्धनग्न पीडा,
भीतर क्रीडा-लबेरज हरम
करुणा के आँगन में, नेता,
दे थोड़ी-सी भेज़ शरम !"[1]

राष्ट्र के कर्णधारों के कृत्रिम व्यवहार पर कवि का क्षोभ भी प्रकट हैं । माचवे की "डरू संस्कृति" शीर्षक कविता, हमारी संस्कृति पर करारा व्यंग्य है -

"जो कुछ करना भाई वह सब करना, लेकिन डरते-डरते !
जीना हो तो डरते-डरते, मरना लेकिन डरते-डरते !
प्रेम करो तो चोरी-छुपके, देख-फूँक कर दायें-बायें
स्त्री से रति भी डरते-डरते (कहीं न आबादी बढ जायें)[2]

शब्द विन्यास पर माचवे का हल्का सा जो ज़ोर है उसमें से एक व्यापक परिवेश खुलता है जो हमारा अपना है । उसका सच यही है । डरू संस्कृति मात्र संकेत नहीं वह हमारी असली संस्कृति है ।

---

1. "तारसप्तक" - संस्करण-1966, पृ. 201
2. तारसप्तक - संस्करण-1966, पृ. 225

"कविता क्या है ?" शीर्षक कविता भी व्यंग्यात्मकता का नया आयाम है -

"कविता क्या है ? कहते हैं जीवन का दर्शन- आलोचन,
{वह कूडा जो ढँक देता है बचे-खुचे पात्रों में के स्थल}
कविता क्या है ? स्वप्न श्वास है उन्मन कोमल,
{ जो न समझ में आता कवि के भी ऐसा है वह मूरखपन } ।"[1]

सांस्कृतिक दृष्टि किस प्रकार हमारे समाज की बिकाऊ संस्कृति के आगे घुटने टेकने के लिए मजबूर हो जाती है, उसका यह उदाहरण है । बाज़ारूपन का यह बढ़ता रेगिस्तानी विस्तार है ।

यथार्थ-बोध :-

माचवे की तार सप्तकीय कविताओं के "वह एक", "रेखाचित्र" "गेहूँ की सोच", "बीसवीं सदी", "निम्न मध्यवर्ग" आदि कई कविताओं में यथार्थ बोध का सही एहसास है । "वह एक " शीर्षक कविता एक गरीब व्यक्ति का यथार्थ शब्द चित्र है । यह कविता माचवे की बहुचर्चित कविता है । भूख की जलन को शांत करने के लिए निर्धन व्यक्ति को बहुत कुछ करना-कहना पडता है । वह राजनीति की बडी-बडी बातें करता है, परन्तु राजनीति से वह एकदम अनभिज्ञ है । उसे केवल अखबार बेचना है नहीं तो खाने की रोटी नहीं मिलेगा ।

---

1. तार सप्तक - संस्करण-1966 - पृ. 207

"उसको न परवाह काँग्रेस नैया की पतवार,
वाम पक्ष पै है या हराम पक्ष पै है,
वह जानता है महावार,
तनखा साढ़े तीन कल्दार ।"[1]

"रेखाचित्र" शीर्षक कविता एक भिखारिन का यथार्थ चित्रण है -

"कोई दरद न गुन सका, ठिका नहीं छिनेक,
और उस अन्धे दीन की रुकी न यकसाँ टेक -
साईं के परिचै बिना अन्तर रहिगौ रेखा ।"[2]

माचवे की तार सप्तकीय, कविताओं में "गेहूँ की सोच" शीर्षक कविता भी जीवन के सघन यथार्थ को प्रस्तुत करती है -

"बहुत कुछ जायेगा लगान,
कुछ जायेगी कर्ज-किश्त्
बाकी रह जायेगी -
झोंपड़ियों की उन भूखी अँतड़ियों के लिए सूखी
एक बेर रोटी !
क्या यह नीति खोटी नहीं ?
गेहूँ के मोती से दाने जो पसीने से,
उगाये, और बढ़े हों, उसी के भाग
आँसू के दाने सिर्फ ।"[3]

---

1. तारसप्तक - संस्करण-1966 - पृ. 202
2. तारसप्तक - संस्करण-1966 - पृ. 200
3. तारसप्तक - संस्करण-1966 - पृ 196

इस कविता पर डा. देवराज पथिक की टिप्पणी उल्लेखनीय है - "गेहूँ की सोच" कविता के द्वारा कवि अपने देश की महाजनी सभ्यता की काली करतूत पर जहाँ व्यंग्य प्रहार करता है, वहाँ खून-पसीना बहाकर अन्न उगानेवाले किसान के प्रति अपनी मार्मिक सहानुभूति भी प्रदर्शित करता है ।"[1] यह कविता अपने समय की विराट विडम्बना को द्योतित करती है । माचवे ने इस कविता में कृषक और श्रमिक वर्ग की बेबसी यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया हैं ।

"तारसप्तक" में संकलित माचवे की "निम्न मध्य वर्ग" शीर्षक कविता यथार्थ बोध की असली पहचान कराती है । माचवे ने निम्न मध्य वर्ग की यथार्थता का चित्रण करके, उनके प्रति सहानुभूति और दया प्रकट की है -

"शहर की तमाम नालियों की जो सड़ाँध है,
न घुस पाती इनके दिमाग में, न नथुनों में,
पुर्जी - से - बेजान,
बीस-बीस पच्चीस
महावार रूपयों पर जीते हैं ।
इनके है कोई नहीं विश्वास अथवा मत ।
जैसा कहा सब ने, त्यों,
इनने भी गर्दन हिलायी,
पुनः कर्मरत ।

---

1. डा. देवराज पथिक - "नयी कविता में राष्ट्रीय चेतना" - पृ. 115

इनको यों जीने में कौन सा क्या मतलब ?
आशा कौन सी है इन्हें
फिर भी ये जीते हैं,
उच्च मध्यवर्ग की नकल करते,
बोल-चाल, रहन-सहन, कपड़ों में, रस्मों में
लहू नहीं, गोमूत्र बहता इन जिस्मों में,
इसी से सदा डरते क्रांति में नवीनता से घबडाते ।"[1]

वस्तुतः निम्न मध्यवर्ग की रहन-सहन, बोल-चाल, कपडे-रस्मे आदि के यथार्थ चित्रण इस कविता में मिलता है ।

मानवतावादी दृष्टि :-

जो कवि सामाजिक विडंबना पर निरंतर व्यंग्य करता है, जो उस पर कभी क्षोभ प्रकट करता है उसकी समूची आर्द्रता साधारण जन के प्रति ही होती है । उसके जीवन-दर्शन की सशक्त पृष्ठभूमि मानववादी चिन्तनधारा में रूपायित हैं ।

"मानव को मानव का भक्षण,
मानव को निज-संरक्षण का,
परवाना सब को बाँट दिया -
जीवन संघर्ष बढा यों तक

---

1. तारसप्तक - संस्करण- 1966 - पृ. 204

उस हाथ दिया, इस हाथ लिया ।
देखा न पुण्य अथवा पातक,
जिसने मारा, बस वही जिया ।
बीसवीं सदी ने यही दिया ?
पूँजी के युग का अस्तकाल,
यह है जब तुम लो यही हाल
इक ओर पड़ेगा रे अकाल,
दूसरी ओर धन से बिहाल ।"[1]

"बीसवीं सदी" के वैज्ञानिक आविष्कारों ने एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य का भक्षण बना दिया है । जब तक मनुष्य वैज्ञानिक आविष्कारों के मद में मस्त रहेगा, तब तक उस में "मनुष्यत्व" नहीं रहेगा । कवि माचवे मनुष्य के प्रति पूर्णतः आस्थावान है, माचवे की दृष्टि मानवतावादी भी है ।

प्रकृति परक कवितायें :-

माचवे की तार सप्तकीय कविताओं में "वसन्तागम्", "मेघ-मल्लार", "वृष्टि", "बादल बरसे मूसलधार", "अश्वत्थ" आदि प्रकृति संवेदना से संबंधित कवितायें हैं । इन में कुछ कविताओं की रचना "लोक-गीतों" की लय के आधार पर हुई हैं । "वसन्तागम्" कविता नवीन जीवनोन्मेष के रूप में रचित है । वसन्त के आगमन पर समस्त संसार प्रफुल्लित हो उठता है -

---

1. तारसप्तक - संस्करण-1966 - पृ. 215

"गा रे गा हरवाले दिल चाहे वही तान,
खेतों में पका धान,
मंजरियों में फैला आमों का गन्ध श्यान
आज बने हैं कल के ज्यों निशान,
फूलों में फलने के हैं प्रमाण !
खेती हर लड़की की भोली-सी आँखों में, निम्बुओं की फाँकों में,
मुसकराता अज्ञान, हँसाता है सब जहान, खेतों में पका धान !"[1]

"मेघ मल्लार" शीर्षक कविता में, प्रकृति कवि के विरहजन्य भावों को और भी तीव्र कर देती है । कवि का कथन है -

"मालव की संध्याएँ,
मेधल अवसाद-लादी,
कोमल मधु याद बँधी -
सजल, शीत, बह बयार ।
मन का सब व्यथा-भार
बहे चले निराधार
निराकार.........
मन में सुधि उतर चली ।"[2]

कवि की मानसिक दशा के साथ प्रकृति विलीन हो जाती है और उसके विरह-जनित भावों को और तीव्र कर देती है । "वृष्टि" और "बादल बरसे मूसलाधार" कविताएँ माचवे में निहित सहज प्राकृतिक तादात्म्य के लिए

---

1. तारसप्तक - संस्करण-1966 - पृ. 188
2. तारसप्तक - संस्करण-1966 - पृ. 190

उदाहरण है । जहाँ वर्षा से, दारुण तपन का शमन हो जाता है, किसान लहराती हुई फसलों को देखकर हर्षित हो उठता है, वहाँ कीचड आदि के कारण जीवन दूभर भी हो जाता है । "वृष्टि" शीर्षक कविता में वर्षा धरती का स्पर्श करके उसकी विपत्तियों का निराकरण करती है और उसके आगमन से जन-जन का मन प्रफुल्लित हो उठा है -

"वर्षा
जिसने कर्षक को आकर्षा ।
स्वस्थ, मस्त बूँदों ने आकर,
विपद्ग्रस्त धरती को स्पर्शा ।
सहसा जलमय हुए झील, रत्नाकर,
नाले, नदियाँ, निर्झर ।
एकसाँ जन-जन का मन हर्षा ।
x x x x x
कीच मचा,
और
धारा जो कि स्वर्ग से गिरती
धारा आज धरा से मिलती, तभी उसे मिलता-छुटकारा ।"[1]

माचवे की प्रकृति परक कविताओं के विश्लेषण से स्पष्ट है कि इन कविताओं में माचवे की प्रकृति निरीक्षण पटुता का परिचय होता है ।

---

1. तारसप्तक - संस्करण-1966 - पृ. 198

इन कविताओं में प्रकृति के सहज एहसास का अनुभव है । साथ ही साथ उनकी बौद्धिक दृष्टि भी यत्र-तत्र प्रकट होती है । कवि माचवे पाठकों को प्रकृति के माधुर्य, विह्वलता, मुग्धता से ओतप्रोत नहीं करना चाहते, बल्कि उसे सचेत तथा जीवनगत सत्यों के प्रति सतर्क करना चाहते हैं ।

यांत्रिकता का विरोध :-

"तारसप्तक" में संकलित माचवे की कविताओं में, विज्ञान की प्रतिक्रिया से उत्पन्न औद्योगीकरण, यांत्रिकता आदि से उत्पन्न आशंका मुखरित हैं । आज का व्यक्ति वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास के साथ मानवीय संकट से गुज़र रहा है । मनुष्य के लिए संतुलित वैज्ञानिक दृष्टि वांछनीय है । मशीन युग में मानव-जीवन पर मँडरानेवाला भयावह भविष्य मानो मानव पर लटकती तलवार है । जहाँ विज्ञान के बढ़ते कदम अगर रोजमर्रा जीवन में सहूलियत देते हैं, वहीं दूसरी तरफ एक नया खतरा भी प्रदान करते हैं । कवि के विशेष अनुभव हमें चेतावनी देते हैं कि मनुष्य को वर्तमान संसार की ज्वलन्त यांत्रिक एवं आणविक समस्याओं से सतर्क रहना चाहिए । "बीसवीं सदी" शीर्षक कविता इसका उदाहरण है -

"कितने समझे निज को कुलीन,
और श्रमिक बिचारा मलिन-दीन,
हो गया हमें ही नागदार ।
इसको ही संस्कृति - प्रगति कहा ?
बीसवीं सदी ने यही दिया ?
जब कि किसी के घर अनेक -

जलते हों विद्युद्दीप, देख !
तब होगी ही कोई कुटिया
जिस में जलता होगा न दिया !
बीसवीं सदी ने यही दिया ?
उन्मूलित कर दी दान-दया ।"[1]

माचवे की तार सप्तकीय कविताओं की प्रासंगिकता :-

नेमिचन्द जैन ने माचवे की कविताओं के बारे में कहा है - "प्रभाकर माचवे की कविताओं में कथ्य की नवीनता और सार्थकता है ।"[2] यह सच है कि आज से पचास वर्ष पूर्व लिखी गयीं, माचवे की कविताओं का कथ्य आज भी प्रासंगिक है । जोगेन्द्र सिंह शर्मा का कथन है - "नयी कविता की शुरूआत करनेवाले प्रयोगवादी कवियों में प्रभाकर माचवे का अपना वैशिष्ट्य हैं ।"[3] स्पष्ट है कि माचवे का वैशिष्ट्य केवल रूप पर सीमित नहीं है, उनका वैशिष्ट्य कथ्य पर आधारित हैं । नयी कविता के लिए ज़मीन तैयार करनेवाले प्रयोगवादी कवियों में माचवे का महत्वपूर्ण स्थान है । प्रयोगवादी कविता की कई प्रवृत्तियाँ नयी कविता में पूर्ण रूप से विकसित हैं । माचवे की तार सप्तकीय कविताओं का महत्व इस बात में है कि उन में आज की कविता की किंचित प्रवृत्तियों का पूर्वाभास उपलब्ध है । नयी कविता में जो

---

1. तारसप्तक - संस्करण-1966 - पृ. 214
2. "आजकल- - मार्च 1992 - पृ. 94
3. जोगेन्द्र सिंह वर्मा - "डा. प्रभाकर माचवे का काव्य" - संस्करण-1980 - पृ. 1

गद्यात्मकता है, वह माचवे की देन है । गद्य की कर्कशता में से कविता निकालने की यह प्रवृत्ति है । इस संदर्भ में राम विलास शर्मा का कथन है - "किन्तु शिल्प की दृष्टि से नयी कविता पर साठोत्तरी नयी कविता पर प्रभाकर माचवे का यथेष्ट प्रभाव है, इसे सभी स्वीकार करेंगे । x x x x आप मानेंगे कि नयी कविता में जो गद्यात्मकता है, उसकी नस सब से अच्छी तरह प्रभाकर माचवे ने पहचानी थी ।"[1] आज नयी कविता में स्थितियों का हल्का-फुल्कापन और विद्रूपता (अयरानिकल) की प्रवृत्ति है, उसे विकसित करने में माचवे की तारसप्तकीय कविताओं का योगदान है । नामवर सिंह का कथन है - अकस्मात् एक हल्की बात कहकर गंभीरता को झटके से तोड़ने की प्रवृत्ति छायावादोत्तर काव्य के सन्धिकाल की व्यापक प्रवृत्ति थी । "तार सप्तक" के अधिकांश कवियों ने इस कौशल का उपयोग किया है । प्रभाकर माचवे की "मैं और या की खाली प्याली" की ओर तो उस समय के छायावादी आलोचकों का भी ध्यान आकृष्ट हुआ था ।"[2] केदारनाथ सिंह ने भी माचवे की कविताओं का संबंध, नयी पीढ़ी की कविता के साथ जोड़ा है । उनका मत है - "मुझे नयी कविता और विशेषत: नयी पीढ़ी के कवियों के बीच माचवे की स्थिति बहुत कुछ वैसी ही लगती रही है, जैसे अंग्रेज़ी की नयी पीढ़ी के "मूवमेंटी" कवियों के बीच विलियम एम्पसन की । ये दोनों की मूल धारा से कुछ अलग पड़ने वाले और व्यंग्य, विडंबना तथा शाब्दिक विरोधों के भरपूर उपयोग करनेवाले कवि हैं । यह आकस्मिक नहीं है कि कुछ दिनों पूर्व नयी पीढ़ी के कुछ कवियों ने माचवे की कविता के साथ अपना संबंध जोड़ने का

---

1. राम विलास शर्मा - "नयी कविता और अस्तित्ववाद" - संस्करण-1987, पृ. 24
2. नामवर सिंह - "कविता के नये प्रतिमान"-संस्करण-1982, पृ. 147

प्रयास किया था । उनके काव्य में जो स्थितियों का एक हल्का-फुल्कापन और काव्य के बुनियादी ढाँचे के साथ रचनात्मक खिलवाड का-सा भाव है, वह नयी पीढी की काव्यात्मक, मनोदशा का अधिक निकट पडता है । माचवे की कविताएँ (तार सप्तक और उसके बाद की भी) यदि आज भी पढी जा सकती है तो इसी संदर्भ में । वे शायद इस संकलन के अकेले ऐसे कवि हैं । जिसने अपने नये वक्तव्य भी "ताजी प्रज्ञा के साथ-साथ नित्य नूतन, नव-नवीन प्रयोगशीलता" को आज भी महत्वपूर्ण और आवश्यक माना है ।"[1]

प्रयोग की अपनी रूपात्मक भूमि है । लेकिन कविता में प्रयोगपरकता रूपपरक मात्र नहीं है । यह रहस्य माचवे के लिए छिपा नहीं था । अतः शब्दों के खिलवाड के बीचों बीच भी माचवे ने कविता की सत्ता को बनाए रखा और अपनी जीवनोन्मुखी दृष्टि को सक्रिया साबित किया । बहिरंगतः "अब्सर्ड" लगनेवाला काव्य परिदृश्य माचवे की कविता में प्राप्त है ॥ इसे नए काव्यसौंदर्य मानने की क्षमता भले ही सभी आलोचकों ने नहीं दर्शायी फिर भी कालान्तर में परिवर्तित सौंदर्यदृष्टि के संदर्भ में माचवे के प्रयोग नई एवं परिवर्तनोन्मुख संवेदना के प्रामाणिक उदाहरण सिद्ध हुए । यही उनकी प्रमुख प्रासंगिकता है ।

कविता में लोकतत्व का प्रतिबिंबन होता है । इसी से कवि की विश्वदृष्टि विकसित होता है । इसके लिए चाहिए कवि का

---

1. केदारनाथ सिंह- मेरे समय के शब्द' संस्करण - 1993, पृष्ठ - 38.

संबंध औसत जीवन की गतिविधियों से सुदृढ़ हो । आज ऐसे अनेक कवि पुनर्मूल्यांकित हुए हैं जिनकी काव्य-क्षमता उनकी लोक दृष्टि पर निर्भर है जैसे त्रिलोचन में या नागार्जुन में । माचवे की तारसप्तकीय कविता का एक प्रमुख पक्ष इसी लोकतत्व से संबंधित है । ऐसी कविताओं में सिर्फ सामान्य जीवन का लेखा-जोखा नहीं है अपितु उनकी आकांक्षाओं का विकास तथा बिखराव निहित है । उनमें छलकता हुआ जीवन काव्य वस्तु में परिणत होता है । यह बात माचवे की कविता में उपलब्ध है जो उनकी प्रासंगिकता को पुनः सार्थक सिद्ध करती है ।

अध्याय : तीन

माचवे की कविताओं में सामाजिक विडम्बना के विविध-आयाम

नई कविता में विडंबना का प्रतिफलन :-

कवि अपने समय और समाज में जीवित रहता है । इसलिए उसकी प्रतिक्रियाएँ कविता की वस्तु बनती हैं । ऐसी प्रतिक्रियाएँ सहज और स्वाभाविक होती हैं । आधुनिक कविता इसका प्रमाण है । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की हिन्दी कविता में भारतीय समाज का साधा चित्र नज़र आता है । कहीं वह गहरा है, कहीं वह सामान्य है । रंग चाहे गाढा हो या हल्का नयी कविता को पूर्ववर्ती कविता से अलगाने वाली बात भी यही है ।

विडम्बनात्मक स्थितियाँ हमारे समाज में बढ़ती जा रही हैं । जटिल होते जाने जीवन की यह परिणति भी है । एक ओर सामाजिक मूल्यों का पतन है तो दूसरी ओर राजनीतिक मूल्य विघटन है । नए कवियों ने इन विडम्बनात्मक स्थितियों को शब्दबद्ध किया, जिन में विरोध, विद्रोह, क्षोभ और वितृष्णा प्रकट है । व्यंग्य और विद्रूप-स्वर भी उपलब्ध है । ये प्रतिक्रियाएँ उनके नये युग के कवि होने के लिए ज़रूरी भी हैं । मिथकीय परिवेश को भी नए कवियों ने अपनाया, जिसके माध्यम से विडंबनापूर्ण स्थितियों को विस्तार से वे प्रस्तुत कर सके हैं । प्रभाकर माचवे की कविता में इस अवमूल्यन के कई पक्ष उभरे हैं, जिससे माचवे की कविता की सहज प्रवृत्ति स्पष्ट होती है तथा यह भी प्रमाणित होता है कि उनकी कविता नई कविता की मुख्य सरणियों से बंधी हुई हैं ।

"तारसप्तक" में संकलित कविताओं के बाद माचवे के अन्य संकलनों में - यथा - मेपल, अनुक्षण, स्वप्न भंग - आज सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, क्षेत्र में व्याप्त विडंबना के विभिन्न प्रसंग उपलब्ध होते हैं । दर असल माचवे एक जनवादी कवि हैं । इसलिए उनकी कविता में जीवन का स्पन्दित रूप विद्यमान है । उन्हें धरती और आदमी से बहुत गहरा लगाव हैं । अतः मनुष्य का जीवन जहाँ विडम्बनात्मक है, उन स्थितियों का गहरा अनुभव, माचवे की कविता का वस्तु-संसार बन जाता है ।

नयी कविता : सामान्य भूमिका :-

"तारसप्तक" में अज्ञेय ने प्रयोगों की अनिवार्यता पर इतना अधिक बल दिया कि उनके काव्य को "प्रयोगवाद" की संज्ञा दे दी गई और अज्ञेय को ही "प्रयोगवाद" का प्रवर्तक भी स्वीकार कर लिया गया । "प्रयोगवाद" शब्द का उपयोग हिन्दी कविता में "तारसप्तक" के प्रकाशन से स्वीकार कर लिया गया है । इस संदर्भ में डा. अरविन्द का कथन है - "तारसप्तक" में संकलित कवियों ने भी अपने वक्तव्यों में "प्रयोग" की बात उठाई थी । संभवतः इन्हीं संकेतों के आधार पर छायावादी आलोचकों ने "तारसप्तक" की कविता और उस शैली-शिल्प में लिखी गई अन्य रचनाओं को उनकी अलग इयत्ता में समझने की दृष्टि से "प्रयोगवादी" संज्ञा से अभिहित किया ।"[1]

---

1. डा. अरविन्द - "सप्तक काव्य", प्रथम संस्करण-1976, पृ. 87, "नकेन का प्रपद्यवाद" शीर्षक लेख से ।

सन् 1947 में अज्ञेय के संपादकत्व में "प्रतीक" नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ हुआ, जिस में प्रकाशित अधिकांश कवियों तथा उनकी कविताओं ने "प्रयोगवाद" संबंधी प्रचलित धारणा को बल प्रदान किया और उसकी चर्चा अधिक तीव्रता से की जाने लगी । पुनः सन् 1951 में अज्ञेय के ही संपादकत्व में "तार सप्तक" को ही परंपरा में सात अन्य नये कवियों की रचनाओं को लेकर "दूसरा सप्तक" का प्रकाशन हुआ । इस संग्रह के कवियों ने भी अपने वक्तव्य में प्रयोगों को आवश्यकता को महत्व दिया और अपने कृतित्व में उनके उदाहरण भी प्रस्तुत किये । अपने काव्य पर "प्रयोगवाद" शब्द के लादे जाने पर अज्ञेय ने इसका प्रतिवाद "दूसरा सप्तक" में किया । उन्होंने अपने को प्रयोगशील स्वीकार किया, किन्तु "वादी" होने से स्पष्ट इनकार किया । अज्ञेय ने कहा - "प्रयोग का कोई वाद नहीं है । हम वादी नहीं रहे, तब नहीं हैं । न प्रयोग अपने आप में इष्ट या साध्य है। ठीक इसी तरह कविता का भी कोई वाद नहीं है, कविता भी अपने आप में इष्ट या साध्य नहीं है । अतः हमें प्रयोगवादी कहना उतना ही सार्थक या निरर्थक है । जितना हमें "कवितावादी" कहना ।"[1] वस्तुतः अज्ञेय अपने को "वाद" की संकीर्ण सीमा में बाँधने के लिए तत्पर नहीं थे । "तार सप्तक" में प्रयोग का जो मोह था, वह "दूसरा सप्तक" तक आते आते मन्द पड गया । "तार सप्तक" के कवियों की तरह "दूसरा सप्तक" के कवि भी अपने साथ कुछ नया कलेवर, नयी संभावनाएँ और नयी आस्थाएँ लेकर उपस्थित हुए । इस तरह "दूसरा सप्तक" का प्रकाशन एक नयी दिशा की ओर संकेत करता है । इसी संकेत के बाद ही वास्तव में कविता "नयी कविता" कहलाई । इस संदर्भ में रामस्वरूप चतुर्वेदी

---

1. अज्ञेय (सं.) "दूसरा सप्तक" - भूमिका - पृ. 6

का कथन है - "नयी कविता" नाम अज्ञेय का ही दिया हुआ है । अपनी एक रेडियो-वार्त्ता में उन्होंने इस पद का पहले प्रयोग किया था, जो बाद में नये पत्ते के जनवरी-फरवरी 53 अंक में "नयी कविता" शीर्षक से प्रकाशित हुई ।"[1]

"नयी कविता" पत्रिका का, सन् 1954 में प्रकाशन लघु-पत्रिकाओं की श्रृंखला के क्रम में है । "नये-पत्ते", "नयी कविता", "निकष", "प्रतिमान" जैसी पत्रिकाएँ इस श्रेणी में आती हैं । "नयी कविता" के संक्रमण और विकास को अज्ञेय ने संभव बनाया । यह नये काव्य-बोध की कविता है । "नयी-कविता" भारतीय स्वतंत्रता के बाद लिखी गयी उन कविताओं को कहा गया, जिन में परंपरागत कविता से आगे नये भावबोधों की अभिव्यक्ति के साथ ही नये मूल्यों और नये शिल्प-विधान का अन्वेषण किया गया । अशोक चक्रधर का कथन है - "नयी कविता" "प्रयोगवाद" से आगे की काव्य स्थिति है, इसमें सन्देह नहीं । "नई कविता" की ज़मीन निश्चित रूप से प्रयोगवाद ने निर्मित की थी, किन्तु उसमें "प्रयोगवाद" की तुलना में कहीं अधिक मानववादी तत्व थे, वायवी जटिलताओं के स्थान पर घनिष्ठ संवेदनाओं वाली तात्त्विक काव्यानुभूति थी ।"[2] मुक्तिबोध के अनुसार - "नयी कविता, वैविध्यमय

---

1. रामस्वरूप चतुर्वेदी - "हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास" - संस्करण-1986, पृ. 276 - "नयी कविता-नवलेखन युग" शीर्षक लेख से ।
2. "छाया के बाद" (संपादन - मुजीब रिज़वी व अशोक चक्रधर), संस्करण-1978, "भूमिका" - पृ. 34

जीवन के प्रति आत्मचेतस व्यक्ति की संवेदनात्मक प्रतिक्रिया है । चूँकि आज का वैविध्यमय जीवन विषम है, आज की सभ्यता ह्रासग्रस्त है । इसलिए आज की कविता में तनाव होना स्वाभाविक ही है ।"[1] नयी कविता का स्वर एक नहीं है, विविध है । नयी कविता ने नये विषय, नयी उपमाएं, नयी प्रतीकयोजना, नयी पद्धति प्रदान की है । नयी कविता ने जीवन के विविध क्षेत्रों का स्पर्श किया है । "नयी कविता" के संबंध में नेमिचन्द्र जैन का मत यों है - "आज नयी हिन्दी कविता को लेकर होनेवाली अन्तहीन ऊहापोह, विचारों, मूल्यों और मानदण्डों की टकराहट इस काव्य की प्रधानता को प्रकट करती है । इस कविता की विषयवस्तु और उसका रूप आप को रुचिकर लगे अथवा न लगे, उसकी अन्तर्भूत स्थापनाओं और मान्यताओं को आप स्वीकार करें अथवा न करें, किन्तु उस पर विचार करने को, उसके संबंध में मतामत प्रकट करने को आप बाध्य हैं । और यही नहीं, उससे असहमत होकर भी उसके प्रवाह को रोक सकने में आप असमर्थ हैं । वह ऐसी वेगवती धारा की भांति है जिसके बोध बनाने की योजनाएँ तो बनाई जा सकती हैं पर जिसके अस्तित्व और अपार संभावनाओं को अस्वीकार नहीं किया जा सकता ।"[2] स्पष्ट है नयी कविता का क्षेत्र व्यापक है और इस में अनेक समस्याएँ और विडम्बनाएँ संकेतित हैं । डा. धर्मवीर भारती भी नयी कविता को मूल्य-सापेक्ष संदर्भ में देखते हैं - "नयी कविता प्रथम बार समस्त जीवन का, व्यक्ति या समाज

---

1. मुक्तिबोध - "नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध" - संस्करण-1977, पृ. 12
2. "आजकल" मार्च 1992, पृ. 91, नेमिचन्द्र जैन - "नई कविता उपलब्धि और भ्रांतियाँ" शीर्षक लेख से ।

इस समाज के तंग विभाजनों के आधार पर न मापकर मूल्यों की सापेक्ष स्थिति में व्यक्ति और समाज दोनों को मापने का प्रयास कर रही है ।"[1]

नयी कविता को एक विशाल और महत्वपूर्ण क्षेत्र दिलाने में डा. जगदीश गुप्त एवं रामस्वरूप-चतुर्वेदी द्वारा संपादित छमाही पत्रिका "नयी कविता" ने महत्वपूर्ण योग दिया है । छायावादी काव्य जहाँ कुछ ठहर गया, वहीं से नयी कविता अपने नये आलोक, नये स्वर और नये रूप-रंग से एक अनजाने-अनदेखे पथ की ओर निकल पड़ी थी और अत्यन्त सहज रूप में, नवीन धरातल पर, नवीन मानसिक स्थिति पर अनुभूतियों और संवेदनाओं से युक्त होकर प्रस्तुत हुई । डा. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने कहा भी है - "नयी कविता में मनुष्य और उसके समग्र अनुभव को पकड़ने का यत्न हुआ है । यों मनुष्य को उसकी संपूर्णता में देखने और समझने की प्रतिज्ञा हर नये वैचारिक और रचना आन्दोलन ने की है ।"[2] स्पष्ट है कि नयी कविता संपूर्ण जीवन की कविता है । नयी कविता का कथ्य-जगत् विस्तृत है । नयी कविता का कथ्य संसार - जीवन और जगत् के संपूर्ण अनुभव, स्थितियाँ और वस्तुओं से निर्मित हैं । अतः आज के कवि नयी कविता के कथ्य को किसी "फ्रेम" में मढ़ने में असमर्थ हैं । विषय वस्तुओं के वैविध्य के कारण, नये कवियों को ज्ञान-विज्ञान के सभी क्षेत्रों से अपनी सामग्री संकलन करने का स्वत्व प्राप्त हुआ है । नयी कविता में

---

1. धर्मवीर भारती - मानवमूल्य और साहित्य - पृ. 175.
2. रामस्वरूप चतुर्वेदी - "हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास" - संस्करण- 1986, पृ. 276

ജ56ൽ1

समग्र मनुष्य का बात ही नहीं कहीं गई, वरन् मनुष्य के समग्र अनुभव खंडों को संयोजित किया गया है । यह स्मरणीय है कि नयी कविता स्वाधीन और प्रजातांत्रिक देश में रची गयी हैं । इसमें छोटे समझे जानेवाले अनुभवों की भी प्रासंगिकता पहचानी गयी हैं । मानवीय संबंधों और स्थितियों का जैसा विस्तृत विवेचन और उद्घाटन नयी कविता में हुआ है वह अन्यत्र नहीं । नयी कविता में जिस मनुष्य का चित्रण हुआ है, वह इसी लोक का, हमारे आस-पास का सामान्य मनुष्य है । जन्म से लेकर मृत्यु तक, वह जिन अनुभवों के बीच से गुज़रता है, नयी कविता में उन सब का साक्षात्कार मिलता है । रामस्वरूप चतुर्वेदी का कथन है - "आधुनिक साहित्य में साधारण चरित्र के वैशिष्ट्य को नहीं, उसके साधारण जीवन को भी रेखांकित करने का प्रयत्न है ।"[1] वस्तुतः नये कवियों ने अपनी कविता में आभिजात्य को अस्वीकारा है और अदना आदमी को स्वीकारा है । नयी कविता में साधारण आदमी और उसके सुख-दुःख की अनुभूतियों का चित्रण लघुता की महत्ता को स्वीकारने के लिए किया गया है । मुक्तिबोध के शब्दों में - "आज हमारा जो व्यक्ति जीवन है - साधारण मध्यवर्गीय लोगों का व्यक्ति जीवन - उसके अच्छे या बुरे, ऊँचे और उथले क्षणों की झाँकी, हमें नयी कविता में प्राप्त होती है ।"[2]

---

1. रामस्वरूप चतुर्वेदी - "हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास" - संस्करण-1986, पृ. 277
2. मुक्तिबोध - "नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध" - संस्करण- 1977, पृ. 12

नयी कविता की प्रवृत्तियाँ :-

साहित्य की हर विधा का प्राय: प्रवृत्तियों के आधार पर नामकरण किया जाता है । नयी कविता की अनेक प्रवृत्तियाँ है । इनमें कुछ प्रवृत्तियाँ पूर्ववर्ती धाराओं से प्राप्त है तो कतिपय प्रवृत्तियाँ समकालीन परिस्थितियों के प्रभाव से अपने आप से विकसित हैं । प्रयोगवादी कवियों ने अपने समय के यथार्थ के अनुरूप जिन नवीन और विविध काव्य प्रवृत्तियों को जन्म दिया, उन प्रवृत्तियों को नये कवियों ने अपने युग जीवन के यथार्थ के अनुरूप रूपान्तरित करके कविता को नयी दिशा की ओर उन्मुख किया । नयी कविता में अनुभूत सत्य और भोगे हुए सत्य को अभिव्यक्ति मिली है । डा. नगेन्द्र ने नयी कविता की सब से पहली विशिष्टता "जीवन के प्रति उसकी आस्था" कहा है । "नयी कविता की प्रवृत्तियों की परीक्षा करने पर, उसकी सब से पहली विशिष्टता जीवन के प्रति उसकी आस्था में दिखाई पड़ती है । आज की क्षणवादी और लघु मानववादी दृष्टि जीवन-मूल्यों के प्रति नकारात्मक नहीं, स्वीकारात्मक दृष्टि है । नयी कविता में जीवन का पूर्ण स्वीकार करके उसे भोगने की लालसा है ।"[1] नयी कविता का अपने युग की परिस्थितियों और परिवेश से घनिष्ठ संबंध है । नयी कविता की संवेदना की जड़ें समसामयिक युग की जीवन स्थितियों में गहरी धँसी हुई हैं । द्वितीय महायुद्ध की विभीषिका, भारतीय स्वतंत्रता, वैज्ञानिक तथा यांत्रिक प्रगति एवं उससे उत्पन्न त्रस्त-जीवन, महानगरीय सभ्यता की विसंगतियाँ, बेकारी, मूल्यों की

---

1. डा. नगेन्द्र (संपादक) - "हिन्दी साहित्य का इतिहास" - संस्करण-1978 पृ. 637, "नयी कविता" शीर्षक लेख से ।

टकराहट, चारित्रिक एवं नैतिक पतन इत्यादि के परिणाम स्वरूप उत्पन्न परिस्थितियों की विडम्बनाओं का चित्रण भी नयी कविता में हुआ है । इन प्रवृत्तियों का संक्षिप्त विवरण वांछित है ।

लघुमानव की प्रतिष्ठा :-

नयी कविता लघु मानव की कविता है । नयी कविता में महामानव नहीं, बल्कि सामान्य मानव की सामान्य आशा, आकांक्षा, असफलता-निराशा आदि की कविता है । नयी कविता के पहले कभी मानवीय संबंधों को इतना गौरव नहीं मिला था और न उस में करुणा, तनाव, अकेलापन, आतंक आदि का वर्णन हुआ । लघु मानव किसी क्षुद्र मानव का द्योतक न होकर सामान्य मनुष्य का प्रतीक मात्र है जिसे अब तक उपेक्षित समझा जाता रहा है । नया कवि लघु मानव की जीवन संवेदना को रूपान्वित करता है । डा. नगेन्द्र के शब्दों में - "लघु मानवत्व की जो बात नयी कविता में उठायी गयी है, उसे भी जीवन की पूर्णता के ही संदर्भ में देखना होगा । लघु मानव का अर्थ है - वह सामान्य मनुष्य जो अपनी सारी संवेदना, भूख-प्यास और मानसिक आँच को लिये-दिये उपेक्षित था ।"[1] इस लघु मनुष्य की लघुता को खोज-खोजकर उसकी प्रतिष्ठा करने में नयी कविता सफल हुई है । रामस्वरूप चतुर्वेदी का कथन है - "नयी कविता में समग्र मनुष्य की बात ही नहीं कही गई, वरन् मनुष्य के समग्र अनुभाव-खंडों को संयोजित किया गया है ।"[2] यह सच है

---

1. डा. नगेन्द्र (संपादक) - "हिन्दी साहित्य का इतिहास" -संस्करण-1978, पृ. 637
2. रामस्वरूप चतुर्वेदी - "हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास" - संस्करण-1986, पृ. 277

कि नयी कविता में लघु मानव के वैशिष्ट्य नहीं, बल्कि उसके साधारण जीवन को ही रेखांकित करने का प्रयत्न है । नेमिचन्द्र जैन ने कहा है - "नई कविता वास्तव में उन सभी अनगिनत छोटे-बड़े इंसानों की कविता है, जो शायद लंबे समय तक इधर-उधर भटकने के बाद अब अपने अपने स्तर पर जीवन की सार्थकता का संधान पा रहे हैं और इस चेतना को नाना-रूपों और आकृतियों में सहज ही अभिव्यक्त करने के लिए उलझ रहे हैं ।"[1]

क्षण का महत्व :-

नयी कविता में जीवन के प्रति पूर्ण आस्था है । जीवन के प्रति आस्था से उसका अभिप्राय है जीवन को जीने में और उसे भोगने में । नयी कविता में जीवन को उसकी पूर्णता में स्वीकार किया गया है । जीवन में जब भी कुछ सहज भाव से मिले, उसका पूर्ण उपभोग कर लेना चाहिए । फिर उसे भोगने का क्षण पुनः मिलेगा या नहीं, कुछ पता नहीं । इसलिए कवि सभी प्रकार की नियंत्रणों को तोड़कर वर्तमान क्षण के अनियंत्रित भोग की व्यंजना करता है । डा. रामदरश मिश्र का कथन है - "नयी कविता जीवन के एक-एक क्षण को सत्य मानती है और उस सत्य को पूरी हार्दिकता और पूरी चेतना से भोगने का समर्थन करती है । क्षण-बोध शाश्वत-बोध का विरोधी नहीं, उसे प्राप्त करने की यथार्थ प्रक्रिया है । नयी कविता अनुभूतिपूर्ण गहरे क्षण, प्रसंग, व्यापार या किसी भी सत्य को उसकी आन्तरिक मार्मिकता के साथ पकड़ लेना चाहती है । इस प्रकार जीवन के सामान्य से सामान्य

---

1. आजकल, मार्च 1992 - पृ. 94 - "नई कविता उपलब्धि और भ्रांतियाँ" शीर्षक लेख से ।

दीखने वाले व्यापार या प्रसंग नयी कविताओं में नया अर्थ पा जाते हैं ।"[1] नयी कविता में क्षणों की अनुभूतियों को लेकर बहुत सी मर्मस्पर्शी और विचार प्रेरक कविताएँ लिखी गयी है । ये कविताएँ कुछ क्षणों का, लघु प्रसंगों का, लघु दृश्यों का चित्रण नहीं करती, बल्कि बिम्बों के माध्यम से क्षणों की परिधि में उफनते जीवन की संश्लिष्टता को मूर्तिमान करती है ।

अनास्था, संत्रास एवं संशय :-

नयी कविता का परिवेश अपने यहाँ का जीवन है । इस जीवन में अनास्था, निराशा, कुंठा, लाचारी आदि का होना स्वाभाविक है । क्योंकि समाज का परिवेश बडा विषम है । नयी कविता में अनास्था, भय, संत्रास, संशय, घुटन आदि के संकेत के कई कारण हो सकते हैं । डा. अरविन्द का मत यों है - "इस संत्रास के पीछे मूल रूप से आणविक खतरे का भय था । विश्वयुद्ध की बर्बरता ने आदमी-आदमी के बीच अनास्था और भय को ला पटका था । इससे सांस्कृतिक मूल्यों में अनास्थिकता और धुंधलापन साकार हो गया था । सद्भाव एवं विश्वास के अभाव में भयावह धारणा उत्पन्न हो गई थी ।"[2] देशीय संदर्भ में पूँजीवादी एकता तथा उपनिवेशिक संस्कृति ने भी संत्रास को बढावा दिया है । आज की कविता इसलिए अवमूल्यन एवं आक्रोश की कविता हो गयी है । उसके पात्र यथार्थ है । नयी कविता की यथार्थवादी

---

1. डा. नगेन्द्र (संपादक) हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ. 639, संस्करण-1978
   डा. रामदरश मिश्र - "छायावादोत्तर काल" शीर्षक लेख से ।
2. डा. अरविन्द - "सप्तक काव्य" - संस्करण-1976, पृ. 161

दृष्टि काल्पनिक या आदर्शवादी मानववाद से संतुष्ट न होकर जीवन का मूल्य, उसका सौंदर्य, उसका प्रकाश जीवन में ही खोजती है । वर्तमान की गहन निराशा और बिखराव के बीच भी वह अनागत ज्योति के लिए प्रतीक्षमान है । जीवन मूल्यों के टूटने से लोगों में कुंठा, निराशा, घुटन, उदासीनता, घृणा, पराजय और अतृप्ति का आना स्वाभाविक था ।

लोकोन्मुखता :-

लोक संपृक्ति नयी कविता की एक विशिष्ट प्रवृत्ति है । वह सहज लोक-जीवन के करीब पहुँचने का प्रयत्न कर रही है । डा. रामदरश मिश्र का कथन है - "नयी कविता ने लोक जीवन की अनुभूति, सौन्दर्य-बोध, प्रकृति और उसके प्रश्नों को एक सहज और उदार मानवीय भूमि पर ग्रहण किया । साथ ही साथ लोक-जीवन के बिम्बों, प्रतीकों, शब्दों और उपमानों को लोक जीवन के बीच से चुनकर उसने अपने को अत्यधिक संवेदनापूर्ण और सजीव बनाया ।"[1] नयी कविता ने अपने बिंब और प्रतीक पुराण और इतिहास से भी चुने हैं, लेकिन उन्हें नये अर्थ और संदर्भ से संपन्न किया है । अनेकानेक फुटकल कविताओं के अतिरिक्त "अन्धायुग", "कनुप्रिया" और "आत्मजयी" इस दृष्टि से महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं । लोक-संपृक्ति के संदर्भ में लोक जीवन से लिये गये शब्दों की ओर भी दृष्टि डाल लें । नयी कविता ने सभी प्रकार के संदर्भों के लिए लोक-शब्द चुने । इसलिए नयी कविता की भाषा में एक खुलापन और ताज़गी दिखाई देती है । नेमिचन्द्र जैन का कथन समीचीन

---

1. डा. नगेन्द्र (संपादक) - हिन्दी साहित्य का इतिहास"- संस्करण-1978, पृ. 641 - डा. रामदरश मिश्र -"छायावादोत्तर काल" शीर्षक लेख से ।

लगता है - "आज जीवन के प्रत्येक पक्ष की, प्रत्येक स्तर की, भावना के हल्के से उतार-चढ़ाव की काव्य में अभिव्यक्ति है । एक प्रकार से कविता का यह "जनवादीकरण", "ऊँचे सिंहासन से उतार कर उसे गली के मोड पर ला खड़ा करना, आज की कविता की नवीनतम विशेषता है ।"[1]

प्रखर - युग बोध :-

नयी कविता युग-बोध की कविता है । यदि नयी कविता की कोई सार्थकता है तो उसके आधुनिक युग-बोध के कारण ही है । आज नयी कविता सामान्य आदमी के दुःख दर्द को समझने का प्रयास करती है । अतः युग बोध को उद्घाटित करने की पूरी क्षमता नयी कविता में ही है । नयी कविता में अपने परिवेश के प्रति अधिक जागरूकता, उसे समझने की छटपटाहट, कारणों तक पहुँचने की त्वरा, तज्जनित क्षोभ, त्रासदी एवं व्यंग्य के रचाव का दर्शन होता है । दरअसल नयी कविता आदमी के सर्वव्यापी संकट या समकालीन सच्चाई के ठोस अनुभवों को उजागर करती है । नेमिचन्द्र जैन का कथन है - "नई कविता की संज्ञा केवल किसी नवीन छन्द, लय, शब्द, तथा भाव-विन्यास वाली कविता का एकाधिकार नहीं है, वह इस युग की समूची सार्थक और सक्षम काव्य रचना को प्राप्त होनी चाहिए, वह चाहे किसी छन्द में और किसी दल के कवि की लिखी हुई क्यों न हो । अनुभूति की विविधता तथा विस्तार और उसकी स्वीकृति ही आज की हिन्दी कविता

---

1. "आजकल" मार्च 1992, - पृ. 93 - "नई कविता: उपलब्धि और भ्रांतियाँ" शीर्षक लेख से ।

की विशेषता और उसका नयापन है ।"[1] सामान्य मानव भी अपने परिवेश के प्रति संवेदनशील हो उठता है तो कोई कारण नहीं कि समाज का अतिसंवेदनशील कवि ही इसका अपवाद बने । कवि कितना ही व्यक्तिवादी और विद्रोही क्यों न हो, एक संबंध-सूत्र से समाज, उसे अपने से बाँधे ही रहता है । कवि में यदि उसका युग संवेदित नहीं होता तो वह निरर्थक है । नयी कविता की युग-सापेक्षता को सभी आलोचकों ने स्वीकार किये हैं ।

विसंगति और विडंबना :-

नयी कविता संपूर्ण जीवन की कविता है, केवल महिमाशाली अंशों तक वह अपने को सीमित नहीं रखती । जीवन के सभी क्षेत्रों में फैली विडम्बनाओं का चित्रण भी, नयी कविता में हुआ है । नयी कविता की प्रवृत्तियों की परीक्षा करने पर, उसकी सब से पहली विशिष्टता (प्रवृत्ति) विडम्बनात्मक स्थितियों का चित्रण है । नयी कविता में समसामयिक जीवन की गहन पहचान तो है ही, साथ ही विसंगतियों और विडम्बनात्मक स्थितियों का । डा. रामदरश मिश्र का कथन है - "नयी कविता की प्रश्नाकुल दृष्टि इन मूल्यों को उनकी विकसित असंगतियों के बीच देखती है । इसलिए जहाँ ये मूल्य अपनी असंगतियों के कारण तीखे व्यंग्य का भाजन बनते हैं, वहीं नये संदर्भों में भी सिद्ध होनेवाली उपयोगिता के कारण आस्था का आधार ।"[2]

---

1. आजकल - मार्च 1992 - पृ. 92 - "नई कविता उपलब्धि और भ्रांतियाँ" शीर्षक लेख से ।
2. डा. नगेन्द्र (संपादक) - हिन्दी साहित्य का इतिहास - संस्करण-1978, पृ. 640

अशोक चक्रधर का कहना है - "नयी कविता में घनघोर वैयक्तिक आवेग के कारण यदि एक ओर विद्रोह का स्वर था और विवश विडंबनाओं के प्रति दुर्दम ललकार थी तो दूसरी ओर जीवन के प्रति अनास्था, निराशा और पराजय के साथ-साथ अमानवीकृत होते जीवन मूल्यों की छायाएँ थी ।"[1] यह सच है कि आज जीवन का कोई क्षेत्र ऐसा नहीं रह गया हो, जो विडम्बनापूर्ण न हो । स्वातंत्र्योत्तर काल में भारतीय समाज में जिस अनुपात में अर्थ व अधिकार लिप्सा बढ़ी है उसके ठीक विपरीत अनुपात में कर्तव्य व दायित्व की भावना घटी है । इन सब के परिणाम स्वरूप आज का भारतीय जीवन, प्रत्येक क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की विरोधी स्थितियों और विसंगतियों से घिर गया है । दरअसल आज हमारे समाज का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है, जिस में विसंगति और विडम्बना न हो । सामाजिक और राजनीतिक विसंगति और विडम्बनाएँ, टूटते हुए नैतिक-मूल्य आदि से हमारा परिवेश भर गया है । इनके अतिरिक्त विडंबना तो यह है कि दिनों-दिन सामाजिक मूल्य भी बिखरते चले जा रहे हैं । पुराने सामाजिक आदर्श खोखला होते जा रहे हैं । इन विडम्बनाओं पर नये कवियों की दृष्टि गयी है । अतः नयी कविता में इनका भरपूर चित्रण मिलता है । मनुष्य की विडम्बनात्मक स्थितियों को, नये कवियों ने कथ्य के रूप में स्वीकार किये हैं । नयी कविता निरन्तर व्यक्ति की समस्याओं को हल करने के लिए प्रयत्नशील भी हैं । नामवरसिंह का कथन सच है - "हिन्दी कविता में यह प्रवृत्ति (विसंगति और विडंबना) इधर उतनी बढ़ी है कि "तार सप्तक" काल के जो कवि सिर्फ़ इस प्रवृत्ति के कारण पिछले दौर में उपेक्षित रह गये थे, इन कविताओं के-चलते पुनः प्रकाश में आ गये । इस दृष्टि से भारत भूषण अग्रवाल और

---

1. अशोक चक्रधर व मुजीब रिज़वी (सं) "छाया के बाद" - संस्करण-1978, पृ. 32

प्रभाकर माचवे के नाम उल्लेखनीय है ।"[1] नामवर सिंह का आगे कहना है - "आज भी विडंबनापूर्ण स्थिति के सम्मुख नाटकीय काव्य के लिए अपार संभावनाएँ हैं और नाटकीय रचनाएँ ही इस स्थिति की चुनौती को अच्छी तरह स्वीकार भी कर सकती है । आकस्मिक नहीं है कि इस दौर की सशक्त रचनाओं में जिस "अंधायुग" का नाम प्रायः लिया जाता है, वह काव्य नाटक है ।"[2] यह सच है कि समसामयिक जीवन की विसंगति और विडम्बना को संवेदनशील कवि व्यंग्यों के माध्यम से भी रचनात्मक अभिव्यक्ति देते हैं । वर्तमान युग की अनास्था और असंतोष ही नहीं, बल्कि गरीबी से लेकर राजनैतिक नेताओं के खोखलेपन, पूँजीपतियों द्वारा गरीबों का शोषण आदि कई सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक समस्याओं को नये कवियों ने काव्य का विषय बनाया है । नये कवियों में माचवे का अपना अलग स्थान है । इसलिए माचवे की कविताओं की विडम्बनात्मक स्थितियों का विश्लेषण अनिवार्य है ।

माचवे की कविताओं में सामाजिक विडम्बनाओं की गहराती स्थितियाँ :-

रूढ़ियाँ समाज में दिन प्रतिदिन सबल होती जा रही हैं । ये रूढ़ियाँ जन-जीवन की प्रगति में बाधा बनकर खड़ी है । इसलिए जीवन में जो गतिशीलता दिखाई देती है, वह बहिरंग है । असल में रूढ़ियों के कारण

---

1. नामवर सिंह - कविता के नये प्रतिमान - संस्करण - 1982, पृ. 153 "विसंगति और विडम्बना" शीर्षक लेख से ।
2. नामवरसिंह - कविता के नये प्रतिमान - संस्करण-1982, पृ. 156 "विसंगति और विडंबना" शीर्षक लेख से ।

गतिरोध का आभास ही होता है । वह सहज ही देखने को मिलता है कि हमारे सामाजिक जीवन में धन का महत्व बढ गया । आर्थिक महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए, व्यक्ति प्राय: गलत साधनों का इस्तेमाल करता है । अत: समाज में रिश्वतखोरी, शोषण जैसी कुप्रवृत्तियाँ बढ गयी हैं । पूँजीवादी व्यवस्था के फलस्वरूप अमीर अधिक अमीर होते गये । पूँजीपतियों द्वारा शोषण का तंत्र बढता ही रहता है । इस कारण समाज में बेकारी, भुखमरी, अपराध, लूट-मार, अशांति आदि भी बढ गयी हैं । नौकरशाही का वातावरण भी ज़ोरदार हो गया है । हमारे सामाजिक जीवन की गंभीर समस्या यह है कि उसका हर क्षेत्र विडंबनापूर्ण है, उसकी कोई दिशा विसंगतिहीन नहीं है ।

<u>सामाजिक विडम्बना :-</u>

माचवे प्रखर सामाजिक चेतना के कवि हैं । उन्होंने अपनी कविताओं में विडम्बनापूर्ण स्थितियों का उल्लेख भी किया है । आज समाज की सब से बडी समस्या, सब से बडी विडम्बना - गरीबी और भूख है । जब माचवे राष्ट्रीय मज़दूर संघ इन्दौर के मंत्री थे, तब साधारण लोगों की गरीबी और कठिनाइयों को निकट से देखा है । माचवे ने कहा है - "आग्रा में रहते समय मैं ने साधारण लोगों के जीवन को निकट से देखा, और लिखने में बहुत सहायक भी था ।"[1] भारत के अन्य प्रदेशों में रहते समय भी अपने इर्द-गिर्द के गरीबी और भूख से तडपती जनता को देखा है । ऐसी

---

1. प्रभाकर माचवे - "फ्राम सेल्फ टु सेल्फ" {आत्मकथा} संस्करण-1976, पृ. 26 "Sprouting " शीर्षक से ।

"I came very close to the common man's life in Uttar Pradesh during this stay at Agra and this helped me in my writing.

गरीबी और भूख का चित्रण उन्होंने अपनी कविता, कहानी, उपन्यास आदि में किया हैं । अपनी आत्मकथा में उन्होंने इसका वर्णन किया है ।[1] समाज के शोषितों, गरीबों, मजदूरों के जीवन को माचवे ने कविता का विषय बनाया है । आज की सब से बडी विडम्बना यह है कि समाज में समानता नहीं है । स्वतंत्रता और समानता का समीकरण अन्ततः एक बहुत बडा झूठ है । यही हमारे समाज की सब से गहरी विडंबना है । इस ओर संकेत करते हुए माचवे कहते हैं :-

"गाँव-गाँव से मिटेगी कब महँगी की दुविधा !
देखना है, नया राज,
जिस में किसान उठा पाये निज आवाज़ ;
किन्तु अभी आशाएँ यह सब "युटोपिया" हैं,
जन-जन को पर्याप्त,
अन्न, वस्त्र, घर, काज,

---

1. प्रभाकर माचवे - "फ्राम सेल्फ टु सेल्फ", संस्करण-1976 - पृ.29
"I wrote many short stories on the lives of the workers and how poverty and disease and fatalism completely broke their morale, how human beings turned into crawling insects, Cringing for, Crumbs and left overs. All this was a good training in socialist realism"., but I began to lose faith in the philosophy of non-violence and the ultimate faith in human goodness".

जब तक नहीं मिलता है
तब तक यह सब विधान,
निरी शाली कहाँ धान ?"[1]

इस सपाट कविता में वस्तु सत्य का उद्घाटन या अनावरण ही हुआ है । पर जिस सत्य की ओर उनका इशारा है, वह सामान्य लगते हुए भी सामान्य नहीं है । जो इस समस्या से गुजरता नहीं, उसे यह निरी वस्तुस्थिति है । परन्तु यह एक विकराल वस्तुस्थिति है । अन्न, वस्त्र और मकान के अभाव में जीवन जिस तरह अर्थहीन और खोखला हो सकता है उसका अनुमान करना सामान्य बात नहीं है । इसलिए हमारे समाज की ऐसी वास्तविकताओं के समक्ष समानता का आदर्श एकदम निरर्थक और खोखला है । माचवे इसी विडंबना पर ज़ोर दे रहे हैं । "दीवाली 1948" शीर्षक कविता में गरीबी की विडंबना विन्यसित है -

"वस्त्र देश में नहीं गरीब को न अन्न है,
क्या जलाएँ दीप-पंक्ति सृष्टि अप्रसन्न है ।
व्योम में टँगा सुसौम्य उच्च नभोदीप पर,
टूटता नखत, बढा कि अन्धकार सन्न है ![2]

उसी तरह -

---

1. प्रभाकर माचवे - "अनुक्षण" संस्करण-1959, पृ. 59 - "कला और आज" शीर्षक कविता से ।
2. प्रभाकर माचवे - "अनुक्षण" - संस्करण-1959, पृ. 79 - "दीवाली 1948" से ।

"मिलों में अश्रांत,
घिस रहे अशांत,
मनुज - यंत्र - भ्रांत,
सृजक - श्रमिक, हक़ जिनके -
सिर्फ है हम्माली !"[1]

यह गरीबी के अलग-अलग चित्र हैं । पर सूक्ष्मता में जाएँ तो हम यह अनुभव कर सकेंगे कि जीवन में आराम के अभाव में से घिसते हैं, यही नहीं कि वे बुनियादी सुविधाओं से वंचित हैं । चित्रों की विन्यास-रीति में माचवे ने अपनी विडंबनात्मक दृष्टि का परिचय दिया है ।

देश भर के लिए अन्न पैदा करनेवाला किसान के जीवन की विडम्बना को माचवे ने यों प्रस्तुत किया है । वस्तुतः किसान सृजक है, पर वक्त के भोजन के लिए उसे तरसना पडता है -

"भूखों की कैसी दिवाली ?
खेत में निरन्न,
दुर्भिक्षावसन्न,
सृजक-कृषक, जिसका है,
थाल आज खाली !

---

1. प्रभाकर माचवे - "अनुक्षण" - संस्करण-1959, पृ. 56 - "भूख और दीवाली" से ।

यह कविता प्रस्ताव मात्र नहीं है । इसमें सच्चाई की घोषणा है और साथ ही उनकी बेबसी भी । पर इस विडम्बनापूर्ण स्थिति को माचवे ने अतिरिक्त सहानुभूति से मंडित नहीं किया है । एक प्रश्न उपस्थित किया है कृषक सृजक होकर भी निरन्न है । अन्नदाता निरन्न है । यह स्थिति हमें अपने सामाजिक ढाँचे के प्रति सचेत करती है । यह अकारण नहीं है कि इसमें शोषण का तंत्र अनावृत होने लगता है ।

एक अन्य दृश्यात्मक कविता में - "क्यों न चीखें कि याद करते हैं" - प्रभाकर माचवे ने मिल-मज़दूरों के जीवन की नंगाई का चित्रण किया है । इसमें अनेक चित्र एक जगह इकट्ठे हुए हैं । पर साथ ही गरीबों का दृश्य और उनकी मज़दूरी भी अंकित है -

"मिल के गन्दे मज़दूरों की धुआँ-तेल से सनी मुखाकृतियाँ,
वह सीटी
बदबू-वाली नाली के नज़दीक झोपडी सीलन भरी,
हँसी वह मीठी,
किटकिट दाँतोंवाला जाडा, बुझती-सी अँगीठी,
ओ दरिद्रनारायण, पेट-पीठ से लगे कुबेर-नर
याद तुम्हारी आयी ।"[1]

"शीत और तपन" में गरीबों और मज़दूरों का जीना दूभर हो जाता है, वे

---

1. प्रभाकर माचवे - "मेपल" - संस्करण-1967 - पृ. 9 - "क्यों न चीखें कि याद करते हैं" शीर्षक कविता से ।

अपनी साँसों की गर्माहट से अपने शरीर को गर्म लेते हैं । "आगरा" शीर्षक कविता में ऐसे गरीबों का दृश्य अंकित है -

> "ब्राउन का तारीखे-अदब-फारसी पढा,
> पढा वहाँ दर्शन, और देखा बहुत अनपढा ।
> वह ठंडी सड़क पे गर्म आहें भरते हुए
> देखी कई आत्माएँ जीते जी मरते हुए ।"[1]

माचवे की "उज्जयिनी में" शीर्षक कविता में भी मिल-मज़दूरों के करुणा भरा चित्र प्रस्तुत हैं -

> "मगर जहाँ तक मैं ने देखे घोर गरीबी के बुज्जारे,
> भैरोगढ़ के छापे देखे और बहादुर गंजी माली,
> देखे मैं ने बलई, रैंगर, भील और कुनबी बेचारे,
> मिल में पिसते, मेलों में जुटते देखे विक्रम बलशाली !
> कब तक उस कल्पना जगत् के संस्कृति-स्वप्नों को पी-पीकर,
> भुला सकोगे कब तक राही ! ये कठोर वास्तवी श्रम सीकर !"[2]

मज़दूर वर्ग अपनी जान को हथेली पर रखकर, बड़े से बड़े खतरा मोल ले लेते हैं, फिर भी उन्हें उनके श्रम का उचित मूल्य नहीं मिलता ।

---

1. प्रभाकर माचवे -"स्वप्न भंग"- संस्करण-1957 - पृ. 43 - "आगरा" शीर्षक कविता से ।
2. प्रभाकर माचवे - "स्वप्न-भंग" - संस्करण-1957 - पृ. 60 - "उज्जयिनी में" शीर्षक कविता से ।

जिन महलों के निर्माण में ये अपना ख़ून-पसीना बहाते हैं, सदियों तक दूर-दूर से पत्थर ढोते हैं, चट्टानों के स्तूप बनाते हैं, वे महल दर्शकों के लिए कौतूहल बन जाते हैं, परन्तु उनका निर्माण करने वाले हाथों का कहीं कोई चिन्ह नहीं :-

"कितने लाखों मज़दूरों का बहा पसीना, ख़ून, ज़िन्दगी,
सदियों तक यों दूर-दूर से पत्थर ढोकर, बनाये गये
चट्टानों के स्तूप तिकोने
आज निरे कौतूहल, दर्शक के लिए
कई कैमरे "क्लिक" करते हैं स्नैप ले लिये "[1]

श्रम का मूल्य इतना सामान्य है कि उसके कर्त्ता की महत्ता का सन्दिग्ध हो जाना स्वाभाविक है । महत्व महल का रह जाता है और श्रमिक फिज़ूल है । माचवे इस ओर संकेत करते हैं । "कस्मै देवाय ?" शीर्षक कविता में माचवे ने श्रमिकों के जीवन की असलियत को यों प्रकट किया है -

"जो बड़े-बड़े शहरों में,
गन्दी लंबी गटरों में,
फुटपाथों पर सोये हैं,
जो खोये-खोये से हैं
श्रमसत्ता के जित दल ने
रणवर्ष में बोये हैं -

---

1. प्रभाकर माचवे - "मेपल" - संस्करण-1967 - "पिरामिड के गाइड" शीर्षक कविता से ।

नवबीज, चुनौती दें जो
कहकर - हट जा पथ से ओ,
धनसत्ता के दीवाने !
हम उनके गायेंगें गाने .[1]

निम्नवर्ग की विडम्बनाओं में प्रमुख है विवशताओं के मध्य में जीने की स्थिति । उस स्थिति से वे उभरते भी नहीं है । माचवे ने इसका दृश्यांकन उनकी अपनी भाषिक संपदा का उपयोग करके किया है -

"मध्यवर्ग का ऐसा ही मन,
उन्मन उन्मन, तपन भरा, फिर भी सुन लेता है ख़न-ख़न
इसके मन में गहरी घुमड़न
उमड़ न पाये ऐसी विषमय कई घुटे-से मनोभाव हैं ।
पूरी हुई न ऐसी कई उमंगें अनगिन
पूर न पाये, बहते और बे-दवा ऐसे कई घाव हैं ।
इनके मन में सदी - सदी के
बोदेपन के, बदी और नेकी के निश्चित रूढ़ नियम हैं ।".[2]

माचवे की एक कविता है - "एक मोची" । इसमें माचवे ने एक मोची की दुर्दशा का चित्र प्रस्तुत किया है, जो बीडी फूँककर अपनी सर्दी मिटाता है । यह हमारी विडम्बना है कि जो हड्डियाँ जोडते हैं, वे मोचीराम कहलाते हैं और

---

1. प्रभाकर माचवे - "अनुक्षण" - संस्करण-1959 - पृ. 53 - "कस्मै देवाय ?" शीर्षक कविता से ।

2. "अनुक्षण" - संस्करण-1959, पृ. 57 - "मध्यवर्ग का ऐसा ही मन" शीर्षक कविता से ।

जो हड्डियाँ तोड़ते हैं - वे उच्चवर्ग कहलाते हैं - कवि के शब्दों में -

"सबेरे से शाम तक निहाई लिये, बेकाम,
सड़के के किनारे बैठे हैं एक मोचीराम ।
कभी जूती लाया तो पालिश भी कर दी,
सी दी ; मिटाई कभी बीड़ी से सर्दी,
घिसी हुई आयी, लगा दी कभी एड़ी ।
सैंडिल हो, चप्पल हों, बूट हों या जूते
सभी एक पैसे "हैं" या एक "हूँ" से ।
x x x x x x
तोड़ते जो हड्डियाँ वे उच्चवर्ग (बात में से सोची)
विडम्बना है । जोड़ते जो हड्डियाँ वे कहलाते हैं मोची ?"[1]

यह हमारी विडम्बना है कि पूँजीपति निर्धनों का खून-चूसकर सुख की नींद सोता है । मायवे नहीं चाहता कि एक व्यक्ति वातानुकूलित कक्ष में विश्राम करें और दूसरा वस्त्राभाव के कारण सड़कों पर पड़ा-पड़ा सर्दी से ठिठुरता रहे । अमीरों के लिए शीत और तपन के सामान हैं । क्योंकि उनके पास "शीत और ताप" के शमन के लिए सुन्दरी और सुरा दो महत्वपूर्ण उपकरण हैं । अर्थ के बल पर ये लोग सभी कुछ क्रय कर लेते है - यह हमारी नियति है, विडम्बना है । यह स्थिति इसलिए बरकरार है कि -

---

1. "स्वप्न-भंग" - संस्करण-1957 - पृ. 80 - "एक मोची" शीर्षक कविता से

"नहीं यहाँ पर कुछ भी शाश्वत या चिरकालिक,
सब कुछ बँटा हुआ दो रिश्तों में है नौकर अथवा मालिक ।"[1]

समाज के इस शोषक वर्ग को शोषित वर्ग के जीवन से कोई मतलब नहीं है । गरीबों के लिए जीवन का अर्थ है साँसों को ढोते जाना, शोषित-मजदूर, किसान-वर्ग के खून पसीने का शोषक वर्ग के लिए कोई महत्व नहीं है, क्योंकि उसे तो मद्यपान से ही फुरसत नहीं मिलती -

"फुरसत नहीं हाय हमें पीने से,
हम को क्या मतलब है जीने से,
जनमे है इसी से बस साँसों को ढोते हैं,
हम को क्या करना है किसी के पसीने से ।"[2]

यह हमारी नियति है कि सामाजिक नियम-कानून हमेशा अमीरों के पक्ष में होते हैं, क्योंकि इन नियमों एवं कानूनों के निर्माता स्वयं अमीर हैं । नीति की जकड़न हमेशा गरीबों को हैं । इन कानूनों से हमेशा छूट मिलता है - अमीरों को, महाजनों को और शासकों को । समाज की इस विडम्बना पर दुःख व्यक्त करते हुए माचवे का कथन हैं -

"आदमी के हैं बनाये ये नियम कानून,
स्वार्थ है इन में छिपा है वर्ग का सुख मूल ।

---

1. स्वप्न भंग - संस्करण-1957 - पृ. 82 - "बाजारू सभ्यता" शीर्षक कविता से
2. अनुक्षण - संस्करण-1959 - पृ. 32 - "ठीक दिन के 12 बजे" शीर्षक कविता से ।

सैकड़ों का जब कि मिलता है पसीना-खून
सुधर सामाजिक व्यवस्था-रूप खिलते - फूल !
आदमी के हैं बनाये धर्म, नय, आचार,
छूट है इन में महाजन, धनिक, शासक हो ;
नीति की जकड़न गरीबों को, वही लाचार !
ढोंग प्रभु का रच रियायत है उपासक को ।[1]

प्रभाकर माचवे की कुछ कवितायें ऐसी भी हैं जिन में समाज के शोषित शिशु और शोषित नारी जीवन की विडम्बनात्मक स्थितियों की ओर संकेत हैं । ये दोनों - शिशु व नारी - निर्भरता का जीवन बिताने के लिए विवश है । शिशु जीवन मनुष्य के व्यक्तित्व निर्माण की नींव होता है । परन्तु आज के इस शोषण युक्त समाज में बच्चे अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं कर पाता । वह जीवन भर पूँजीपति का दास बन जाता है । शिशु के लिए जीने का अर्थ है - किसी न किसी प्रकार जीना, चाहे फुटपाथों पर हो, चाहे भूखे पेट हो ।

यह हमारी विडम्बना है कि समाज के अमीरों के बच्चों को सभी प्रकार की सुख-सुविधाएँ उपलब्ध है, जब उसी समाज के गरीब किसान के बच्चों के लिए एक खिलौना भी नहीं है । इन बेचारे बच्चों के मन-बहलाव के लिए कीचड़ ही मुख्य खिलौना है । वर्षा होने पर कीचड़ होती है और

---

1. अनुधप - संस्करण-1959 - पृ. 69 - "धान और विधान" शीर्षक कविता से

वे प्रफुल्लित होकर एक साथ खेलते हैं -

"उन काले अछोर खेतों में,
हलवाहों के बालकगण कुछ खेल रहे हैं ।
पहली झड़ियों से निर्मित कर्दम की गेंदें झेल रहे हैं ।
वे बालक हैं, वे भी कर्दम -मिट्टी के ही राजदुलारे ;
बालक पहले-पहले बरसे, बचे-खुचे छितरे दिशिहारे !"[1]

लोगों ने इस प्रकार के शिक्षा-संस्कृति विहीन बच्चों का गिनती प्रेतों के समान की है । इसका कारण हमारी सामाजिक व्यवस्था है । ऐसी विडम्बना पर दुःख प्रकट करते हुए माचवे का कथन है कि -

"शिक्षा-संस्कृति विहीन ,
दीन-मलीन, निठल्ले,
क्यों मिट्टी से खेलें ? विद्यामृत कब चक्खा ?
इसका उत्तर स्वयं हमीं में, हम ने ही उनको यों रक्खा ;
जो अब उनकी गिनती है प्रेतों में -
उन काले अछोर खेतों में !"[2]

समाज के गरीबों के बच्चे अब थोडा बडा भी नहीं हुआ कि उनके सामने जीविका का प्रश्न आ जाता है । जीवनयापन के लिए कोई न कोई मार्ग

---

1. अनुक्षण - संस्करण-1957 - पृ. 33 - "एक दृश्य" शीर्षक कविता से ।
2. वही

अपनाना पडता है । कुछ बालक जान हथेली पर रखकर, सागर की गहराइयों में डूबते हैं - यात्रियों द्वारा फेंके हुए कुछ सिक्कों के लिए -

"कैसे वे "कोरी" बालक हैं सिद्ध तैरने में फुर्तीले,
उन उत्ताल फेन-फन फटकारों में भी झटपट से डुबकी ले,
सिक्के फेंके हुए पकड़ लाते हैं अपनी जान लड़ाकर,
उसी जुहू के गीत मनोहर गाते कवि मोटर में जाकर ।"[1]

बच्चों के इन विडम्बनापूर्ण चित्रों के अतिरिक्त माचवे की ऐसी भी अनेक कवितायें हैं, जिनमें नारी के अनेक विडम्बना अंकित हैं । युग-युग से नारी, नर का गुलाम है । नर का एकाधिपत्य नारी को सहना पडता है । समाज की ऐसी विडम्बना का संकेत माचवे ने यों दिया है -

"युग-युग से नर का एकाधिपत्य यह भोग रही नारी,
नये विधान बने, घिस-घुस कर जब कि पुराने ये सिक्के,
अपना वज़न मूल्य खोकर के दर-दर खाते हैं धक्के ।"[2]

नारी के एक अन्य विडम्बनात्मक चित्र, माचवे ने इस प्रकार दिया है -

---

1. "स्वप्न-भंग" - संस्करण-1957 - पृ. 40 - "जुहू" शीर्षक कविता से ।
2. डा. कमल किशोर गोयनका (संपादक) - "प्रभाकर माचवे प्रतिनिधि रचनाएँ" - संस्करण-1984 - पृ. 27, - "मुक्ति-दिवस" शीर्षक कविता से ।

"जीवन के कितने दुःख झेले, तुम ने कैसा जनम बिताया !
नहीं एक सिसकी भी निकली, रस देकर विष को अपनाया ।
आँसू पिये, हास ही केवल हमें दिया, तुम धन्य, विधात्री !
मेरे प्रबल, अदम्य, जुझारू प्राण-पिंड की तुम निर्मात्री ।
कितने कष्ट सहे बचपन से, दैन्य, आप्तजन-विरह, कसाले,
पर कब इस जन को वह झुलसन लग पायी, ओ सुवर्ण-ज्वाले !
सभी पूत हो गया स्पर्श पा तेरा, कल्मष सभी जल गया,
मेधा का यह स्फीत-भाव और अहंकार सब तभी गल गया ।"[1]

इस तरह माचवे की कविताओं के विश्लेषण से स्पष्ट है कि उनमें सामाजिक विडम्बना के अनेक चित्र मुखरित हैं । माचवे जब अनेक क्षेत्रों में सेवारत रहे, तब साधारण लोगों के जीवन और उनकी विडम्बना को देखा है, विशेषकर जब वे राष्ट्रीय मजदूर संघ, इन्दौर के मंत्री थे । उनकी आत्मकथा में माचवे ने लिखा है-[1]

1.'From self to self' Edition 1976 page 32.
"Looking back, all these experiences of going to the slums and little huts and hovels of the weavers, spinners and dyers in the mills of Indore and Ahmedabad, caste Hindus and Harijans, Muslims and Christians, people who were illiterate and semi literates, who were steeped in all kinds of intoxication - chain-smokers, opium eaters, drunkards, criminals, thousands of faces that were faceless, women whose eyes had turned glassy with misery and penury, children who cried and suffered with diseases, of which the causes were beyond them".

राजनीतिक विडम्बना के संकेत :-

समाज और राजनीति का अटूट संबंध है । आज मनुष्य जीवन का कोई क्षेत्र ऐसा नहीं रह गया है, जो राजनीति से मुक्त हो । राजनीति पर सर्वाधिक प्रभाव उसे संचालित करनेवाले नेताओं और राजनीतिज्ञों का होता है । प्रभाकर माचवे ने अपनी कविताओं में सत्ताधारी राजनैतिक नेताओं की हरकतों, क्रिया-कलापों में पायी जाने वाली अमानवीयता का चित्रण किया है । माचवे ने स्वयं स्वीकार भी किया है - "सन् 1934 से मैं लिखने लग गए । तब से देखिए, भारत में जो उथल-पुथल हुई, जो राजनैतिक, सामाजिक परिवर्तन हुआ, उन सब का परिणाम मेरी मूल्यवत्ता पर, मेरे विचारों पर जरूर पडा है ।"[1] आज के राजनीतिज्ञ, अवसरवादी, दल-बदलू, भ्रष्टाचारी होते हैं । कुछ राजनीतिज्ञ, राजनीति को व्यापार और रोजगार के रूप में स्वीकार करते हैं । वे उसे अपने लोभ-लाभ के लिए उपयोग करते हैं । विभिन्न दल और उनकी नीतिएँ एकदम अर्थहीन हो गयी हैं । ये राजनीतिज्ञ साधारण भोली-भाली जनता को कई प्रकार के आश्वासन देते हैं, उनके हितों की रक्षा का वचन देते हैं । ये वचन केवल वोट पाने के लिए ही होता है । वोट पाने के बाद वे अपनी राह लेते हैं । इनको जनता की भलाई से क्या मतलब ? यह हमारे देश की राजनीतिक विडम्बनापूर्ण स्थिति हैं -

"यहाँ संस्कृति सिसकती हो बनी सीता मुसीबत में,
सदा सुविधा पसन्दी हो रही आदर्श निज-रत में
हमें बस वोट पाने हैं, न सूरत में न सीरत में

---

1. डा. रत्ना लाहिडी - "मूल्य: संस्कृति, साहित्य और समय {साक्षात्कार} प्रथम संस्करण- 1987 - पृ. 62 - {डा. प्रभाकर माचवे"} शीर्षक से ।

किसी में भी हमें सौन्दर्य से कोई कहाँ मतलब
मगर पहरा हमारा ही रहेगा अब "[1]

युग-युग से शोषित भारतीय जनता को जब मुक्ति मिली, तो वह मुट्ठी भर लोगों को वरदान सिद्ध हुआ । राजनीतिज्ञों को छोडकर, भारत की शेष जनता अब भी गरीबी में जीवन बिताते हैं । इस विडम्बनात्मक स्थिति पर दुःख प्रकट करते हुए माचवे ने कहा -

"युग-युग से शोषित जनता, जो इस दिन की रही प्रतीक्षा में,
दी कितने शहीद लालों ने बलि की अग्नि-परीक्षायें,
मुक्ति मिली जब-जब मुट्ठी भर लोगों को वरदान मिला,
शेष बचे लाखों लोगों को पुनः बुभुक्षित प्राण मिला ।"[2]

वस्तुतः आज की धनाश्रित राजनीति की विडम्बना है कि उस में मुट्ठी भर लोग अधिकार केन्द्र में आ जाते हैं । वे गरीबों का शोषण करते हैं । इसलिए समाज में भ्रष्टाचार फैलने लगता है । उस स्थिति पर माचवे की प्रतिक्रिया है -

"आदमी के हैं बनाये राजतंत्र, विधान ;
यदि न जन- जन का हुआ हित, मुक्ति का क्या अर्थ ?
यज्ञ जिस पर्जन्य के हित, जो उगाये धान ;
वह स्वयम् यदि अन्न स्वाहा कर चले तो व्यर्थ ।"[3]

---

1. प्रभाकर माचवे - "तेल की पकौडियाँ" - संस्करण-1962 - पृ. 54 - "नये पहरेदार" शीर्षक कविता से ।
2. डा कमल किशोर गोयनका - "प्रभाकर माचवे प्रतिनिधि रचनाएँ" संस्करण-1984 - पृ. 27 "मुक्ति दिवस" शीर्षक कविता से ।
3. प्रभाकर माचवे - "अनुक्षण" संस्करण-1957-पृ. 69- "धान और विधान" शीर्षक कविता से ।

"बाज़ारू सभ्यता" शीर्षक से माचवे ने एक कविता लिखी है । जनतंत्र के नाम पर होने वाले चुनाव पर गहरा आघात इस में कवि ने किया है । चुनाव असल में हमारी जनतांत्रिक आकांक्षा का कार्य कलाप है । लेकिन उसे धनाश्रित बनाते हुए उसे अपनी स्वार्थ पूर्ति के हेतु राजनीतिज्ञों ने खोखला कर दिया है । यही नहीं उसे सभी प्रकार के मूल्य विघटन के मंच में परिणत करके सामन्तवाद का नया आविष्कार किया है । सत्ता, प्रभुत्व और धन के गठबन्धनें राजनीति के अर्थ को बदल दिया है । सत्ता की राजनीति सदैव प्रभुत्व की ओर अग्रसर होती है और उसका मार्ग इतना टेढा है कि उसमें सामान्य जीवन का औसत आकांक्षाओं के लिए कोई स्थान नहीं है ।

आज हमारा राजनीतिक वातावरण इतना प्रदूषित है कि व्यक्ति की योग्यता का कोई मूल्य नहीं है । चाटुकारिता ही योग्यता का प्रमाण है । राजनीति के संदर्भ में नैतिकता और अनैतिकता का भेद करना मुश्किल हो गया है । राजनीतिक विडंबना की इस स्थिति को राजनीतिक पतन कहना समीचीन नहीं है । उसे हमारा नैतिक पतन मानना चाहिए । माचवे की कविता में लगातार इस नैतिक पतन के प्रति आशंका व्यक्त हुई है ।

<u>सांस्कृतिक विडम्बना के चित्र :-</u>

भारतीय संस्कृति के अच्छे अध्येता होने के कारण माचवे की कविताओं में सांस्कृतिक मूल्यों के ह्रास का पर्याप्त संकेत है । मूल्यों के संबंध में माचवे की राय यों है - "मैं समझता हूँ कि पहला मूल्य जो मंगलकारी मूल्य

हमारे भारत का है, वह अहिंसा का मूल्य है । उसको मैं बहुत महत्व दूँगा ।"[1]

जिस समाज का नैतिक पतन होता है, उस में संस्कृति का विकास नहीं हो सकता । सांस्कृतिक मूल्य वहाँ बहिरंग विचार मात्र रह जाते हैं, इसे सांस्कृतिक विघटन मानना चाहिए । यह हमारी सब से बडी विडम्बना है । माचवे का कहना है कि जिस संस्कृति में अनेक विकृतियाँ हैं, उस संस्कृति को त्यागने में ही मनुष्य का हित है । उसको जबरदस्ती ओढने पर व्यक्ति पतन के गर्त में गिर सकता है -

"फटी थेंगरों की यह संस्कृति की जो गठरी,
अब न सुधरने की यह, बिगड चुकी बहुत अरी,
फूट गई जुड न सकेगी मटकी, यह गगरी !"[2]

सभ्य एवं संस्कृत कहलाने वाले मनुष्य ऐसा कर्म करते हैं , जो पशु को भी लज्जित कर डालते हैं । यह कार्य अतीव विडम्बनापूर्ण है । इस विडम्बनात्मक स्थिति का पर्दाफाश करते हुए माचवे का कथन है -

---

1. रत्ना लाहिड़ी - "मूल्य संस्कृति, साहित्य और समय" {साक्षात्कार} संस्करण-1987 - पृ. 65 -"डा. प्रभाकर माचवे" शीर्षक से ।
2. प्रभाकर माचवे "अनुक्षण" - संस्करण-1957 - पृ. 88 - "संक्रमण" शीर्षक कविता से ।

"वह जंगलीपन सिमिट चला है इस मनुष्य में आकर अब सब,
यह मनुष्य खूँखार बन गया हिंस्त्र श्वापदों से भी बढ़कर,
नागा मुंडों का शिकार अब भूल गये हैं इसके सम्मुख,
सिंह लजायेंगे, वन-शूकर भी कहलायेंगे अति संस्कृत,
इस मनुष्य ने ऐसा गज़ब किया, पशु को कर डाला लज्जित ।"[1]

माचवे की अन्य कविताओं में भी मनुष्य की स्वार्थता की विडम्बनापूर्ण स्थिति के संकेत मिलते हैं । कुछ लोगों के स्वार्थवश एक देश भी हिल सकता है । धीरे-धीरे उस राष्ट्र रूपी वृक्ष का नाश भी संभव है -

"राष्ट्र वृक्ष-सा जिस पर बसते नाना स्वर के पाखी,
यहाँ न कोई नियम कि सब का एक रंग या मत हो ।
यहाँ कई रहते हैं, बना गिरोह, कई एकाकी
कई बिचारे जाल में फँसे, निरे स्वार्थ में रत हो !
झंझा से यह राष्ट्र जड़ों से हिल उठता है सहसा,
सूखे पत्ते झर जाते हैं, पदरज-चढ़ती शिरसा ।"[2]

मानव समाज में मनुष्य-मनुष्य में भेद हैं, कभी जाति के नाम पर, कभी वर्ण के नाम पर, कभी धन के नाम पर । कोई भी मनुष्य यह दावा

---

1. प्रभाकर माचवे - "स्वप्न भंग" - संस्करण-1957 - पृ. 54 - "बाघंबर" शीर्षक कविता से ।
2. डा. कमल किशोर गोयनका (संपादक) - "प्रभाकर माचवे प्रतिनिधि रचनाएँ" - संस्करण-1984 - पृ. 27 - "झंझा और वृक्ष" शीर्षक कविता से ।

नहीं कर सकता कि उसने पूर्ण सिद्धि प्राप्त कर ली है । हर मनुष्य की अपनी-अपनी कमज़ोरियाँ भी हैं । फिर भी मनुष्य-मनुष्य हैं, मनुष्यों में वर्ग बनाना ठीक नहीं है । लेकिन समाज में यही होता रहता है ।

"कौन सभ्य है, और कौन है बर्बर ? किस के पास तुला है ?
किसका दावा पूर्ण सिद्धि का, किसके लिए न स्वर्ग खुला है ?
मानव - मानव में विभेद क्यों, स्वर्ग-नरक में वर्गान्तर क्यों ?
प्रभु ने या जड़ प्रकृति ने क्या भिन्न बनाये अभ्यंतर यों ?
"नहीं ! मनुज की ही करनी है, मनुज - मनुज को सोख रहा है ।
प्रभु इस शैतानी लीला को चुपके बैठा जोख रहा है,
या कह लो-चेतन इस जड़ की अतिव्याप्ति को निरख रहा है ।
दुनिया का लहू अपनी ही धुन पर यह-सां थिरक रहा है !"[1]

माचवे ने "काज़ीरंगा" नामक एक सॉनेट के माध्यम से सांस्कृतिक विडम्बना का सार्थक चित्र प्रस्तुत किया है । कविता का यह सवाल झकझोरने वाला है -

"कौन यहाँ जंगली है ? हम जो सहस्त्रकों के लिए जिलाते,

---

1. "अनुक्षण" - संस्करण-1957 - पृ. 42 - "मार्क्स और गांधी" शीर्षक कविता से ।

या कि आप जो अणु-बम की निर्माण - दौड में हो मदमाते,
यहाँ शिकार मना है, वर्ना हिंसक मानव से कब बचते ?
गोली नहीं जानती भाषा, वर्ण, जाति के भेदक रिश्ते ।"[1]

आज का मनुष्य जंगली है, जो अणु-बम की निर्माण दौड में अपने-आप को भुला हुआ है । यंत्र-तंत्र की अन्धी दौड ने मात्र मनुष्य को अपना शत्रु नहीं बनाया है, बल्कि हमारी सांस्कृतिक मेधा शक्ति का हनन किया है ।

प्रभाकर माचवे का "विश्वकर्मा" नामक खण्डकाव्य सांस्कृतिक विडम्बना का गहराता मिथक प्रस्तुत करता है । प्रकृति से मुँह मोडकर विकृति को ही संस्कृति बतानेवाले तथाकथित विज्ञान और तन्त्रज्ञान के अंध प्रेमी मनुष्य को मशीन बना देते हैं । इस बात को कवि ने व्यक्त किया है । विश्वकर्मा मनु को यंत्रों-तंत्रों में जितना ही अधिक बाँधने का प्रयास करता है, मनु के भीतर उतनी ही यंत्र-तंत्र विरोधी, भौतिक सुख-सुविधाओं से मुक्ति एवं स्वतंत्रता की भूख जगाती है -

"यंत्र-तंत्र यों सुन-सुनकर वह ऊब गया था मन मारा,
सोच रहा था भौतिक सुख सुविधा में कब तक बंधा रहूँ ?
मैं "स्व-तंत्र" बनना चाहूँगा, बहुत हुई बंधन-कारा,

---

1. प्रभाकर माचवे - "तेल की पकौडियाँ" - संस्करण-1962 - पृ. 15
"काज़ीरंगा" शीर्षक कविता से ।

अपनी गति को भूल, दूसरों की इच्छा पर सधा रहूँ ?"[1]

इतना ही नहीं मनु का मन यदि एक दिशा की ओर बढ़ता है तो शरीर दूसरी दिशा की ओर । मन और तन का यह विभाजन कितना त्रासद होता है -

"ऐसा यह द्वन्द्व हुआ
अपने में ही विभक्त,
शक्तिमान मानव क्यों
आज इतना अशक्त ?"[2]

द्वन्द्व-ग्रस्तता की यह स्थिति मानव को एकाकीपन और आत्म निर्वासन की ओर ले जाता है । वस्तुतः यही हमारी बहुत बडी विडम्बना है । मनुष्य क्यों मनुष्य निर्मित प्रश्नों के आगे अशक्त है ?

आधुनिक युग की यह एक अन्य विडम्बनापूर्ण स्थिति है कि मनुष्य यंत्रों पर आश्रित हो गया है । यंत्र मनुष्य का मालिक बन गया है । मनुष्य अपने हाथ पैरों के गुण भी भूल जाते हैं । सब प्रकार के काम के लिए दूसरों पर आश्रित रहना पडता है ।

---

1. प्रभाकर माचवे - "विश्व कर्मा" - संस्करण-1988 - पृ. 50 - "अपराह्न" शीर्षक से ।
2. प्रभाकर माचवे - "विश्व कर्मा" - संस्करण-1988 - पृ. 61

"यंत्र ही हैं सब कराते,
यंत्रवत् वह बना बालक,
हाथ-पैरों के सभी गुण
भुला, सीखा परालम्बन्
यंत्र उसके बने मालिक ।"[1]

आधुनिक युग की यह त्रासदी है कि यंत्रों से तो उत्पादन बढ सकता है, मनुष्य नये-नये शास्त्र बना सकते हैं, पूँजी जमा कर सकते हैं, फिर भी मनुष्य को सुख और शांति नहीं मिल सकता है । भौतिक सुख सुविधाओं के पीछे दौडने के कारण आज के मनुष्य को सुख और शांति नहीं मिल रहा है । इस सत्य को माचवे ने पहचाना है -

"यंत्र से बढा उत्पादन, धन-साधन मनु ने जमा किये,
इतनी पूँजी, इतनी सत्ता ! फिर शास्त्र बनाये नये-नये,
उस संचय को संरक्षित करने कई बनाये नये ढंग,
मनु बढा और उसने ठानी जो महाभारती नई जंग,"
भीतर से मनु खाली-खाली
गोली - तोपें, बम, पामाली
इतने सब संहार किये
फिर भी सुख निस्सार हुए
मिली नहीं वह शांति निराली !"[2]

---

1. प्रभाकर माचवे -"विश्व कर्मा"- संस्करण-1988- पृ. 53 - "अपराह्न" शीर्षक से ।
2. प्रभाकर माचवे-"विश्व कर्मा"-संस्करण-1988 -पृ. 52 - "अपराह्न" शीर्षक से ।

तकनीकी सभ्यता की निरंकुशता का अनावरण "विश्व कर्म" में हुआ है । सांस्कृतिक विघटन के परिदृश्य को माचवे ने इस काव्य कृति में प्रस्तुत किया है । इसने मनुष्य को किस मील तक शून्य अवस्था में छोड दिया है, यह दिखाने का कार्य माचवे ने किया है ।

धार्मिक विडम्बना का परिदृश्य :-

भारत वर्ष धर्म प्रधान देश है । अनेक प्रकार के धर्म एवं अनुष्ठान पद्धतियाँ इस देश में प्रचलित हैं । धर्म को धार्मिकता से अलग करने के कारण उसके बहिरंग अनुष्ठानिक रूप प्रमुख हो गए हैं । पाखण्ड इसलिए पनपने लगा है । धर्म की जड़ें मृत प्राय हो गयी । देश की एकता छिन्न-भिन्न होने लगी । धर्म के क्षेत्र में मूल्यों के विघटन होने के कारण धर्म के नाम पर आर्थिक शोषण, व्यभिचार आदि का बोलबाला हो गया है । नैतिक पतन ने अनेक अव्यवस्थाओं को जन्म दिया है । माचवे ने धार्मिक क्षेत्र की अनेक विडम्बनात्मक स्थितियों का चित्रण अपनी कविताओं में किया है -

"आज धर्म और कर्म सभी हैं अस्थिर, कौन किसे सुन पाते ?
सब अपनी-अपनी गाते हैं ; कोलाहल है, तुमुल आते-स्वर,
कौन यहाँ पर सहाय होगा ? जब हरेक के विभिन्न ईश्वर ।
जो कि एकता, परम अभेद शांति का माना गया धाम था,
उसी ईश्वर को लेकर इतना विवाद, भेद, अशांति, वामता !"[1]

---

1. प्रभाकर माचवे -"स्वप्न भंग" - संस्करण-1957 - पृ.86 - "संक्रांति - दिन" शीर्षक कविता से ।

आज के विवेक शून्य धर्मान्धता पर, माचवे ने दुःख प्रकट किया है । विडम्बनात्मक स्थिति यह है कि आज सभी धर्म खोखले बन गये हैं और ये सड़ते जा रहे हैं । ऐसी दुःखपूर्ण स्थिति का चित्रण करते हुए माचवे ने कहा -

"धर्म बन गये रक्षक इन पापी काले बाज़ारवालों के,
मन्दिर में जप-जाप, अहिंसा - शोषण में शर्मीली जोंकें ।
ऐसा यह मज़हब जो अन्दर से सड़-गल कर हुआ खोखला,
वह डूब गया, और बचा क्या ? वह बेअसर, फ़रेब, दोगला ।"[1]

भारतीय समाज दान-दक्षिणा जैसे पुण्य कर्म पर विश्वास करता है । लेकिन समाज में ऐसी स्थिति बनी है कि यह दान-दक्षिणा समाज में वर्गभेद के रक्षक बनकर आयी है । ऐसी विडम्बनात्मक स्थिति पर दुःख प्रकट करते हुए माचवे ने कहा है -

"जब तक दान-दक्षिणा और "दशांश" प्राप्ति में नियमितपन,
तब तक वर्गभेद के पोषक, लेकर ईसा-कृष्ण-मुहम्मद,
खूब करेंगे अपनी आमद, टाँक-टाँक कर स्वार्थ-अहम-मंद ।"[2]

---

1. प्रभाकर माचवे - "अनुक्षण" -संस्करण-1957 - पृ.86 - "लामज़हब" शीर्षक कविता से ।
2. प्रभाकर माचवे - "अनुक्षण" - संस्करण-1957 - पृ.86 - "लामज़हब" शीर्षक कविता से ।

इन कविताओं से स्पष्ट है कि माचवे धर्म की निजता और उसकी मनुष्योन्मुखी-चेतना पर विश्वास करने वाले हैं । परन्तु जब समाज ने इसी धर्म को अपने लाभ-लोभ का साधन बना दिया है तो वह धर्म नहीं रहता । माचवे ने उसे ही धर्म की अधर्मी दृष्टि कही है । फंदा तोड़ना वे अपना लक्ष्य भी समझते हैं ।

जिन विसंगत स्थितियों की सूचनाएँ माचवे की कविता में उपलब्ध हैं चाहे वे सामाजिक हो, राजनीतिक हो या धार्मिक । उनमें समाज के निचले तबके के लोगों के प्रति सहानुभूति ही अधिक है । उनमें निरी शाब्दिक सहानुभूति ही नहीं, बल्कि एक जनवादी सहभागी दृष्टि भी मिलती है जो माचवे की कविता को आज भी प्रासंगिक बनाती है ।

अध्याय चार

माचवे की व्यंग्य-कविताओं का विश्लेषण

व्यंग्य अनचाही स्थितियों से उत्पन्न मानवीय दृष्टि :-

माचवे की कविता की व्यंग्यात्मक प्रवृत्तियों पर विश्लेषण प्रस्तुत करने के पहले व्यंग्य के बारे में सामान्य भूमिका बांधना अनिवार्य है ।

कौतुक-प्रियता मनुष्य की सहज प्रवृत्ति है । वह जहाँ कहीं अटपटा अनुभव करता है, उसे कौतुक होता है और उस पर वह टिप्पणी करता है । भाषा की व्यंजना-प्रधानता का प्रयोग वह करता है । अभिधा से व्यंजना तक की उसकी अभिव्यक्ति व्यक्तिगत होते हुए भी, उसमें उसका सामाजिक अभिप्राय मुखर होता है तथा जीवन के प्रति उसकी गतिशील दृष्टि भी । व्यंग्य के उद्गम का यह एक परिपार्श्व है । हम व्यंग्य करते हैं उस पर जो हमारे सामने हैं और हम जिसे पसन्द नहीं करते । "व्यंग्य समसामयिक जीवन की अनचाही स्थितियों से जन्म लेता है ।"[1] यह कथन इसलिए सही है कि व्यंग्य तटस्थ दृष्टि का परिणाम है । उस में अतिरेकता नहीं है, अनचाही स्थितियाँ अटपटेपन से युक्त होती है । सचेत व्यक्ति की कौतुक पर तटस्थ प्रतिक्रिया सदा होती है । व्यंग्य का वही स्रोत है ।

व्यंग्य की सोद्देश्यता, व्यापकता, सामाजिकता का संकेत करते हुए आलोचकों ने व्यंग्य को परिभाषित किया है । हरिशंकर परसाई के

---

1. "आजकल" - अप्रैल 1989, अंक-12, पृ. 12 - डा. सिद्धकुमार - "व्यंग्यकार की दृष्टि" शीर्षक लेख से ।

अनुसार - "व्यंग्य जीवन में विसंगतियों-मिथ्याचारों और पाखडों का पर्दाफाश करता है।"[1] आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी की धारणा है कि - "व्यंग्य वह है जहाँ कहने वाला अधरोष्ठ में हँस रहा हो और सुननेवाला तिलमिला उठा हो और फिर भी कहनेवाले को जवाब देना अपने को और भी उपहासास्पद बना लेना हो जाता हो।"[2] डा. सिद्धकुमार के अनुसार -"व्यंग्य आदर्श और यथार्थ की टकराहट से फूटी हुई चिनगारी हैं। आज यह चिनगारी बड़े प्रखर रूप में हिन्दी साहित्य में दीख रहा हैं।"[3] डा. बरसाने लाल चतुर्वेदी का कहना है - "आलम्बन के प्रति तिरस्कार, उपेक्षा या भर्त्सना की भावना लेकर बढ़नेवाला हास्य व्यंग्य कहलाता है।"[4]

व्यंग्य का क्षेत्र संपूर्ण जीवन है और जीवन की किसी भी विसंगति के विरुद्ध इसका प्रयोग हो सकता है। व्यंग्य मानव तथा जगत् की मूर्खताओं तथा अनाचारों को प्रकाश में लाकर उसके उपहास अथवा घृणात्मक पक्ष पर आलोचनात्मक प्रहार करने में समर्थ एक साहित्यिक औजार है। वस्तुतः

---

1. हरिशंकर परसाई - "सदाचार का ताबीज़" - पृ. 8 - संस्करण-1967.
2. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी - "कबीर" - पृ. 143 - तीसरा संस्करण-1985.
3. "आजकल" - अप्रैल-1989, अंक-12, पृ. 21 - "व्यंग्यकार की दृष्टि" शीर्षक लेख से।
4. डा. बरसाने लाल चतुर्वेदी -"हिन्दी साहित्य में हास्य रस" - पृ. 42

व्यंग्य एक ऐसी साहित्यिक दृष्टि या माध्यम है, जिसमें व्यक्ति और समाज में व्याप्त दुर्बलताओं और विसंगतियों पर सुधार की कामना से कलात्मक प्रहार करते हुए पाठक एवं दर्शक पर एक खास तरह की बेचैनी का बोध पैदा किया जाता है ।

प्राचीन विद्वानों ने व्यंग्य को हास्य के ही एक प्रभेद विशेष के रूप में स्वीकार किया है । पर आधुनिक परिभाषायें व्यंग्य को हास्य का भेद नहीं मानतीं । हास्य और व्यंग्य परस्पर पूरक होते हुए भी आपाततः पृथक है । हास्य जहाँ स्थूल और सतही होता है, वहाँ व्यंग्य अतिशय सूक्ष्म और दुर्बोध । व्यंग्य में एक तीखापन और कटुता अन्तर्निहित रहती है, जो उसे हास्य से पृथक कर देती है । व्यंग्य का मूल उद्देश्य व्यक्ति और समाज का सुधार प्रखर वैचारिक स्तर पर करना है । अतः व्यंग्य एक सशक्त साहित्यिक दृष्टि है । व्यंग्य के विभिन्न प्रकारों पर संक्षेप में विचार करने की आवश्यकता है ।

पाश्चात्य विद्वानों ने व्यंग्य के विभिन्न प्रभेद दिए हैं । भारतीय भाषाओं में व्यंग्य के अलावा हास्य की-चर्चा है । "हास्य का उद्देश्य विशुद्ध मनोरंजन करना होता है, जब कि व्यंग्य का उद्देश्य सुधार करना होता है । हास्य में भाव तत्व प्रमुख होता है, व्यंग्य में बुद्धि तत्व ।"[1]

---

1. डा. बरसाने लाल चतुर्वेदी - "आधुनिक हिन्दी काव्य में व्यंग्य" - पृ. 12 संस्करण-1973 - "हास्य और व्यंग्य का अन्तर" शीर्षक लेख से ।

व्यंग्यकार हर प्रकार की विकृति को गंभीरता से देखता है, निर्ममता से उसका पर्दाफाश करता है एवं समाज से अपेक्षा करता है कि उस व्यक्ति की भर्त्सना करें, जब कि हास्यकार उस विकृति का वर्णन कर संतोष कर लेता है। पाश्चात्य दृष्टि के अनुसार व्यंग्य के विभिन्न प्रभेदों का संक्षिप्त परिचय वांछित है।

विट :-

"चमत्कारपूर्ण उक्ति को विट कहते हैं।"[1] विट के बारे में कहा गया है -"विट स्वच्छ और आकस्मिक प्रहार के साथ घाव पैदा करता है। वाग्वैदग्ध्यकार को मन के शिष्टाचार, शीघ्रता और निपुणता के साथ इसका प्रयोग करना चाहिए। पाठकों में भाव-विन्यास के द्वारा, हास्यास्पद विस्मय ही नहीं, बल्कि आघात भी उत्पन्न करना चाहिए। फिर भी उस कथन में सत्य की पहचान होती है, जो कि लोगों को स्वीकार्य हो।"[2]

---

1. Longman - "Active study Dictionary of English" page No.692. "Wit - the ability to say things which both clear and amusing".

2. John D Jump (Editor) - Satire (The Critical idiom) Methuen & Co.Ltd, 1970.
" Wit wounds with a neat and unexpected stroke: its exponent needs, mentally, all the grace, speed and dexterity of the fencer. The reader is surprised, comically shocked, by the unexpected collecation of ideas, yet though unexpected, he recongnizes in them a, certain truth or at any rate sufficient truth for the wit to be acceptable."

व्यंग्य में पैनापन लाने के लिए व्यंग्यकार विट का प्रयोग करता है ।

ह्यूमर :-

व्यंग्य की चर्चा करनेवाले प्राय: सभी आलोचकों ने व्यंग्य का विवेचन हास्य के संदर्भ में किया है । "विट और ह्यूमर साहित्य के ऐसे तत्व हैं, जो दर्शक या पाठकों में मनबहलाव और प्रसन्नता उत्पन्न करते हैं । आलोचनात्मक साहित्य में विट और ह्यूमर के भिन्न-भिन्न अर्थ लगाये जाते हैं ।"[1] पाश्चात्य आचार्यों से प्रभावित होकर, हिन्दी आलोचकों ने भी व्यंग्य में हास्य की अनिवार्यता को मान लिया है । दरअसल व्यंग्य और हास्य के पार्थक्य को सूचित करनेवाली रेखाएँ बहुत ही सूक्ष्म है । क्योंकि ऐसा व्यंग्य बड़ी मुश्किल से ही मिलेगा, जिस में हास्य का रंग कुछ भी न हो, और हास्य भी न मिलेगा जिसमें व्यंग्य की कुछ छींटें नहीं हो । लेकिन उद्देश्य, धर्म, प्रविधि, दृष्टिकोण आदि की दृष्टि से हास्य और व्यंग्य में अन्तर किया जा सकता है । हास्य का उद्देश्य मुख्य रूप से मनोरंजन होता है और उसमें मनोरंजन-वृत्ति के बजाय कुछ भी नहीं है । व्यंग्य का मुख्य लक्ष्य आक्षेप द्वारा दोष-सुधार एवं परिवर्तन है । हास्य का लक्ष्य हँसाना है, जब कि व्यंग्य सामाजिक विसंगतियों का पर्दाफाश करके, उन विसंगतियों के प्रति हमारे मन में

---

1. M.H.Abram's-"A Glossary of literary terms" page No.111 " Wit, Humour- any element in literature that is designed to amuse or to excite mirth in the reader or audience. Wit and humour,how ever had a variety of other meanings in the earlier literary criticism".

एक विपक्षी भाव पैदा करता है । इस प्रकार प्रयोजनशीलता भी व्यंग्य को हास्य से अलग कर देती है । कल्पना और यथार्थ की दृष्टि से भी हास्य और व्यंग्य में अन्तर है । हास्य की रचित कल्पित घटनाओं और स्थितियों को लेकर होती हैं, जब कि व्यंग्य की अनिवार्य शर्त उसकी यथार्थता है ।

सटायर :-

हिन्दी में "व्यंग्य" शब्द का प्रयोग अंग्रेज़ी के "सटायर" के पर्यायवाची शब्द के रूप में होता है । व्यवहारिक जीवन में हँसी-मज़ाक के रूप में और संस्कृत काव्य शास्त्र में व्यंजना शक्ति के द्वारा उत्पन्न विशिष्ट अर्थ के रूप में "व्यंग्य" शब्द प्रयुक्त होता था । अंग्रेज़ी के शब्द "सटायर" के अर्थ में हिन्दी में व्यंग्य, व्यंग्य-विनोद, हास्य-व्यंग्य, विकृति-उपहास आदि कई शब्द प्रचलित हैं । "व्यंग्य इस अन्तर के प्रति सचेत है कि समाज में क्या होना चाहिए था और क्या हो रहा है ।"[1] व्यंग्य के प्रकार के बारे में कहा गया है - "जब हम व्यंग्य के प्रकार की ओर देखते हैं तो विषय के अनुसार इनके कई रूप मिलते हैं ।"[2] व्यंग्यकार के लक्ष्य के बारे में कहा जाता है - "व्यंग्यकार

---

1. Satire (The critical idiom),1970, page No.3.
"Satire is always acutely conscious of the difference between what things are and what they ought to be".

2. Satire (The Critical idiom) 1970,page No.22.
"When we turn to the modes of satire, we find that these are as various as its - subjects".

के साथ जीना उतना आसान नहीं है । वह अपने सहजीवियों की अपेक्षा समाज की मूर्खताओं और बुराईयों के प्रति अधिक सतर्क है और इनकी ओर इशारा करने से वह अपने आप को रोक नहीं सकता । व्यंग्यकार अल्पसंख्यक होते हैं, उन्हें हम बहिष्कृत घोषित नहीं कर सकते । उसकी सफलता के लिए समाज को कम से कम, उसके आदर्शों के प्रति दिखावटी प्रेम दिखाना चाहिए ।"[1] "व्यंग्यकार को विलक्षण रूप से संवेदनशील, भ्रांत, उखडे हुए, पूर्वाग्रहयुक्त व्यक्तित्ववाला होना है, अपनी सफलता के प्रति आशावादी दृष्टि भी होनी चाहिए । उसे संतुलित, व्यक्तिवादी भी होना है । यदि संसार की सम्मति हो तो अपनी मौजूदा परिस्थिति को सुसंस्कृत बनाने में सक्षम है ।"[2] व्यंग्य के दायित्व के बारे में

---

1. Satire (The critical idiom), 1970, page No.3. "Aims and Attitudes".

"The satirist is not an easy man to live with. He is more than usually conscious of the follies and vices of his fellows, and he cannot stop himself from showing that. The satrist is often minority figure; he, cannot, how ever, afford to be declared out cast. For him to be successful his society should atleast pay lip-service, to the ideals he upholds".

2. Satire (The critical idiom), 1970, Page No.74.

"The satirist may be abnormally sensitive, disillusioned, alienated, prejudiced, but to have the best hope of success, he must appear detached, well balanced, judicious and, did bu the world allow it, capable of being better natured than he seems".

कहा है - "व्यंग्य का हमेशा एक शिकार होता है, जिसकी आलोचना की जाती है । व्यंग्यकार का पहला दायित्व यह है कि वह अपनी करनी की मूल्यवत्ता और आवश्यकता के बारे में लोगों को विश्वास दिलायें ।"[1]

आइरनी :-

"आइरनी" व्यंग्य की एक सही स्थिति है । प्रस्तुत की विपरीत व्यंजना "आइरनी" की विशेषता है । इसमें रचयिता की आवाज़ मुखौटे के अन्दर से ही सुनाई देती है और घोर अतिशयोक्ति का प्रयोग किया जाता है । यह, सत्य पर परदा डालकर कहने की प्रणाली है । अलक्सेन्डर बेन ने कहा है -"आइरनी में वक्ता के वास्तविक आशय को दर्शाने के लिए स्वर और शैली को कुछ ऐसा घुमा-फिराकर दिया जाता है कि उसका अर्थ कथ्य के पूर्णतः विपरीत हो जाता है ।"[2] इस परिभाषा का समर्थन कॉलिन्स शब्दकोश में भी मिलता है -"व्यंग्योक्ति {आइरनी} हास्य का एक रूप है, जिस में

---

1. Satire(The critical idiom), page No.73.
"Satire always has a victim, it always criticises. His first task is to convince of the worth even more, of the necessity of what he is doing."
2. Alexander Ben - "Usage and Abusage", Page No.160.
"Irony consists in stating the contrary of is meant there being something in the tone or the manner to show the speaker's real drift".

अप्रत्यक्ष रूप में हम कुछ बोलते हैं, जिसे लोग समझते है कि हम मज़ाक कर रहे हैं या जो सोचते हैं उसके विपरीत बोलते हैं।"[1] "व्यंग्योक्ति गणनीय रूप से सांस्कृतिक एवं साहित्यिक महत्व का दृश्यप्रपंच है। आयरनी का अर्थ काफी व्यापक है, जो किसी एक संस्कृति में प्रयुक्त शब्दों, विचारों और व्यवहारों से प्रकट किया जा सके।"[2]

व्यंग्य में आयरनी के संबंध का उल्लेख करते हुए डा.शेरजंग गर्ग ने यों लिखा है - "व्याजोक्ति (आइरनी) व्यंग्य के संप्रेषण में निश्चय ही

---

1. "Collins Co-build English Language Dictionary" Page No.772.
"Irony is a form of humour or an indirect way of conveying meaning in which you say something in such way that people realize that you are joking or that you really mean the opposite of what you say".

2. "Irony" (The critical idiom), PageNo. 1.
"It will be part of our purpose to argue that irony is a phenomenanon of very considerable cultural and literary importance. The question of the importance of irony is obviously not something that can be settled by determining to what extent it is or has been manifested in the various actions, utterances, throughts and products of all cultures and civilizations".

योगदान करती है तथा यदि व्याजोक्ति में सहृदयता, संवेदनशीलता और सत्य जैसे व्यंग्य गुण मौजूद है तो वह व्यंग्य में निखार पैदा कर सकती है ।[1] अंग्रेज़ी के व्यंग्य के ये प्रभेद भी घाव पैदा करते हैं, क्योंकि व्यंग्य का उद्देश्य ही घाव पैदा करना है ।[2] दर असल ह्यूमर, आयरनी, विट आदि व्यंग्य को उभारने वाले माध्यम है । ये व्यंग्य को पैना और तीव्र, एवं प्रभावशाली बनाने वाले अस्त्र हैं । व्यंग्य और इन सब में परस्पर अन्तर होते हुए भी, इन में से किसी के भी समावेश से व्यंग्य उद्दीप्त हो जाता है ।

व्यंग्य का प्रभाव :-

व्यंग्य का मूल उद्देश्य व्यक्ति और समाज का सुधार करना है । व्यंग्य समाज धर्मी होता है । व्यंग्य का क्षेत्र संपूर्ण जीवन है । व्यंग्य व्यक्ति और समाज की दुर्बलता, विसंगति और मिथ्याचार, अन्याय, असामंजस्य आदि पर प्रहार करता है । "प्रत्यक्षतः व्यंग्यकार व्यक्तियों को अपने व्यंग्य का लक्ष्य ज़रूर बनाता है, पर मूलतः वह उनके माध्यम से अवांछित स्थितियों और प्रवृत्तियों पर चोट करता है, जन समाज को संत्रस्त करनेवाली व्यवस्था पर आघात करता है । x x x वह व्यक्तियों पर चोट नहीं करता,

---

1. डा. शेरजंग गर्ग - "स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य" - पृ. 36, प्रथम संस्करण - 1973.

2. Satire (The Critical idiom), page No.66. "Wit, ridicule, Irony, Sarcasm, Cynicism, the Sardonic and invective all these hurt, because Satire aims to hurt".

व्यवस्था की विकृतियों पर चोट करता है ।"[1]

स्वातंत्र्योत्तर काल में भारतीय समाज में जिस अनुपात में अर्थ और अधिकार-लिप्सा बढ़ी है, उसके अनुपात में कर्तव्य और दायित्व की भावना घटी है । इसके फलस्वरूप भारतीय जीवन का प्रत्येक क्षेत्र विभिन्न प्रकार की अटपटी स्थितियों और विसंगतियों से घिर गया है । साहित्यकार अपने समाज की यातनाओं का भोक्ता है । अधिक संवेदनशील होने के कारण वह अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है । साहित्यकार की यही प्रतिक्रिया व्यंग्य के रूप में प्रकट होता है । इस प्रकार समकालीन जीवन की विडम्बनाओं एवं विद्रूपताओं पर अप्रत्यक्ष रूप से प्रहार करके, चेतना में हलचल पैदा करनेवाली एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है- व्यंग्य । डा. बरसाने लाल चतुर्वेदी का मत है - "व्यंग्यकार का उद्देश्य सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक विकृतियों का पर्दाफाश करना है । ढोंगी, पाखंडियों एवं भ्रष्टाचारियों के मुखौटों को समाज के सामने खोलकर रख देना है, व्यंग्यकार का प्रयोजन बस इतना ही है ।"[2]

---

1. "आजकल" - अप्रैल - 1989, अंक - 12, डा. सिद्धनाथ कुमार - "व्यंग्यकार की दृष्टि" शीर्षक लेख से ।
2. डा. बरसाने लाल चतुर्वेदी - "आधुनिक हिन्दी काव्य में व्यंग्य" - पृ. 19, संस्करण- 1973.

डा. बालेन्द्र शेखर तिवारी का कहना है कि "बावजूद इसके कि व्यंग्य का पंथ महकराल और तलवार की धार पर धावने के समान है । काव्य सृजन के स्तर पर अनुभव और अभिव्यक्ति के जो विविध रूप मिलते हैं उन में एक व्यंग्य भी है । वास्तविकता तो यह है कि विवेकशील व्यक्ति के सामने विसंगतियों से बोझिल परिवेश में व्यंग्य का सहारा लेने के सिवा और कोई विकल्प नहीं रह जाता ।"[1]

वस्तुतः व्यंग्य के पीछे मनुष्य है, मनुष्य का जीवन है । उसकी कमज़ोरियाँ और दुर्बलताएँ हैं । जो गुज़र गया, उस पर हम व्यंग्य नहीं करते और जो अभी नहीं आया है, वह भी हमारे व्यंग्य का विषय नहीं होता । हम व्यंग्य करते हैं उस पर, जो हमारे सामने है जो पसन्द के योग्य नहीं है । समाज में स्पष्टतः कई प्रकार के दुराचार तथा अपराध प्रचलित हैं । नैतिक चेतना तथा धर्म में विश्वास भी लोगों को अपराध करने से नहीं रोक पाते । इस अवस्था में व्यंग्य द्वारा उन अपराधों तथा दुराचारों का पर्दाफाश करते हुए मानव के सम्मुख उनके कुत्सित व्यापारों को सशक्त एवं यथार्थ रूप में रखा जाता है ।

हिन्दी कविता और व्यंग्य की परंपरा :-

हिन्दी कविता का इतिहास साक्षी है कि व्यंग्य की एक धारा कविता के भीतर और बाहर सदैव रही है । मनुष्य की सहज चेतना

---

1. संपादक - ओम गोस्वामी -"शीराज़ा" (द्विमासिक) दिसंबर-1987, अंक-5, डा. बालेन्द्र शेखर तिवारी -"व्यंग्य कविता का जोखिम" शीर्षक लेख से ।

के रूप में ही यह धारा कविता में दिखाई पडती है । अतः अपनी तत्कालीन स्थितियों पर प्रतिक्रियान्वित होनेवाले कवि की सहज प्रवृत्ति के रूप में व्यंग्य कविता में विद्यमान है । सामाजिक प्रतिक्रियाओं के रूप में नहीं, अपितु अन्यान्य प्रसंगों में भी व्यंग्य का उल्लेख मिलता है । विप्रलंभ श्रृंगार को द्योतित करते समय कभी नायिका-नायक पर या सखी, नायिका पर व्यंग्य करती है । लेकिन उसी व्यंग्य को कबीर सरीखे संत कवियों ने सामाजिक एवं धार्मिक रूढ़ियों के लिए प्रयुक्त किया और बहु आयामी बना दिया है । आगामी युग में भी व्यंग्य की चेतना बलवती ही रहीं । भारतेन्दु मंडली के लेखकों ने इसका पर्याप्त प्रयोग किया है ।

आधुनिक युग में कविता के क्षेत्र में प्रयोगवादी कविता में अधिकतर व्यंग्योक्तियाँ मिलती हैं । युगीन-संश्लिष्टताएँ विषय वस्तु बनने के कारण व्यंग्य की यह भरमार मिलती है । प्रभाकर माचवे उन्हीं में से एक हैं ।

माचवे और व्यंग्य :-

माचवे ने अपने व्यंग्य संबंधी मान्यता यों प्रकट की है - "हिन्दी हास्य और व्यंग्य का स्तर और भी अर्थपूर्ण, पैना, सचोट और ऐसा होना चाहिए कि समाज और व्यक्ति के मन की विकृतियों पर वह सीधे आघात कर सकें ।"[1] स्पष्ट है कि माचवे ने व्यंग्य का प्रयोग समाज या

---

1. प्रभाकर माचवे - तेल की पकौड़ियाँ - पृ.-4 - "स्वान्तः दुःखाय" से ।

व्यक्ति के मन की विकृतियों को दूर करने के लिए ही किया है । एक दूसरी जगह माचवे ने लिखा है - "व्यंग्य का अर्थ ही गुण से अधिक कुछ विचित्रता दर्शाना, बल्कि संकेत से उन बातों पर ज़ोर देना, जिन्हें अमूनन लोग देखते नहीं ।"[1] माचवे ने व्यंग्य को एक अस्त्र के रूप में स्वीकार कर लिया है । वे आगे लिखते हैं - "मेरे लिए व्यंग्य कोई पोज़ या अन्दाज़ या लटका या बौद्धिक व्यायाम नहीं - पर एक आवश्यक अस्त्र हैं ।"[2] वर्तमान युग की अनास्था, निराशा और असंतोष को व्यक्त करने के लिए माचवे ने व्यंग्य रूपी अस्त्र का सहारा लिया है । माचवे बौद्धिक चेतना के कवि हैं । देश की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्थाओं पर उनकी सतर्क दृष्टि रही है । सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक क्षेत्रों में फैली विसंगतियों की पोल खोलने या ढोंग को पर्दाफाश करने के लिए माचवे ने व्यंग्य का प्रयोग किया है । इस अर्थ में माचवे का व्यंग्य सोद्देश्यवादी है ।

माचवे के व्यंग्य की अपनी विशेषताएँ भी हैं । वे ऐसा प्रहार करते हैं कि पाठक का दिमाग झनझना उठता है । माचवे ने सर्वत्र व्यंग्य का आधार मनुष्य की प्रवृत्तियों को ही रखा है, क्योंकि मनुष्य की प्रवृत्तियाँ हमेशा बदलती रहती है या फिसलाती रहती है । माचवे के अनुसार

---

1. प्रभाकर माचवे - "शब्द-रेखा" - पृ. 7 - "कलम, कूँची, क्षणलेख" - शीर्षक से ।
2. प्रभाकर माचवे - तेल की पकौड़ियाँ - पृ. 5 - संस्करण-1962.

"मैं ने व्यंग्य का आधार सर्वत्र प्रवृत्ति रखी है, व्यक्ति नहीं ; व्यक्ति नाम तो केवल संकेत, इंगित, प्रतीक, ध्वनि के बतौर हैं ।"[1] इस मत के समर्थन में माचवे ने दूसरी जगह कहा है - "व्यंग्य, मैं ने किसी भी एक व्यक्ति को कभी सामने रखकर नहीं लिखे हैं - मेरे लिए व्यक्ति किसी न किसी अच्छाई-बुराई के प्रतिनिधि बनकर ही सामने आये हैं ।"[2] वस्तुत: माचवे जैसे कवि का उद्देश्य यही रहा है कि असामाजिक तत्वों पर अंकुश लगाकर, सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक विसंगतियों का पर्दाफाश करना, ढोंग रचनेवालों, पाखण्ड - करने वालों और भ्रष्टाचारियों की पोल खोलना होता है ।

माचवे का व्यंग्य की ओर रुझान :-

माचवे का व्यक्तित्व मनमौजी था । वे अत्यन्त सहृदय थे । लोगों के बारे में दुनिया भर के मज़ेदार संस्मरण सुनाते थे । डा. माचवे के इस विचित्र व्यक्तित्व के बारे में डा. कैलाशचन्द भाटिया का कथन है - "डा. माचवे का व्यक्तित्व निराला रहा । हल्की चुटकियाँ लेते हुए उनका अट्टहास कौन भुला सकता है । विनोद प्रियता और व्यंग्य की मुस्कान के साथ वह मिलनसार व स्पष्टवादी थे ।"[3] माचवे स्वयं हँसते थे और दूसरों

---

1. प्रभाकर माचवे - "विसंगति" - पृ. 5 - "भूमिका से" - संस्करण-1984
2. प्रभाकर माचवे - "तेल की पकौडियाँ" - पृ. 6 - संस्करण-1962
3. "परिषद-समाचार" - संयुक्तांक-1991, पृ. 25 - "डा. कैलाशचन्द भाटिया - "भारतीय साहित्य का विश्वकोष - डा. प्रभाकर माचवे" - शीर्षक लेख से ।

को अपनी तीक्ष्ण व्यंग्य के माध्यम से हँसाते भी थे । स्वभावतः कौतुक प्रिय होने से उनकी कविता में व्यंग्यात्मक - प्रवृत्ति का इतना धारदार उन्मेष मिलता है ।

माचवे की काव्येतर व्यंग्य रचनाएँ :-

अपने समकालीन रचनाकारों की अपेक्षा माचवे में विनोदपूर्ण व्यंग्य का स्वर सब से अधिक मुखर हैं । माचवे की व्यंग्य प्रवृत्ति केवल कविता तक सीमित नहीं है । माचवे की व्यंग्य रचनाएँ कई विधाओं में बिखरी पडी है । इन रचनाओं का संक्षिप्त परिचय अनिवार्य है ।

बेगुनी पकौडियाँ :-

माचवे का "तेल की पकौडियाँ" शीर्षक ग्रंथ - "प्यासी पकौडियाँ" और "बेगुनी पकौडियाँ" - दो भागों में विभाजित हैं । पहले भाग में कविताएँ संकलित हैं, दूसरे भाग में सात व्यंग्य रचनाएँ हैं । इन में "उलटफेर" शीर्षक से- एकांकी भी हैं । "यह आंग्लो-हिन्दिया", "यूनियन के दो बकरे", "ईश्वर या /और बादल", "जिन्दा लोकगीत-निर्माण फैक्टरी" अमरूद इलाहाबादी" आदि काफी प्रसिद्ध व्यंग्य रचनाएँ हैं । "यह आंग्लो-हिन्दिया" शीर्षक का मुख्य प्रतिपाद्य-विषय लोगों का मनमाने ढंग से भाषा का प्रयोग है । लोगों की ऐसी प्रवृत्ति पर माचवे का व्यंग्य है । लोग

मनमाने ढंग से भाषा के प्रयोग करने के बाद "यही समझते हैं कि अपने ढंग से सभी राष्ट्रभाषा का सचमुच बड़ा हित कर रहे हैं ।"[1]

"यूनियन के दो बकरे" शीर्षक लेख में लोगों की कट्टर-श्रद्धा भावना पर व्यंग्य है । मोटर-ड्राइवरों की यूनियन की ओर से दो बकरे, देवी माता को प्रसन्न करने के लिए-चढ़ाये जा रहे हैं । माचवे के शब्दों में "अब देवियाँ बदल गयी हैं । मगर हमारी कट्टर श्रद्धा भावना में कहाँ फर्क आया है । कभी गोमाता के लिए, कभी हिंदी रक्षा के लिए, कभी भाषा के नाम पर, कभी लिपि की वेदी पर "यूनियन के दो बकरे" चढ़ाये ही जा रहे हैं ।"[2] ईश्वर या /और बादल" शीर्षक लेख में सरकारी पैसे हड़पकर, रद्दी मैटीरियल लगाकर पुल, बाँध आदि बनाने की प्रवृत्ति पर व्यंग्य है ।

विसंगति :-

"विसंगति" माचवे के व्यंग्य-निबन्धों का संग्रह है । यह ग्रंथ 1984 में प्रकाशित हैं । इसकी भूमिका में माचवे ने लिखा है - "हमारा राष्ट्र ही ऐसी विसंगतियों से भरा है । एक ओर हम धर्मनिरपेक्षता का दावा

---

1. प्रभाकर माचवे - तेल की पकौड़ियाँ - पृ. 60 - "यह आंग्लो हिन्दिया" शीर्षक लेख से ।
2. प्रभाकर माचवे - तेल की पकौड़ियाँ - पृ. 63 - "यूनियन के दो बकरे" शीर्षक लेख से ।

करते हैं, हमारे राष्ट्रीय पुरुष और स्त्रियाँ, नेता आदि अनेक बाबाओं, स्वामियों, महर्षियों, आनन्दों, स्वयंभू भगवानों के आगे-पीछे दौडते रहते हैं । हम समाजवाद की बात करते हैं, और देश में पूँजीवाद की जडें जमती जाती हैं । हम शुद्ध आचरण और भ्रष्टाचार निर्मूलन के लंबे-चौडे भाषण सुनते हैं और प्रत्यक्ष जीवन में क्षण-क्षण पर इतने भ्रष्ट होते जाते हैं और उसे प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से प्रोत्साहन देते हैं ।"[1] स्पष्ट है कि सामाजिक परिवेश से उत्पन्न क्षोभ ने माचवे को व्यंग्य का माध्यम अपनाने को उकसाया है । माचवे की "विसंगति" पर अज्ञेय ने सम्मति यों दी है - "विसंगति पढ गया-खूब मज़ा लेकर । दो एक जगह लगा कि शब्दों से खेलवाड को अधिक खींचा गया है, और यह तो जानता हूँ कि सभी जानते हैं कि आजकल आते-जाते अज्ञेय को अकारण भी एक धौल जमा देने से समालोचना को अनुकूलता मिल जाती है - फिर भी पढने में मज़ा आया, इस सुख के लिए आपका ऋणी हूँ । कुछ निबन्ध तो बडी मार्मिक-चोट करनेवाले हैं ।"[2] विसंगति की भूमिका में माचवे ने लिखा है - "इस में पहले पृष्ठ से आखिरी पृष्ठ तक विसंगति ही विसंगति भरी मिलती है । फैशन के विरोध में लेख के साथ ही फैशन के प्रसाधनों के विज्ञापन, हिन्दी के पक्ष में लेख, "स्पीक रैपिडली इंगलिश" का बडा विज्ञापन, मानो हमारा हरकदम, हर साँस, हर शब्द इसी सारे अंतर-विरोध से भरा हुआ है, कूट-कूटकर । मैं ने उसी को कहा है -"विसंगति" ।"[3] विसंगति शीर्षक संग्रह में जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के "घुटना टेक निवाणि" से "वानप्रस्थ" तक 44 व्यंग्यपूर्ण निबंध संग्रहित हैं ।

---

1. प्रभाकर माचवे -"विसंगति"-पृ. 5, "भूमिका" से - संस्करण-1984.
2. "भाषा" दिसंबर 1991, पृ. 8 -"बहुभाषाविद् और साहित्यकार डा.प्रभाकर माचवे" शीर्षक लेख से ।
3. प्रभाकर माचवे - "विसंगति" - पृ. 6 -संस्करण-1984 "भूमिका" से ।

खरगोश के सींग :-

यह भी माचवे की बहुचर्चित व्यंग्य रचना है । सन् 1954 में इसका दूसरा संस्करण भी प्रकाशित हुआ था । इस की भूमिका में आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है - "माचवेजी में व्यंग्य करने की बडी शक्ति है । उनके व्यंग्य बहुत-चुभते हुए होते हैं । परन्तु सर्वत्र उन में एक प्रकार की अनासक्ति वर्त्तमान रहती है । वे व्यंग्य करके यह सोचने में नहीं उलझते कि उसका क्या और कितना असर हुआ । इस प्रकार निश्चिंत हो जाते हैं जैसे कुछ किया ही नहीं ।"[1] यह संग्रह उपेन्द्रनाथ अश्क ने अपने "नीलाभ प्रकाशन" से छापा था - इस संग्रह के बारे में उपेन्द्रनाथ अश्क ने यों लिखा है - "माचवे जी अपने इन लेखों को स्वयं ब्रिलएंट-नॉनसेन्स {चमत्कारपूर्ण बकवास} कहते हैं, मैं उन से सहमत नहीं । ये लेख उनके हास्य-रस का निचोड़ हैं । हँसी-हँसी में माचवे जी ने बड़े तीखे नश्तर लगाये हैं, जिन से रक्त तो नहीं निकलता, पर जो हृदय में दूर तक जाते हैं । "कुत्ते की डायरी", "नम्बर आठ का जादू", "पत्नीसेवक संघ", "घूस", "खुशामद"द "मकान", "गाली" आदि आदि ऐसे लेख हैं, जिन्हें चाहे कितनी बार पढ़ा जाय, रस में कमी नहीं आती ।"[2] माचवे के व्यंग्य मज़ेदार हैं, पैने हैं और मर्मभेदी हैं । परिवेश में व्याप्त-कृत्रिमता, छल-कपट, अधिकार-लिप्सा तथा व्यक्तिवादी मूल्यों पर माचवे की व्यंग्य दृष्टि पडी है ।

---

1. प्रभाकर माचवे - "खरगोश के सींग" - "भूमिका" से ।
2. "खरगोश के सींग" - "संग्रह का इतिहास" शीर्षक से ।

माचवे की व्यंग्य - कविताएँ :-

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् देश की बदलती हुई परिस्थितियों तथा उन से पैदा होनेवाली भयंकर विसंगतियों ने हिन्दी के साहित्यकारों को व्यंग्य रचना के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित किया । कविता में एक मुख्य प्रवृत्ति के रूप में व्यंग्य का विकास देखने को मिलता है । माचवे की व्यंग्य कविताएँ हिन्दी व्यंग्य कविता में प्रमुख स्थान रखती है । उनकी कविताओं में व्यंग्य की विभिन्न स्थितियाँ आलेखित हैं ।

सामाजिक व्यंग्य कविताएँ :-

समाज में व्याप्त रूढियाँ दिन-प्रतिदिन प्रबल होती जा रही है । ये रूढियाँ जनजीवन की सहज प्रगति में बाधा बनकर खडी हैं । पूँजीवादी व्यवस्था के फलस्वरूप शोषण बढ रहा है । इसलिए समाज में बेकारी, भुखमरी, लूट-मार, अशान्ति व्यापी हुई है । समाज में आत्महत्या, मद्यपान, युवा-अपराध, व्यभिचार भी बढ गये । सरकारी क्षेत्रों में घूसखोरी, लालफीतशाही की प्रवृत्तियाँ भी बढ गयी हैं । इस तरह समाज में कई प्रकार के भ्रष्टाचार फैले हुए हैं । इन भ्रष्टाचारों के प्रति माचवे का व्यंग्यकार भी सचेत है ।

बेकारी की समस्या पर व्यंग्य :-

आज भारतीय समाज की सबसे जीवन्त समस्या है "बेकारी की समस्या" । इसका प्रमुख कारण हमारी शिक्षा-प्रणाली है । इस शिक्षा-प्रणाली पर व्यंग्य करते हुए माचवे का कहना है कि आज की विद्या-शालाएँ

"बेकारी की दुकानें " हैं । "विद्या" शीर्षक कविता के माध्यम से इस सामाजिक समस्या की ओर कवि ने संकेत किया है -

"विलायती विद्या भी ऐसी अहंपोषिता,
रूप गर्विता है निरी, और रूढ़ि-बद्ध हैं ।
ऐसी अविद्या के कारखाने, हे पिता ।
"ऐई स्वर्ग करो मोर देश जागरिता,
चित यहाँ डरा-डरा, माथा सदा झुका है
विचारों के पथ में हैं आचारों की सिकता ।
गली-गली शालाएँ, बेकारी की दुकानें ;
विद्या यहाँ बिकती है, ज्ञान यहाँ बिकता ।"[1]

यह सत्य है कि आज की शिक्षा से कोई फायदा नहीं है । सैकड़ों लोग प्रमाण-पत्र लिये, नौकरी की खोज में भटक रहे हैं । आज हरेक शहर, गाँव, यहाँ तक गली-गली में स्कूल हैं, कालेज हैं । लेकिन ये सब बेकारी की दुकानें हैं ।

शोषण एवं असमत्व पर व्यंग्य :-

आज़ादी के पहले देश की जनता ने जिस शोषणहीन, समत्वपूर्ण एवं स्वस्थ भारत की कामना की थी, वह केवल सपने मात्र रह गया ।

---

1. प्रभाकर माचवे - "स्वप्न-भंग" - प्रथम संस्करण-1957 - पृ. 62

सर्वत्र भ्रष्टाचार, अन्याय, शोषण का बोलबाला है । शोषण और असमत्व की नींव पर खड़े समाज पर माचवे ने खूब व्यंग्य किया है । माचवे का कहना है कि बीसवीं शताब्दी में वैज्ञानिक आविष्कारों ने शोषण की प्रक्रिया को और भी तीव्र कर दिया है -

"बीसवीं सदी ने हमें क्या दिया ?
मोटर, रेल, विमान, क्रांतियाँ......
यह बेतार, सवाक् चित्र पट,
कागज़-मुद्रा, आर्थिक संकट,
गति-अतिशयता, वेगातुरता.....
कहीं प्रपीडन, कहीं प्रचुरता !
इन सारे आविष्कारों ने,
जग को उन्नत किस तरह किया ?
क्रय-विक्रय के संस्कारों ने
और आलसी हमें कर दिया
बढ़ती शोषण-यंत्र किया
बीसवीं सदी ने यहीं दिया ?"[1]

स्पष्ट है कि सभी प्रकार की भौतिक सुख-सुविधाओं के बावजूद भी समाज अब तक विकसित नहीं है । इस पर माचवे व्यंग्य करते हैं । पूँजीपति अपने आप को उच्च एवं कुलीन समझता है । पूँजीपतियों के गगनचुंबी महलों पर जगमगाते विद्युत-दीप उनके वैभव के प्रतीक हैं, जब कि दूसरी ओर

---

1. तारसप्तक - संस्करण-1966 - पृ. 214

निर्धनों की झोंपडी भी है, जिन में एक दिया तक नहीं है । इस असमत्व पर व्यंग्य करते हुए माचवे का कथन है कि -

> जब कि किसी के घर अनेक -
> जलते हो विद्युद्दीप, देख !
> तब होगी ही कोई कुटिया
> जिस में जलता होगा न दिया ![1]

<u>मद्यपान :-</u>

आज समाज में मद्यपान बढ गया है । अमीरों को तो मद्यपान से फुरसत भी नहीं है । इस पर व्यंग्य करते हुए माचवे लिखते हैं -

> "फुरसत नहीं हाय हमें पीने से,
> हम को क्या मतलब हैं जीने से,
> जन में हैं इसी से बस साँसों को ढोते हैं
> हम को क्या करना है किसी के पसीने से ?"[2]

अमीर लोगों को साधारण जन के जीवन से कोई मतलब नहीं है । उनके पसीने और श्रम को अमीर लोग अनदेखा करते हैं । क्योंकि अमीरों को तो मद्यपान से कभी भी फुरसत नहीं मिलता ।

---

1. तारसप्तक - संस्करण-1966 - पृ. 214
2. प्रभाकर माचवे - अनुक्षण {संस्करण-1959} - पृ. 32

"जहाँ गगन-भेदक इमारतें,
यंत्र-यंत्र-मय जिनकी रग-रग
विद्युच्चालित मर्द-औरतें,
डग-डग पर फरेब, जुआ व तीनों रंग
अमिय-हलाहल-मद भर मारग ।"[1]

पूँजीवादी व्यवस्था पर व्यंग्य :-

पूँजीवादी व्यवस्था की निष्ठुरता, शोषण और उस सामाजिक व्यवस्था में आम जनता की निरीह अवस्था पर माचवे ने व्यंग्य किये हैं । अमीर लोग निर्धनों का रक्त चूसकर सुख की नींद में सोता है । माचवे नहीं चाहते कि एक व्यक्ति वातानुकूलित कक्षों में विश्राम करें और दूसरा कपड़े के अभाव के कारण सड़कों पर पड़ा सर्दी से ठिठुरता रहे । अमीरों के लिए "शीत" और "तपन" समान है, क्योंकि उनके कमरे वातानुकूल हैं । यही नहीं उनके पास "शीत" और "तपन" के शमन के लिए सुन्दरी और सुरा दो महत्वपूर्ण उपकरण हैं । ये अमीर लोग पैसे के ज़रिये सभी कुछ क्रय कर सकते हैं - यहाँ तक सतीत्व भी । इस पर व्यंग्य करते हुए माचवे कहते हैं -

"टार-रोड, और बिजली की सब सुविधा-अच्छी,
रिक्शा, टैक्सी, ट्राम और बस,
पैसे से मिलता है बस सरबस का सब रस
पर दो जून वही दुविधा खाने की अच्छी ।

---

1. प्रभाकर माचवे - मेपल - प्रथम संस्करण - 1967 - पृ. 36

यहाँ अमूल्य वस्तुएँ भी बेची जाती हैं
मसलन सतीत्व, प्रामाणिकता, वोटर-संख्या ।[1]

नैतिक ह्रास पर व्यंग्य :-

आज के समाज में नैतिकता का कोई महत्व नहीं है । लोगों को दान, धर्म, आदि नैतिक कार्यों में कोई विश्वास नहीं है । अमीर लोग कुत्ते-बिल्ली का पेट भर देंगे, लेकिन एक गरीब भिखारी की ओर देखेंगे भी नहीं । अमीरों की इस प्रवृत्ति पर व्यंग्य करते हुए माचवे ने "पालतू" शीर्षक कविता लिखी हैं । कविता के अन्त तक आते यह व्यंग्य तीव्रतम हो जाती है - क्योंकि आज के ज़माने के अमीर लोग, कुत्ते-बिल्ली के अलावा "आदमी" को भी पालते हैं, उनके शोषण करते हुए -

"फिर पालीं कुछ लाल मछलियाँ,
वे मर गयीं ;
पाला एक तोता, जो उड गया ।
जोडे का एक बचा
उठा गयी मित्र की बिडाली उसे,
पालने की यह आदत
कम न हुई ।
सुना है कि आजकल, रखे हैं कुछ आदमी
पालतू

---

1. प्रभाकर माचवे - "स्वप्न भंग" - प्रथम संस्करण 1957 - पृ. 82

फालतू !
होगा क्या उनका ?
{ मार देंगे पडोसी के बडे बम ?
फिर भी नहीं होंगे कम } ।[1]

मध्यवर्गीय जीवन की विडम्बना पर व्यंग्य :-

पूँजीवादी व्यवस्था की अमानवीयता और शोषण पर व्यंग्य करने के साथ-साथ माचवे ने मध्यवर्ग की अनेक विडम्बनाओं और उन से संबंधित समस्याओं को भी व्यंग्य का लक्ष्य बनाया है । सचमुच मध्यवर्ग की समस्याएँ विशाल जन समाज की समस्याएँ हैं । व्यवहारिक रूप से हमारे मध्यवर्ग एक शोषित वर्ग है । वह हमेशा पूँजीपति की थाली से गिरे हुए रोटी के टुकडे चुनने में लगा रहता है । माचवे ने जहाँ पूँजीपतियों को अपने व्यंग्य का निशाना बनाया है, वहाँ मजदूर एवं किसान भी व्यंग्य से नहीं बच सके हैं । "गेहूँ की सोच" शीर्षक कविता इसका ज्वलंत उदाहरण है -

"बहुत कुछ जायेगा लगान,
कुछ जायेगी कर्ज-किश्त,
बाकी रह जायेगी -
झोंपडियों की उन भूखी अँतडियों के लिए सूखी
एक बेर रोटी !

---

1. प्रभाकर माचवे प्रतिनिधि रचनाएँ - प्रथम संस्करण -1985 - पृ. 31

क्या यह नीति खोटी नहीं ?
गेहूँ के मोती से दाने जो पसीने से,
उगाये, अरे बदे हो उसी के भाग
आँसू के दाने सिर्फ !

इस कविता में आर्थिक व्यंग्य का रूप निखर आये हैं । यह कविता युग की आर्थिक विडम्बना पर व्यंग्य करते हैं कि गेहूँ की बालियाँ उगानेवाले किसान के हाथ, गेहूँ के दाने न आकर आँसू के दाने आयेंगे । किसान को लगान के रूप में, कर्ज-किश्त के रूप में बनिये को गेहूँ देना पडता है ।

संगठित शक्ति पर व्यंग्य :-

"झंझा और वृक्ष" शीर्षक कविता में माचवे ने उन किसानों एवं मज़दूरों पर व्यंग्य किया है जो अपने आप को संगठित समझते हैं, जबकि वास्तव में वे संगठित नहीं है -

"हम धरती के पुत्र, कृषक हम युग-युग के शापित होरी,
टोडी बच्चों को हम खूब समझते हैं, हम हैं बार्डोली,
हम ने अपना खून सींचकर, जग की सुधा मिटाई,
हम चट्टान न शत् शत् अन्यायों से गयी हटाई !
हम भी हैं "नवान्न" के रक्षक, हम किसान, हम झंझा,
घिरी नहीं हैं अभी हमारे मन पर शोषण संझा ।"[2]

---

1. प्रभाकर माचवे प्रतिनिधि रचनाएँ - प्रथम संस्करण-1985 - पृ. 25
2. प्रभाकर माचवे "अनुक्षण" - प्रथम संस्करण-1959, पृ. 67

राजनीतिक व्यंग्य कविताएँ :-

राजनीति का जब भी कोई पक्ष कविता का विषय बन जाता है तो दो प्रकार की प्रतिक्रियाएँ व्यक्त होती हैं । एक - उसके प्रति विरोध है जो सत्ताधिष्ठित शक्ति के प्रति प्रकट किया जाता है । दूसरा है कि उसके प्रति परिहासोन्मुख रवैया जो उसके खोखलेपन को करने के लिए है । व्यंग्य का संबंध दूसरे से हैं । विरोध में आवेग की संभावना है, व्यंग्य में संतुलन रहता है । माचवे की व्यंग्य कविताओं में राजनीति की अवास्तविकता, अनैतिकता पर लिखी कविताएँ मुख्य है । उनमें अराजनैतिक स्थितियाँ स्वतः खुलती हैं ।

अवसरवादी और मुखौटे बाज़ नेताओं पर व्यंग्य :-

"देशोद्धारकों" शीर्षक कविता में माचवे ने अवसरवादी नेताओं पर व्यंग्य किया है । राजनीति में अवसरवादिता पुराने काल से होनेवाली एक प्रवृत्ति है । अब भी यह अवसरवादिता ज़ारी है । माचवे का कहना है -

"मृदुल नींद की नीड की गोद में,
और परों की सेज़ नरम,
बाहर झुलसी हवा बह रही,
रह-रहकर लू तेज़ गरम,
बाहर अर्ध नग्न पीड़ा,
भीतर क्रीडा-लबरेज हरम,

करुणा के आँगन में नेता,
दे थोडी सी सेज शरन ![1]

वास्तव में ये नेता लोग देश के उद्धारक नहीं, बल्कि कठोर दिल वाले हैं । क्योंकि ये लोग घरों की नरम सेज़ पर आराम की नींद लेते हैं, तो बाहर अनेक गरीब अर्धनग्न गर्मी में काम कर रहे हैं । दरअसल ये देश उद्धारक स्वयं अपने को कहनेवाले, ये नेता लोग झूठा मिथ्यावादी हैं ।

नेताओं के कथनी और करनी पर व्यंग्य :-

देश की आज़ादी के पहले जो राजनीतिज्ञ जनता के दुःखदर्द को तुरन्त मिटा देने का आश्वासन देते थे, आज़ादी के बाद वे सब व्यर्थ साबित हुए । नेताओं के मीठे-मीठे शब्दों और आश्वासनों से साधारण जन का पेट कभी भर नहीं सका । इस पर व्यंग्य करते हुए माचवे का कहना है -

"पेट भरा कब आश्वासन से, मीठे-मीठे शब्दों से ?
अघा गये अपने ही शासन से, अपने ही-चपतों से ।
"साधारण से साधारण जन की स्वतंत्रता" प्रथम शर्त है,
किन्तु सुनायी देता ; नेता भी न वक्त पर अब-चेता ।"[2]

---

1. तार सप्तक - संस्करण - 1966 - पृ. 201
2. प्रभाकर माचवे - "स्वप्न भंग" - प्रथम संस्करण-1957 - पृ.31

वस्तुतः जब मुक्ति मिली, तब वह मुट्ठी भर लोगों को वरदान के रूप में प्राप्त हुआ । शेष बचे लाखों जनता, बुभुक्षित रह गयी । माचवे ने ऐसी आज़ादी को व्यर्थ कहा है । साधारण से साधारण जनता की स्वतंत्रता, उनकी मुक्ति, माचवे को स्वीकार्य है । दूसरी कविताओं में भी माचवे ने यह विचार व्यक्त किये हैं । जब तक जन-जन का हित, उनकी मुक्ति न हुआ तो इस राजतंत्र से क्या मतलब ? -

"आदमी के हैं बनाये राजतंत्र, विधान,
यदि न जन-जन का हुआ हित, मुक्ति का क्या अर्थ ?
यज्ञ जिस पर्जन्य के हित, जो उगाये धान,
वह स्वयम् यदि अन्न स्वाहा कर चले तो व्यर्थ !"[1]

जोड-तोड की राजनीति पर व्यंग्य :-

आजकल राजनीति एक व्यापार और रोज़गार बन गयी है । नेता गैर-जिम्मेदार बन गये हैं । नेताओं में नैतिकता तनिक भी नहीं है । आज प्रजातंत्र के नाम पर विभिन्न-दलों के बीच यही छीना-झपटी, आरोप-प्रत्यारोप, आक्रमण निरन्तर चलती रहती है । ऐसी प्रवृत्तियों पर व्यंग्य करते हुए माचवे का कथन है -

---

1. प्रभाकर माचवे - "अनुक्षण" - प्रथम संस्करण-1959 - पृ. 69

"सुनता हूँ प्रतिदिन हैं होते,
सत्ता प्राप्त गुटों में झगडे,
बीज बबूल-फूट का बोते,
कैसे अमन-आम हो तगड़े !"[1]

सरकार की अनैतिकता पर व्यंग्य :-

माचवे की कुछ कविताओं में सरकार की अनैतिकता पर करारा व्यंग्य है । उनकी नैतिकता केवल दिखावा है । सरकार की तथाकथित नैतिकता-बोध पर व्यंग्य करते हुए माचवे का कथन है -

"मत अफीम की या गाँजे की खेती करना,
बहे विदेशी मद्य, गले तक उस में तिरना,
नैतिकता अपनी है, भारी कोमल, भाई,
होती है जो गंध मात्र से वह हरजाई !"[2]

स्पष्ट है कि किसी प्रादेशिक असेम्बली में यह कहा गया कि सरकार गांजे की खेती करने को अनुमति न दें, क्योंकि वह नैतिकता के विरुद्ध होगा । परन्तु विदेशी मद्य के ऊपर कोई प्रतिबन्ध लगाने की आवश्यकता सरकार महसूस नहीं करती । उक्त कविता में इस पर व्यंग्य है । सरकार की

---

1. प्रभाकर माचवे - तेल की पकौडियाँ - प्रथम संस्करण-1962 - पृ. 19
2. प्रभाकर माचवे - तेल की पकौडियाँ - प्रथम संस्करण 1962 - पृ. 18

यह नैतिकता दिखावा है, क्योंकि केवल अफीम या गाँजे की खेती रोकने से कोई फायदा नहीं है, क्योंकि -

"एक प्रदेश स्वयम् शासन मदिरा का उत्पादन-क्रय करता,
और दूसरे में "बीअर" की दुगनी खपत बढ़ाती चिन्ता !"[1]

भाई-भतीजावाद पर व्यंग्य :-

आज देश की परिस्थिति इतनी विकट है कि योग्यता को कोई नहीं पूछता । यह एक सामान्य सी बात है कि नेताओं और अफसरों के रिश्तेदार बिना किसी योग्यता के ही ऊँची-ऊँची पदवियों पर प्रतिष्ठित हो जाते हैं, जबकि सिफारिश के अभाव में योग्य उम्मीदवार तिरस्कृत हो जाते हैं । इस प्रवृत्ति पर व्यंग्य करते हुए माचवे का कथन है -

"आप एक भूतपूर्व क्रांतिकारी हैं,
आजकल क्या करते हैं ?
जानते हैं देश में घोर बेकारी है,
उप-मंत्री जी का हुक्का भरते हैं !"[2]

आज हमारा राजनीतिक वातावरण इतना प्रदूषित हो गया है कि व्यक्ति की योग्यता का कोई मूल्य नहीं है । नौकरी के लिए मंत्रियों

---

1. प्रभाकर माचवे - तेल की पकौड़ियाँ - प्रथम संस्करण 1962 - पृ. 18
2. प्रभाकर माचवे - तेल की पकौड़ियाँ - प्रथम संस्करण 1962 - पृ. 41

की चाटुकारिता करो तो नौकरी ज़रूर मिल जायेगी ।

नेताओं की अवसरवादिता पर व्यंग्य :-

आज के नेतागण साधारण भोले भाले जनता को कई प्रकार के आश्वासन देते हैं, उनके हितों की रक्षा का वचन देते हैं । ये वचन केवल वोट पाने के लिए ही होता है । वोट पाने के बाद वे अपनी राह लेते हैं । इनको जनता की भलाई से क्या मतलब ? माचवे ने ऐसे नेताओं को "नये पहरेदार" कहकर व्यंग्य किये है -

"यहाँ संस्कृति सिसकती हो बनी सीता मुसीबत में,
सदा सुविधा पसन्दी ही रही आदर्श निज-रत में,
हमें बस वोट पाने हैं, न सुरत में न सरित में,
किसी में भी हमें सौन्दर्य से कोई कहीं मतलब,
मगर पहरा हमारा ही रहेगा अब ।"[1]

अवसरवाद की-चरम सीमा का उल्लेख इस कविता में मिलता है ।

राजनीतिज्ञों के ढोंग एवं वाक्पटुता पर व्यंग्य :-

"दिल्ली के औद्योगिक मेले में " शीर्षक कविता में माचवे ने ऐसे एक एम.पी. पर व्यंग्य किया है, जिसे मेले में माओ की भव्यप्रतिमा देखकर,

---

1. प्रभाकर माचवे - तेल की पकौड़ियाँ - प्रथम संस्करण 1962 - पृ. 54

तुरन्त गाँधी जी की प्रतिमा के अभाव का एहसास होता है । परन्तु फिर उसे एकदम विचार आ जाता है कि गाँधी जी तो घट-घट में निवास करते हैं, यहाँ उनकी मूर्ति की कोई सार्थकता नहीं है -

"औद्योगिक मेले में चीनी गणतंत्र स्टाल -
सुन्दर था । किन्तु एक बात खटकी । विशाल -
माओ की भव्य प्रतिमा जो गोतमेश्वर - सी ।
साम्यवादी देशों में विभूति-वन्दना ऐसी ?
बोले मित्र एम.पी. नहीं गाँधी की प्रतिमा,
या ऐसा भव्य चित्र कोई भी मेले में ?
मन में तब मैं ने यह सोचा अच्छा ही हुआ ।
"घट-घट में रमते हैं स्वामी अकेले में !"[1]

इस कविता के माध्यम से पाखंडी, ढोंगी राजनीतिज्ञों पर व्यंग्य किया गया है । आज के राजनीतिज्ञों की यह विशेषता रही है कि ये लोग भाषण-बाजी में बडे निपुण होते हैं । दुनिया का-चाहे कोई भी विषय हो, पर भाषण करने में ये लोग समर्थ हैं ।

"कि हम दुनिया में हर मज़मूँ पे भाषण झाड़ सकते हैं
कहीं भी हो जमीं थोडी कि तम्बू गाड सकते हैं
कि मजलिस, बज़्म हो कोई व उखाड़ सकते हैं

---

1. प्रभाकर माचवे - तेल की पकौडियाँ - प्रथम संस्करण 1962 - पृ. 16

नसीहत डोज़ बस उपदेश के हम यों पिलाते हैं
क्षितिज को भी हिलाते हैं ।"[1]

राजनीति के बिकाऊ संस्कृति पर व्यंग्य :-

"बाज़ारू-सभ्यता" शीर्षक कविता में माचवे ने चुनावों में होनेवाली हरकतों पर व्यंग्य किया है । चुनावों में ज़्यादा धनराशि खर्च करना साधारण-सी बात है । पैसे के बल पर राजनीतिज्ञ सब कुछ कर सकते हैं - यहाँ तक "वोटर संख्या" भी खरीदी जा सकती है । इस पर व्यंग्य करते हुए माचवे कहते हैं -

"यहाँ अमूल्य वस्तुएँ भी बेची जाती है,
मसलन सतीत्व, प्रामाणिकता, वोटर-संख्या,
पण्यवस्तु लावण्य बना है, नगण्य है क्या ?"[2]

वस्तुतः सत्ता की आड़ में कई प्रकार की बुराईयाँ चलती हैं । माचवे की कई कविताओं में राजनीतिक नेताओं की चालाकी, उनकी स्वार्थलोलुपता, गैर-जिम्मेदारी, अनैतिकता, अवसरवादिता आदि का अनावरण करता है ।

1. प्रभाकर माचवे - तेल की पकौड़ियाँ - प्रथम संस्करण 1962 - पृ. 54
2. प्रभाकर माचवे - तेल की पकौड़ियाँ - प्रथम संस्करण 1962 - पृ. 27

धार्मिक व्यंग्य कवितायें :-

सामाजिक क्षेत्र में व्याप्त अनैतिकता के समान्तर धार्मिक क्षेत्र भी प्रदूषित हैं । धर्म की धार्मिकता अब लुप्तप्राय है । धर्म ने ढोंग का स्थान ग्रहण किया है । अतः धर्म के नाम पर या तो पूँजीवादी संस्कृति का विकास या मध्यकालीन कार्यकांडी सभ्यता की प्रगति होती है । माचवे ने धर्म के इन अनैतिक पक्षों पर व्यंग्य किया है ।

विवेकशून्य धर्मान्धता पर व्यंग्य :-

धर्मान्धता के कारण, भारतीय समाज में अन्ध विश्वासों एवं स्वार्थपरता की मात्रा बढ़ गयी है । ऐसी धार्मिक मान्यताएँ जो विवेक शून्य हैं । जो खोखली हैं, उन पर कवि ने व्यंग्य किया है -

"जब तक दान-दक्षिणा, और "दशांश" प्राप्ति में है नियमितपन,
तब तक वर्गभेद के पोषक, लेकर ईसा-कृष्ण-मुहम्मद,
खूब करेंगे अपनी आमद, टाँक-टाँक कर स्वार्थ-अहम्-मद ।
धर्म बन गये रक्षक इन पापी काले बाज़ारवालों के ;
मन्दिर में जप-जाप "अहिंसा", "शोषण में शर्माती जोंकें ।
ऐसा यह मज़हब जो अन्दर से सड़-गल कर हुआ खोखला,
वह डूबा क्या और बचा क्या ? वह बेअसर, फरेब, दोगला....." [1]

---

1. प्रभाकर माचवे - "अनुक्षण" - संस्करण 1959 - पृ. 86

आज सभी धर्म खोखले बन गये हैं और सडते जा रहे हैं । धर्म के नाम पर मन्दिरों में शोषण होती रहती है ।

विभिन्न धर्मावलम्बी नेताओं पर व्यंग्य :-

माचवे की व्यंग्यात्मक दृष्टि व्यापक है । जिस प्रकार मध्यकालीन संतों ने समाज के मूढ़ विश्वास के खिलाफ आवाज़ उठायी है, उसी प्रकार माचवे ने भी व्यंग्य रूपी शस्त्र से धार्मिक नेताओं पर व्यंग्य किये हैं । आज धर्म और मज़हब की दुहाई लेकर भोले-भाले आस्थावान लोगों को भूखे बनाने का व्यापार, अपने हलुए-मिठाई के लिए कर रहे हैं । वे चाहे पंडित हो, मुल्ला हो या पादरी हो सचमुच निन्दा के पात्र हैं । ऐसी प्रवृत्ति पर व्यंग्य करते हुए माचवे कहते हैं -

"हम को तो हिन्दुत्व डूबता है इसकी भारी है चिंता,
बोले पंडित जी सोहन हलुए का लेकर ज़रा जायका ।
"हाँ" इस्लाम अहम् खतरे में, इसी फिक्र में लमहें गिनता,
बोले शेख मिठाई खाकर घूँट निगलते हुए चाय का ।"[1]

माचवे ने व्यंग्य के माध्यम से सब धर्मों के, धार्मिक खोखलेपन और अवसरवादिता का पर्दाफाश किया है ।

---

1. प्रभाकर माचवे - "अनुक्षण" संस्करण - 1959, पृष्ठ - 85.

धार्मिक ढकोसलों पर व्यंग्य :-

धर्म में से धार्मिकता जब विलुप्त होती है तो वह अनुष्ठान बन जाती है । तब सुविधा इस बात की होती है कि मनुष्य अपनी बर्बरता का परिचय दे सकता है । खोखली धार्मिकता बर्बरता का दूसरा रूप है । हर युग में धर्म का यह संकट रहा है । माचवे धार्मिक अन्ध विश्वासों पर व्यंग्य करते हैं -

"जनश्रुति है नर बलि होती थी । उसकी स्मृति के प्रतीक परशु,
काले जमे खून के धब्बे, यूप, कुंड में टँकी निशानी ।
अब भी बलि-चढते मनौतियों में भैंसें, बकरे, मुर्गी, पशु........
देवी की कराल मुद्रा से रक्त बन गया दृग का पानी ।
सायं-प्रात: की कोलाहलमयी आरती का वह दर्शन,
अब भी मन में अजीब सिहरन पैदा करता वह नीराजन ।।"[1]

आध्यात्मिक अवमूल्यन एवं शोषण पर व्यंग्य :-

आज धर्म की कोई सार्थकता नहीं रह गयी है । जो ईश्वर एकता और शान्ति का प्रतीक माना जाता था, आज उसी ईश्वर को लेकर इतना विवाद चल रहा है । उसी ईश्वर की छत्रछाया में अमीर गरीबों का खून चूसते हैं । ईश्वर का-चोल पहनकर सन्यासी बने हुए लोग भीतर ही

---

1. प्रभाकर माचवे - "स्वप्न भंग" - प्रथम संस्करण 1957 - पृ. 37

भीतर भोगविलास में लिप्त हैं । इस प्रवृत्ति पर व्यंग्य करते हुए माचवे का कहना है -

"आज धर्म और कर्म सभी हैं अस्थिर, कौन किसे सुन पाते ?
सब अपनी-अपनी गाते हैं ; कोलाहल है, तुमुल आते स्वर
कौन यहाँ पर सहाय होगा ? जब हरेक के विभिन्न ईश्वर ।
जो कि एकता, परम-अभेद शान्ति का माना गया धाम था,
उसी ईश को लेकर इतना विवाद, भेद, अशान्ति, वामता !"[1]

पुराने ज़माने में इस प्रकार के विवाद कम थे, लेकिन आज सभी धर्म खोखले बन गये हैं । धर्म के नाम पर सन्यासी लोग, समाज का शोषण करते हैं । इस कविता में मठाधीशों, पुजारियों, नये-नये भगवानों और स्वार्थी संतों के कापट्य का पर्दाफाश किया गया है । धर्म और ईश्वर के नाम पर पनपने वाले अन्धविश्वासों की ओर भी संकेत हैं ।

अन्ध-श्रद्धालुओं पर व्यंग्य :-

आज यह भी देखने को मिलता है कि कोई सन्यासी या नेता के आते ही अन्ध-भक्त उनके पीछे दौडते-रहते हैं । लोगों के इस रवैये पर व्यंग्य करते हुए माचवे -

---

1. प्रभाकर माचवे - "स्वप्न भंग" - प्रथम संस्करण 1957 - पृ. 86

"आये बुद्ध, सुना पालम-विमानतल पर नारी-नर,
तत्पर, सत्वर, लाखों पीले-पीले चीवर,
राज और शासन के अफ़सर,
पीला एक गुलाब टाँककर,
खड़े हुए थे बना समज्या,
मानो सब ही ले लेंगे अब अहा, प्रवज्या ।"[1]

समाज मनोविज्ञान इस अन्धता में हमारी सामाजिक दृष्टि की अवास्तविकता ही अधिक झलकती है । अवास्तविकता की बैसाखी पर खड़े समाज के आगे अन्धे अनुकरण के सिवा और कोई-चारा नहीं है । यह कपट हमारी मानसिकता का है अर्थात् यह कपट हमारे समाज का है ।

साहित्यिक व्यंग्य कविताएँ :-

साहित्यिक -मूल्यों का ह्रास, लेखकों की गुटबन्दी, साहित्यिक क्षेत्र की अति-व्यावसायिकता, कवियों की भावुक निरीहता, प्रकाशकों की बेईमानी, विज्ञापन बाजी आदि साहित्यिक जगत् की विकृतियों या विसंगतियों पर माचवे की दृष्टि पड़ी है । माचवे ने अपनी अनेक कविताओं में साहित्यिक प्रवृत्तियों पर भी व्यंग्य किया है ।

---

1. प्रभाकर माचवे - तेल की पकौड़ियाँ - प्रथम संस्करण - पृ. 11

साहित्यिक प्रवृत्तियों पर व्यंग्य :-

माचवे ने समसामयिक साहित्यिक प्रवृत्तियों को अपना व्यंग्य का निशाना बनाया है । "एक छायावादी कविता" शीर्षक में छायावाद की दुरूहता एवं गगन-बिहारी प्रवृत्ति पर व्यंग्य है -

"क्या इसको ही कहते हैं सब कविता छायावादी ?
संस्कृत शब्द कोश को लेकर चुन चुन शब्द पुराने
कुछ रहस्य दे अवगुंठन के डाले ताने-बाने ।"[1]

माचवे ने छायावाद की शब्द संबंधी दुरूहता पर व्यंग्य किया है । "लॉलीपॉप" शीर्षक कविता में भी उन्होंने साहित्यिक प्रवृत्तियों पर व्यंग्य किया है । इसमें द्विवेदीयुगीन छायावादी, प्रगतिवादी, प्रयोगवादी कवियों पर कटाक्ष किया है । उदाहरण प्रस्तुत है -

"प्रयोगवादी -
खट्टी जैसी डकार
मीठा ज्यों कुण्ठा का ज्वार,
अन्धायुग, अन्धा जग, अन्धी गली, अन्धा लालटेन
ट्रेन में खींची हुई चेन !
शब्द मत दो, न सही, मिठाई दो
तो तो ता ता ता ता तो तो
मैं क्या बच्चा हूँ

---

1. प्रभाकर माचवे - "स्वप्न भंग" - प्रथम संस्करण 1957 - पृ. 63

जो लॉलीपॉप माँगूँगा ?
आ गया चुपके से चोरी से खा लूँगा ![1]

साहित्य में प्रचलित भ्रष्टाचार पर व्यंग्य :-

"कोरे कवि सम्मेलनी कवि से" शीर्षक कविता में माचवे ने साहित्य में प्रचलित भ्रष्टाचार पर करारा व्यंग्य किया है। आजकल "कवि-सम्मेलन" के नाते सैकड़ों रुपये बेकार खर्च करते हैं, लेकिन वहाँ कविता सम्मेलन नहीं, कवि सम्मेलन-चलता है। ऐसी प्रवृत्ति पर व्यंग्य करते हुए माचवे कहते है -

"अपने मन को बहलाने का एक बहाना, धोखा, बचपन।
कविता नहीं हवा में कर-पद फेंक-चीखना अल्फा-बीटा।
कविता नहीं गलेबाज़ी या लम्बे बाल, शाल या अवकन।
यह जो मिनिट मिनिट पर अपना दिल उधारते यों फिरते हो
अरे बेहया, कवि हो या मटके हो जो कण-कण झरते हो।"[2]

सचमुच माचवे ने उन भौंडे कवियों पर व्यंग्य किया है, जो लंबे बाल रखे हुए, शरीर पर शाल ओढे हुए कवि-सम्मेलनों में चिल्ला-चिल्लाकर अपनी व्यथा का राग आलापते हैं।

---

1. प्रभाकर माचवे - प्रतिनिधि रचनाएँ - संस्करण 1985 - पृ. 160
2. प्रभाकर माचवे - स्वप्न भंग - संस्करण 1957 - पृ. 64

संपादकों पर व्यंग्य :-

संपादकों की बेईमानी और गैर-जिम्मेदारी के कारण साहित्यिक मंच अक्सर संपादकों या प्रकाशकों के अधीन रहता है । परिणाम यह होता है कि जिस पर संपादक या प्रकाशक की कृपा दृष्टि पड़ती है, वही बड़ा साहित्यकार घोषित किया जाता है । "संपादक" शीर्षक कविता में माचवे ने ऐसे संपादकों पर व्यंग्य किया है -

"संपादक को क्या काम ?
सिर्फ आराम !
दस-पाँच चिट्ठी लिखीं, दो चार अखबार टटोले,
और मासिक के लिए नोट्स लिखे जो,
जानता है वो
वे न पढ़ते हैं कोई भी पाठकगन
माहवार तनख्वाह-कलदार छन-छन-छन
कभी कर आये "टूर"
किसी को कहा "हुज़ूर"
और कुछ पैसे और फोटो भी उठाये कहीं,
बोलो वो पूँजीपति-फ्लाँ-फ्लाँक्क का विरोध-
कर दो, बस चलीं कलम
यही है हमारे प्रिय संपादक जी का विनोद
नयी-नयी गालियाँ/बनायीं और पायीं कहीं तालियाँ ।[1]

---

1. तेल की पकौड़ियाँ - प्रथम संस्करण 1962 - पृ. 38

साहित्यकारों के कथनी और करनी पर व्यंग्य :-

आज के साहित्यकारों की कथनी और करनी, आचार और व्यवहार में कोई मेल नहीं है । "समस्या पूर्ति" शीर्षक कविता में माचवे ने ऐसे लेखकों या कवियों पर व्यंग्य किया है, जो शहर में रहकर देहाती बातों का वर्णन करते हैं । ये कवि भारत में रहकर कभी रूस की, कभी-चीन की, कभी अमेरिका की बातें कहते हैं -

"मैं यथार्थ ही लिखता, कुछ भी नहीं कल्पना से मैं कहता,
और शहर में रहकर देहातों की बातें वर्णित करता ;
"हम तो सब से बड़े राष्ट्रवादी हैं, देश भक्ति-उद्गाता,
कभी रूस की, कभी चीन की, अमरीका की अस्तुति गाता !
यही आज का कवि, कुछ कहता, करता कुछ ; खाई भाषा में,
कब से हम बैठे हैं मरु में खाली-कालिदास आशा में !"[1]

साहित्य की विवेक हीनता पर व्यंग्य :-

"सरकस के जोकर का वक्तव्य" शीर्षक कविता के माध्यम से माचवे ने आज के साहित्य और कला की विवेकहीनता पर व्यंग्य किया है । सरकस के जोकर से कह जाता है कि "हँसो, तो उसे हँसना ही पड़ता है । उसे अपने "मन का दर्द" कहने के लिए समय नहीं है या कहना मना है ।

---

1. प्रभाकर माचवे - "स्वप्न भंग" - प्रथम संस्करण 1957 - पृ. 83

इस प्रकार की स्थिति आज के साहित्य और कला की है । माचवे के शब्दों में -

"मुझ से कहा गया है हँसो,
हँसी न आती हो तो चेहरे पर बत्तीसी-खिलती नक़ाब पहन !
{मेरे मन का दर्द किसी को क्योंकर कहना
केवल सहना, केवल सहना !}
सदा चुटकुले कहो, फबतियाँ कसो
हँसाते रहो, पेट के लिए, वहीं से तनखा मिलती,
कह न सकना !
{बाहर ऊल-जलूल कथन केवल बकना
मन का मन में रखना !}
- यही साहित्य, आज की कला,
विवशता, निरी विवशता
जीना-मरना, यही अधूरा
आधी मनुष्यता आधी पशुता !"[1]

माचवे के "नये नाटक" शीर्षक कविता में भी साहित्य या कला की विवेकहीनता पर व्यंग्य किया गया है -

" खलनायक अब नहीं दुष्ट-जन
{वह तो अ-संकल्प मय सज्जन}
खलनायक अब नहीं इआगो ; कंस, दुर्योधन
{वह तो ज्ञान-सर्प या राक्षस छिपा हुआ निज में ही, शोधन}

---

1. प्रभाकर माचवे - तेल की पकौड़ियाँ - प्रथम संस्करण 1962 - पृ. 48

नये नाट्य में मंच मूक है, अभिनेता केवल कठपुतले
नाटककार फति का लोभी, दर्शक सिनमा-विकृत उथले ।[1]

प्रभाकर माचवे ने साहित्यिक संसार की विसंगतियों को व्यंग्य के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है । साहित्यिक-प्रवृत्तियों पर सर्वाधिक व्यंग्य माचवे ने लिखे हैं । ऐसी कविताओं में उनकी वाक्पटुता निरी शब्द-क्रीडा न रहकर यथार्थ को गहरानेवाली हैं ।

सांस्कृतिक व्यंग्य कवितायें :-

आज की गहरी संस्कृति भी व्यंग्यकारों के व्यंग्य बाणों की शिकार रही है । कृत्रिम व्यवहार आधुनिक सभ्यता का मूल भाव है । स्वातंत्र्योत्तर सामाजिक जीवन पर ज्यों-ज्यों सभ्यता का आवरण चढता गया त्यों त्यों उनकी कमज़ोरियाँ, बुराईयाँ छद्म रूप में प्रकट होने लगीं । माचवे का कहना है कि जिस संस्कृति में अनेक विकृतियाँ हैं, उस संस्कृति को त्यागने में ही मनुष्य का हित है । उसको जबरदस्ती ओढ़ने पर व्यक्ति पतन के गर्त में गिर सकता है । माचवे का कहना है -

"फटी, थेगरों की यह संस्कृति की जो गठरी,
अब न सुधरने की यह, बिगड चुकी बहुत, अरी ।
फूट गई जुड न सकेगी मटकी, यह गगरी !"[2]

---

1. प्रभाकर माचवे - स्वप्न भंग - प्रथम संस्करण - 1957 - पृ. 74
2. प्रभाकर माचवे - "अनुक्षण" - संस्करण 1959 - पृ. 88

नयी सभ्यता और फैशन के नाम पर देश में व्याप्त विकृतियों और हलचलों पर माचवे की दृष्टि पड़ी है । माचवे ने इन विकृतियों और हलचलों को अपने व्यंग्य के माध्यम से व्यक्त किया है ।

सभ्यता की कृत्रिमता पर व्यंग्य :-

आज हमारी भारतीय संस्कृति बिलकुल खोखली बन गयी है । दर असल हमारी संस्कृति "डरू संस्कृति" है । जीवन के सभी क्षेत्रों में यही "डरू-संस्कृति" का ही प्रभाव है । इस प्रवृत्ति पर व्यंग्य करते हुए माचवे कहते हैं -

"जो कुछ करना भाई वह सब करना, लेकिन डरते-डरते ।
जीना हो तो डरते-डरते, मरना लेकिन डरते-डरते ।
प्रेम करो तो चोरी-छुपके, देख फूँककर दायें-बायें,
स्त्री से रति भी डरते-डरते {कहीं न आबादी बढ़ जाये}
दफ्तर में अफसर से डरते, साहस कहीं भी न दिखलाओ
गाड़ी में ड्राइवर से डरते, चिकनी-चुपड़ी गाते जाओ ।"[1]

स्पष्ट है कि हमारी संस्कृति इतनी खोखली है कि सब क्षेत्रों में सांस्कृतिक पतन हो रहे हैं ।

---

1. प्रभाकर माचवे - तेल की पकौड़ियाँ - संस्करण 1962 - पृ.37

मनुष्य की हिंसा वृत्ति पर व्यंग्य :-

पशु-जगत में आज भी सह-अस्तित्व, सह-चिन्तन, बन्धुत्व, समता आदि का भाव देखने को मिल जायेंगे, परन्तु मनुष्य वैज्ञानिक आविष्कारों की दौड में इतना अन्धा हो गया है कि पशु-जगत भी मनुष्य को आश्चर्य के साथ देख रहा है। मनुष्य की हृदयहीनता और हिंसा वृत्ति को देखकर, पशुओं के मन में यह प्रश्न उत्पन्न हो रहा है -

"कौन यहाँ जंगली है ? हम जो सहस्त्रकों के लिए जिलाते,
या कि आप जो अणु-बम की निर्माण दौड में हो मदमाते,
यहाँ शिकार मना है, वर्ना हिंसक मानव के कब बचते ?
गोली नहीं जानती भाषा, वर्ण, जाति के भेदक रिश्ते ।"[1]

मशीनी सभ्यता पर व्यंग्य :-

आज विज्ञान के आविष्कारों ने जहाँ हमारे जीवन को सुविधापूर्ण बना दिया है, वहाँ मनुष्य के लिए अभिशाप सिद्ध हुए हैं। वैज्ञानिक आविष्कारों ने मनुष्य को यंत्र बना दिया है और वह मनुष्यता से शून्य होकर पशु के स्तर से भी नीचे जा पडा है। आज मनुष्य इतना ख़ूँखार हो गया है कि उसने पशु जगत को भी लज्जित कर दिया है। इस पर व्यंग्य करते हुए माचवे कहते हैं -

"वह जंगलीपन सिमिट चला है इस मनुष्य में आकर अब सब ।
यह मनुष्य ख़ूँखार बन गया, हिंस्र श्वापदों से भी बढकर ।

---

1. प्रभाकर माचवे - तेल की पकौडियाँ - संस्करण 1962 - पृ. 15

नागा मुंडों का शिकार अब भूल गये हैं इसके सम्मुख ।
सिंह लजायेंगे, वन-शूकर भी कहलायेंगे अति संस्कृत,
इस मनुष्य ने ऐसा गजब किया, पशु को कर डाला लज्जित ।"[1]

यह सच है कि अति संस्कृत कहलानेवाला मनुष्य ऐसा कार्य करते हैं, जो देखकर पशु भी लज्जित हो जाते हैं । इन वैज्ञानिक आविष्कारों ने समाज को अब तक विकसित नहीं किया है । इस पर व्यंग्य करते हुए माचवे ने कहा है -

"इन सारे आविष्कारों ने
जग को उन्नत किस तरह किया ?
क्रय-विक्रय के संस्कारों ने
और आलसी हमें कर दिया,
बढती शोषण-यंत्र किया
बीसवीं सदी ने यही दिया ?[2]

अंधानुकरण की प्रवृत्ति पर व्यंग्य :-

आज सभी क्षेत्रों में अंग्रेजों के अनुकरण करके स्वयं अति आधुनिक घोषित करने की प्रवृत्ति पर माचवे ने व्यंग्य किया है । स्वतंत्रता के कई वर्षों के बाद भी, अंग्रेज किस तरह भारतीयों को अब भी गुलामी में बाँध

---

1. प्रभाकर माचवे - स्वप्न भंग - संस्करण 1957 - पृ. 54
2. "तार सप्तक" - संस्करण 1966 - पृ. 214

रखा है । इन पर व्यंग्य करते हुए माचवे का कहना है -

> 'अंग्रेज गये, पर छोड गये कुछ निशान,
> क्लब के हैं {रोग} ढंग और ही यहाँ निदान ।
> गोल-गोल दुकानें, गोल-गोल रास्ते हैं
> दिमागों में गोल गोल मालिक-गुमारते हैं ।
> चमक-दमक, रूज-अधर-राग, पर्स, दिखावा,
> नई दिल्ली लाहौर-पेरिस की है बाबा !'[1]

प्रभाकर माचवे की व्यंग्य कविताएँ तथा उनकी अन्य व्यंग्य रचनाएँ काफी-चर्चित रही हैं । इसका कारण यह है कि उनकी कविताओं के बहिरंग हल्कपन के बावजूद अन्तरंग-चेतना बहुत गहरी है । जिस वास्तविकता को आज के युग ने झुठला दिया है उस वास्तविकता को माचवे ने पकडा है । उनकी दृष्टि सदैव सचेत रहती है । इसलिए हर क्षण उनकी दृष्टि अवास्तविकताओं पर पडती है । इन पक्षों पर वे एकदम वार नहीं करते । उनकी कौतुक प्रियता उन्हें तटस्थ रखती है । पर जो बात कचोट पैदा करनेवाली है, उसको लेकर वे एक कौतुक दृश्य रूपायित करते हैं । इस प्रकार उनकी प्रत्येक व्यंग्य कविता वास्तविकता की भीतरी स्थिति का स्पर्श करती है । वाक्पटुता में भी वे दक्ष हैं । इसलिए उसका भी वे भरपूर प्रयोग करते हैं । लेकिन हास्य का हल्का दृश्य-चमत्कारपूर्वक

---

1. प्रभाकर माचवे - 'स्वप्न भंग' - प्रथम संस्करण 1957 - पृ. 42

गढ़ना उनका उद्देश्य नहीं है । वे सदैव मनुष्योन्मुखी-चेतना को बढ़ावा देने वाले हैं । इसलिए उनकी व्यंग्य रचनाओं में उन कारुणिक पक्षों को भी प्रस्तुत करते हैं । इस कारण से माचवे की व्यंग्य कविताओं की गहराई बढ़ती रहती है । वे हल्का कभी नहीं है । उनकी हर व्यंग्य कविता में मानवीयता झलकती है । इस प्रकार उनकी व्यंग्य कविताएँ गंभीर-कविता का दर्जा प्राप्त करती हैं ।

अध्याय : पाँच

माचवे की कविताओं में भारतीयता

भारतीयता के अग्रणी पुरुष :-

भारतीय भाषा में लिखने वाले सभी कवियों की कविता में भारतीयता का कोई न कोई अंश मिलता है । भारतीयता को आज़माने के ढंग भिन्न हो सकते हैं । भारतीय कवि, -चाहे वह किसी भी भारतीय भाषा के हों - भारतीयता का शब्दकार बन जाये तो वह न अप्रत्याशित है न अस्वाभाविक । अतः यह सवाल उठता है कि माचवे की कविताओं में भारतीयता की इतनी महत्ता क्यों ? माचवे के सहयोगी कवि उनकी काव्य यात्रा के प्रथम चरण में तारसप्तकीय कवि रहे हैं । परवर्ती चरण में अन्य स नए कवि भी हैं । अन्य कवियों की तुलना में माचवे की कविता में भारती अगर एक प्रमुख प्रवृत्ति है तो उसका रचनात्मक परिदृश्य ढूँढ लेना आवश्यक

माचवे में ग्रहण शक्ति अधिक है । कविता का गवाक्ष- उनका हमेशा खुला रहता है । इसलिए उनकी कविता का भारतीय परिदृश्य विपुल है । भारत की विशालता का एहसास उनकी कविता में निरन्तर मिलता है । दूसरी मुख्य बात यह है कि वे भारतीयता के मूल अंश के किसी पक्ष को अपनी कविताओं में व्यक्त करते हैं । इस प्रकार माचवे भारतीयता के बहिरंग तथा अन्तरंग पक्ष को सदैव अपनी कविताओं की विषयवस्तु के रूप में स्वीकारते रहते हैं । उनकी कविता में भारतीयता का स्पष्ट बिंब उभरता रहता है ।

माचवे की कविताओं में भारतीयता की प्रवृत्ति को रेखांकित करने से पहले भारतीयता पर विचार करना आवश्यक है । भारतीयता कोई मूर्त वस्तु नहीं है । भारतीयता एक अनुभूतिपरक अनुभव है और एक ग्रहणशील संस्कार । इसके द्वारा हम अपनी देशीयता के विभिन्न पहलुओं का सूक्ष्म अनुभव कर सकते हैं । हमारे कुछ सूक्ष्मतम मूल्य भारतीयता के अन्तर्गत आते हैं । "जीवन के अत्यन्तिक अर्थ को जानने का निरंतर प्रयास भारतीय संस्कृति को स्पन्दनशील बना देती है । प्रसिद्ध कला मीमांसक आनन्दकुमार स्वामी के अनुसार आधुनिक युग के लिए भारतीयता की यही महत्वपूर्ण देन हैं ।"[1]

"भारतीय चिन्तन में पारलौकिकता और भौतिकता का अतिसमर्थ समन्वय दृष्टिगोचर होता है । अतः जीवन के वस्तुवादी संदर्भ में भी आध्यात्मिकता की प्रासंगिकता है । आध्यात्मिक उन्नयन की वास्तविक निर्णायक शक्ति सामाजिक चेतना है ।"[2] भारतीयता के प्रवाहमान आन्तरिक स्त्रोत का यही वैशिष्ट्य है ।

---

1. Anand Coomaraswamy-"Dance of Shiva" page No.22.
Indian culture and its greatest significance for the modern world is the evidence of constant effort to understand the meaning and the ultimate purpose of life.

2. Anand Coomaraswamy-"Dance of Shiva" page No.22.
This inseperable unity of the material and spiritual world is made the foundation of the Indian culture and determines the whole character of her social ideals.

भारतीयता को भिन्न-भिन्न व्यक्तियों ने भिन्न-भिन्न ढंग से देखा है और अपने ढंग से विचार व्यक्त किये है - अज्ञेय का कथन है - "भारत की आत्मा सनातन है, भारतीयता केवल एक भौगोलिक परिवृत्ति की छाप नहीं, एक विशिष्ट आध्यात्मिक गुण है, जो भारतीय को सारे संसार से पृथक करता है । भारतीयता मानवीयता का निचोड है, उसकी हृदय मणि हैं ।"[1] यह धार्मिक दृष्टि नहीं है । यह एक आस्थावादी दृष्टि है । इसमें मनुष्योन्मुखता अधिक झलकती है । तार्किक बुद्धि से इसे अनुभव नहीं किया जा सकता । अनुभूति प्रवण हृदय से ही इसे आत्मसात किया जा सकता है । इसी बात का समर्थन करते हुए वी.के.गोकक ने अपने "भारतीयता की संकल्पना" शीर्षक लेख में लिखा है - "रचनाकार को प्रादेशिक विशिष्टताओं की अभिव्यक्ति है जैसे राजा राव कन्तपुराण और कथाओं में करते हैं, बेशर्त कि उसी रचना में मनुष्य-महत्व या परिस्थिति की पूर्ण अभिव्यक्ति हो जाये । आधुनिक भारतीय साहित्य ने हमारे पौराणिक देवियों जैसे सीता और दमयंती तथा अर्जुन, कर्ण जैसे वीरों की शब्द-चित्र गैलरी प्रस्तुत की है । तारा भाई, शांतला और पुलिकेशी जैसे भारतीय इतिहास के उदात्त चरित्रों एवं राष्ट्रीय किस्म के हास्य जनक और त्रासिक पात्रों का चित्रण भी किया गया है । यों ही एक साहित्यिक रचना की विषय-वस्तु में भारतीयता का समावेश हो जाता है, हाड-मांस बन जाता है । भारतीयता केवल भाषण के

---

1. अज्ञेय [संपादक] "आत्मपरक" - पृ. 84 - संस्करण 1983 - "भारतीयता" शीर्षक लेख से ।

सुर-परिवर्तन या भावोद्‌गारों की अर्थ छटाओं की बात तक नहीं रह जाती ।"[1]

यह कथन डा. प्रभाकर माचवे के संबंध में भी बिलकुल सार्थक है । वास्तव में माचवे द्वारा सर्जित साहित्य की प्राय: सभी विधाओं में मानवता के कल्याण का स्वर प्रखर है । यह काम बुद्धि कदापि नहीं कर सकती । हृदय इसकी भित्ति है । हृदय के इस गुण ने माचवे को सिर्फ सर्जक कवि नहीं बनाया, बल्कि उससे भी ज्यादा एक संवेदनशील मनुष्य बनाया । यह मानवीयता, माचवे के व्यक्तित्व और जीवन में भी है - "माचवे के जीवन के सारे सिद्धांत मानवीयता की गहराई से जुडे हैं और उस पर वह अटल भी रहते हैं, किन्तु किसी भी प्रकार की रूढ़ि या पूर्वाग्रह उन्हें छू तक नहीं पाता । वह हर प्रकार के मुक्त स्वभाव के हैं और यह मुक्त

---

1. Editied by Ramesh Mohan-"Indian writing in English" Page No. (The concept of Indianness with reference to Indian Writing in English by V.K.Gokak)

"A writer may even revel in regional particulars as Raja Rao does in Kanthapura and in some short stories provided the human significance of the theme or situation is fully revealed in the work. Modern Indian literature has given a portrait gallery of our legendary. This is how the theme of a literary work makes its Indianness a thing of flesh and blood and not merely a matter of the inflections of speech and the nuances of weighed utterance".

स्वरूप भीतर की मुक्ति का प्रकट रूप हैं । यह उनके व्यक्ति की बड़ी उपलब्धि है ।"[1]

श्री वी.के. गोकक ने भारतीयता के लक्षण के बारे में लिखा है - "अब हम यह देखें कि विषयवस्तु के स्तर पर भारतीयता माने क्या है ? कोई भी भारतीय लेखक, भारत के मिथ को, दन्तकथाओं से सामग्री प्राप्त कर सकता है । वह यहाँ की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों का जो यहाँ के सामान्य लोगों का पीछा करती है, वर्णन कर सकता है ।"[2]

असल में अपने जीवन को, उसकी मिट्टी को पहचानना भारतीयता का लक्षण है । इस प्रकरण में लेखकीय दायित्व भी विचारणीय हो जाता है कि कवि किस को अभिव्यक्ति देता है । कविता यद्यपि आत्माभिव्यक्ति है तो भी वह आत्मपक्ष तक केन्द्रित एक संकीर्ण विधा नहीं है । उसे आत्मपक्ष

---

1. डा. भारतिनन्दन पाठक (संपादक) "डा. प्रभाकर माचवे से दृष्टिकोण" संस्करण 1988, पृ. 22 - "दृष्टिपथ" से ।
2. Edited by Ramesh Mohan - "Indian Writing in English" Page No "We may now consider what we mean by Indianness in theme. An Indian writer may deal purely with Indian myth and legend. He may deal with the social and political movements animating the Indian people".

में मुक्त होकर समष्टिपक्ष से जुडना पडता है । तभी आत्मपक्ष प्रासंगिक हो सकता है । जैसे मुक्तिबोध ने इसे स्थानान्तरगामी प्रवृत्ति कहा है । भारतीयता के बारे में विचार करते समय कवि दृष्टि का महत्व है । भारत की परंपरा याने वह आभिजात परंपरा मात्र नहीं है, उसमें वह लोकपरंपरा भी हैं जिसकी अनेकविध शाखाएँ हैं । उन सब का कोई न कोई पक्ष, यहाँ तक कि एकाध कविता में कहीं अंकित होना ज़रूरी है । इस प्रकार एक कवि अपनी विरासत से संबंध जोडता है । आधुनिक कवि में भी यह प्रवृत्ति विद्यमान है । वह परंपरा के उदात्त नायक के रूप में अवतीर्ण नहीं होता है । वह सामान्य जीवन में से कविता का रस पा लेता है, उसमें जीकर, तपकर वह यह रस प्राप्त करता है, पर अपनी विरासत को भी ले चलता है । माचवे की अधिकतर कविताएँ सामान्य लोगों की जिजीविषा और कठिनाईयों से संबंधित है । गरीबी, भूख, हताशा की इन कविताओं में भी भारतीय मूल्यों का विधिवत् संकेत हैं । माचवे मात्र तोड़-फोड की कविता लिखने वाले नहीं है, वे मनुष्योन्मुखी कविता के उन्नायक हैं, पर मूल्य का एक ऊँचा स्तर भी सुरक्षित रखना चाहते हैं । इसलिए माचवे की कविताओं में भारतीयता सूक्ष्म संवेदन स्तर पर परिलक्षित है । पर ऐसी भी कविताएँ उन्होंने लिखी हैं जिन में भारतीयता का बाह्य स्तर भी विद्यमान हैं ।

संस्कृति के उन्नायक :-

डा. माचवे बहुभाषाविद्, भारतीय भाषाओं के बीच सजीव सेतु, सुपरिचित कवि और अनेकानेक विधाओं के लब्ध प्रतिष्ठित साहित्यकार हैं । उनको "चलते-फिरते विश्वकोश" की संज्ञा अनेक विद्वानों

से दी है, क्योंकि उन्हें विभिन्न भाषाओं का ज्ञान, साहित्य, संस्कृति और इतिहास से जुड़ी हुई परंपराओं का ज्ञान था । भारतीय भाषाओं के नये-पुराने साहित्य का जितना ज्ञान उन्हें था, उतना शायद अन्य किसी को नहीं ।

माचवे की रचनाओं के समान माचवे के व्यक्तित्व में यह "भारतीयता" देख सकते हैं । दुनिया के अधिकांश भू-भाग को देखने और विश्व-संस्कृति के अनेक आयामों को समझने के बाद, उनका झुकाव भारतीय संस्कृति और आदर्श की ओर रहा है । माचवे विदेशों में भी-अतिथि अध्यापक के नाते-भारतीय साहित्य, संस्कृति, गाँधी-दर्शन पढ़ाते रहे । इसका कारण यह है कि माचवे को "भारतीयता" से विशेष लगाव है । माचवे को एक शुद्ध भारतीय व्यक्तित्व के नाते ही पहचाना जा सकता है । वे अपने को शुद्ध-भारतीय कहना ही पसन्द करते थे । दूर-दूर तक अमेरिका, यूरोप आदि देशों में कई वर्षों तक रहे, किन्तु सिर्फ खादी का ही प्रयोग करते थे । विदेशी पहनावा से वे दूर रहे । किन्तु माचवे कभी रूढ़िवादी नहीं बने । माचवे ने अपनी दृष्टि का विकास अपनी मिट्टी से किया है, इसलिए बाहर से इतने अधिक साक्षात् संपर्क और परिचय के बावजूद, कहीं आयातित रूप की मिलावट नहीं हुई है , क्योंकि उनका नीर-क्षीर विवेक हमेशा जागृत रहता है । भारतीय "भारतीय- साहित्य" को नहीं पहचानते या नहीं जानते । ऐसी स्थिति पर व्यथा प्रकट करते हुए माचवे ने कहा - "यह कैसी दयनीय स्थिति है कि हमारे विद्यार्थी भारतीय साहित्य थोड़ा भी नहीं जानते, जबकि यूरोपीय या

अमेरीकी साहित्य के बारे में बहुत अधिक जानकारी रखते हैं ।"[1] माचवे की रचनाओं में, विशेषकर उपन्यासों पर पश्चिमी प्रभाव देखा जा सकता है । लेकिन उसकी बुनियाद भारतीय ही अधिक है । माचवे ने कहा है - "सन् 1934 से मैं लिखने लग गया । तब से देखिए, भारत में जो उथल-पुथल हुई, जो राजनैतिक, सामाजिक परिवर्तन हुआ, उन सब का परिणाम मेरी मूल्यवत्ता पर, मेरे विचारों पर जरूर पड़ा है ।"[2]

यह सही है कि माचवे की रचनाओं में भारत के सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रों के आन्दोलनों का वर्णन मिलता है । एक भारतीय साहित्यकार के नाते ऐसा होना स्वाभाविक भी है ।

समन्वय की प्रवृत्ति :-

बहुमुखी प्रतिभा के धनी माचवे ने सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य को एक दूसरे के करीब लाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया । उनका

---

1. Prabhakar Machwe - "From Self to Self", Page No.120 (1976). "What a pity that our students know so much about European and American and Russian Literature, but so little about the literature of a neighbouring province or state".
2. रत्ना लाहिड़ी - "मूल्य:संस्कृति, साहित्य और समय {साक्षात्कार}
पृ. 63, संस्करण - 1987.

व्यक्तित्व गाँधीवादी था और उनका मन भारतीय साहित्य की महत्वपूर्ण घटनाओं का जीवन्त कोष था । भारत की आत्मा का वैशिष्ट्य उस एकत्व में है जो विविध रंगी है । इस एकात्मकता को बनाये रखने में माचवे ने भरपूर कोशिश की है । उनका कहना था - "भारत को एक परिवार के रूप में रहने के लिए भाषा की दीवारें तोडनी हैं ।"[1] डा.श्यामसिंह शशि का कथन संगत लगता है -"डा.प्रभाकर माचवे का नाम ज्यों ही जबान पर आता है तो एक अद्भुत मेधाशक्ति, एक चलते-फिरते विश्वकोश और विविधता में एकता की अनुभूति साकार हो उठती है । जिस प्रकार हम राष्ट्र को एक गुलदस्ते की भांति अनुभव करते हैं - ऐसा गुलदस्ता जिस में भिन्न-भिन्न प्रकार के पुष्प सुसज्जित हैं ।"[2] सभी प्रकार के फूलों से सुसज्जित गुलदस्ता अकेले माचवे के व्यक्तित्व में मिल जायेगा । माचवे के व्यक्तित्व की सब से बडी

---

1. Prabhakar Machwe - "From Self to Self", Page No,120 (1976). "I think that most important lesson I learnt from all these literary pilgrimages to twenty two different languages centres, was how much we still need to break the narrow walls between language and language, how much more free air and traffic in ideas has to flow between these rooms, before we can call it really one family".

2. डा.मारुतिनन्दन पाठक {संपादक} - "डा.प्रभाकर माचवे:सौ दृष्टिकोण" पृ. 267, संस्करण 1988 - श्यामसिंह शशि -"विविधता में एकता की प्रतिमूर्त्ति" शीर्षक लेख से ।

विशेषता यह है कि उन में समभाव है, कहीं भी संकीर्णता नहीं, दुराग्रह नहीं ।

माचवे ने अपनी कविताओं में "भारतीयता" की अखण्डता की कल्पना की है - जिस में राष्ट्र- एक वृक्ष के समान है और भिन्न-भिन्न राज्य उस वृक्ष की नाना शाखाएँ हैं -

"राष्ट्र-वृक्ष सा जिसकी नाना शाखाएँ अवदात,
सरहद, सिन्ध, अवध, कर्नाटक, बंग, आन्ध्र, गुजरात,
काश्मीर, पंजाब, दु-आबा, राजस्थान, बिहार,
महाराष्ट्र, आसाम, कटक, मालवा, काठियावाड,
अब शाखाएँ बढती हैं, निज-निज दिशि में सब ओर,
तब तक की अखंड जड़ में क्या मचती ईर्ष्या घोर ?"[1]

भौगोलिक वैविध्य को मानकर उस में निहित एकत्व की शक्ति और क्षमता को पहचानना माचवे का ध्येय प्रतीत होता है ।

डा. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने "भारतीय संस्कृति" को नाना संस्कृतियों का संगम कहा है, उसी रूप में उसके नानत्व को माचवे भी उसकी

---

1. प्रभाकर माचवे - "अनुक्षण" -पृ. 68 - संस्करण-1959, "झंझा और वृक्ष" शीर्षक कविता से ।

शक्ति ही मानते हैं । माचवे का विचार था -

"राष्ट्र वृक्ष-सा जिस पर बसते नाना स्वर के पाखी,
यहाँ न कोई नियम कि सब का एक रंग या मत हो ।"[1]

भारत रूपी वृक्ष पर कई रंग के, कई धर्म के, वेश-भूषा के पक्षी निवास करते हैं । माचवे का कथन है -

"ओ भारत की जनता ।
विविध रंग की, विविध जाति की, विविध रूप जनता ।
यहाँ परस्पर बन्धु भाव है उदारता सज्जनता ।
ओ भारत की जनता ।
यहाँ त्याग ने पूजा पाई, अर्पित है अशरणता ।
ओ भारत की जनता ।।"[2]

भौतिक सन्दर्भ में महत्वपूर्ण न लगते हुए भी जीवन की सदाशयता को मूल्यसापेक्ष दृष्टि से कवि ने प्रस्तुत किया है । वैविध्य की ओर कवि की दृष्टि गई है लेकिन मूल्य उस त्याग को दिया गया है, जो भारतीयता को सही मायने में परिभाषित करता है । एकत्व को भौतिकता

---

1. प्रभाकर माचवे -"अनुक्षण" -पृ. 68 - संस्करण 1959 - "झंझा और वृक्ष" शीर्षक कविता से ।
2. प्रभाकर माचवे - "अनुक्षण" - पृ. 96 - संस्करण 1959 - "मुक्ति देवता ! प्रणाम !" शीर्षक कविता से ।

और आस्थावादिता से मिलाने का कार्य प्रभाकर माचवे ने किया है ।
निम्नांकित कविता उसका उदाहरण है -

"जो कि एक है वही चाहता है अनेक कैसे बन जाऊँ,
जो कि एक नहिं विरह की विषम वेदना में जलता है,
जो अनेक है, वही चाहता सतत एक कैसे बन जाऊँ
जो अनेक नहिं वही अचेतन अगति यातना में पलता है !"[1]

भारतीय मूल्यों के प्रति आस्थावादी दृष्टि :-

भारतीयता एक महत्वपूर्ण मूल्य है । जीवन के प्रति उसकी दृष्टि आस्थावादी है । माचवे अपनी कविताओं में प्रखर आस्थावादी है कि वे हर अंश में अंकुरने वाली शक्ति का स्पन्दन देखते हैं । मूल्यों के बारे में माचवे का मत है - "मूल्य बदलते रहते हैं, इसका अर्थ यह नहीं है कि कोई स्थायी मूल्य या कोई स्थिर तत्व है ही नहीं । लेकिन दोनों बातें द्वन्द्वात्मक रूप से विद्यमान रहती है । हमारे यहाँ चक्र की उपमा कही गयी है । चक्र की धुरी जो है, वह तो स्थिर रहती है, लेकिन उसके आरे बराबर घूमते रहते हैं । स्थिति-गति के इस समन्वय से इस तरह के परंपराघात से, सारी मानव-प्रगति होती रहती है ।"[2] माचवे का आगे कहना है -

---

1. डा. कमल किशोर गोयनका {संपादक} "प्रभाकर माचवे प्रतिनिधि रचनाएँ" पृ. 18, संस्करण 1985 - "व्यष्टि-समष्टि" शीर्षक कविता से ।
2. रत्ना लाहिड़ी - "मूल्य: संस्कृति, साहित्य और समय" {साक्षात्कार} पृ. 62, प्रथम संस्करण - 1987.

"मैं समझता हूँ कि पहला मूल्य जो मंगलकारी मूल्य हमारे भारत का है, वह अहिंसा का मूल्य है । उसको मैं बहुत महत्व दूँगा । मैं बुद्ध को बहुत मानता हूँ । मैं समझता हूँ कि बुद्ध ने सब से पहले हमारे यहाँ विचारों में क्रांति की । तो बुद्ध और महावीर ने जिस अहिंसा की बात कही थी, उसी को गाँधी जी ने बड़े पैमाने पर लागू किया । वह मूल्य मैं समझता हूँ कि साहित्य का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण मूल्य है ।"[1]

"अहिंसा, शक्ति के आगे निर्बल है, शस्त्र, तोप, बम,
हाथी ज्यों एक जा बैठना धरना दें, अडिग शक्तिवान्
सड़क के "स्टीम रोलर" का यांत्रिक सामर्थ्य सब वृथा ।
शत्रु की अन्तरात्मा को जीता, फिर क्या बचा रहा,
हृदय की भावना बदली, प्रेम की वेदना सही ।
क्षमा से बढ़कर क्षमता दंड क्या परिताप से ?
सत्ता जो अशरीरी है, विश्वव्यापी, सदा बली
टिकेगा उसके सम्मुख क्या सत्ता मद पाशवी ?
अहिंसा नीति सर्वोत्तम मानवीपूर्ण मानवी ।"[2]

अहिंसा मनुष्य जीवन का सबसे बड़ा मूल्य है । लेकिन आज संसार में न अहिंसा है और न शान्ति । ऐसी स्थिति पर दुःख प्रकट

---

1. रत्ना लाहिड़ी -"मूल्य: संस्कृति, साहित्य और समय" [साक्षात्कार] पृ. 65 - प्रथम संस्करण 1987.
2. प्रभाकर माचवे -"अनुक्षण" - पृ. 102 - संस्करण 1959 - "मुक्ति दवता! प्रणाम !" शीर्षक कविता से ।

करते हुए माचवे का कथन है -

"और वेटिकन में हैं मन्त्रोच्चारण लैटिन,
और स्पेन में फ्रान्को, मॉस्को में मेगाटन
बर्लिन में दीवार, हंगरी रक्त-क्रांति में.....
यूरोप में, जग में, न अहिंसा, न ही शान्ति है ।"[1]

जब कभी भारत में मूल्यों की क्षति हुई है, ऐसे अवसर पर कोई न कोई महात्मा जन्मे हैं । ऐसे महात्माओं में गौतम-बुद्ध, गाँधीजी का नाम आदर से लिया जाता है । माचवे ने अपनी कविताओं में इस सत्य की घोषणा की है -

"आर्य सभ्यता जब कि हो गई दूषित खंडित,
नर बलि, पशु-बलि हुई अदंडित, मूर्ख हो गये पंडित,
तब भारत के जन-जन के मन से ध्वनि गुँजित,
राजगृह की, वैशाली की प्रबुद्ध जनता अविजित
जब-जब ऐसा तिमिर देश में धुँधलाता गत-आगत
संत महात्मा हुए, और तब आये दीप्त तथागत ।"[2]

---

1. प्रभाकर माचवे - "मेपल" - पृ. 56 - संस्करण 1967 " " शीर्षक कविता से ।
2. प्रभाकर माचवे - "अनुक्षण" - पृ. 98 - संस्करण 1959 - "मुक्ति देवता ! प्रणाम !" शीर्षक कविता से ।

प्रस्तुत कविता मात्र बुद्ध की महिमा को रेखांकित करनेवाली नहीं है । यह उस जनता की महिमा को रेखांकित करती है, जो यथावसर अपने मूल्यों की संरक्षा करते हुए देशीय अस्मिता को प्रोत्साहित किया है । गीता श्लोक की अनुगूंज भी इस में मिलती है ।

माचवे ने अपनी कविताओं के माध्यम से हमेशा भारतीय मूल्यों को बढावा दिया है और मूल्य-विघटन पर दुःख प्रकट किया है । उनका विचार है कि -"हमारे भारतीय साहित्य में देखते हैं कि जो पुराने मूल्य थे, उनमें जो मंगलकारी तत्व थे, उन सब को हम लोगों ने ताक पर रख दिया ।"[1]

परंपरा, इतिहास और संस्कृति का समन्वित बोध :-

परंपरा, इतिहास और संस्कृति का बोध भी भारतीयता का एक लक्षण है । माचवे की कविताओं में यह तत्व पर्याप्त मात्रा में मिलता है । माचवे ने भारतीय संस्कृति, परंपरा और इतिहास का मनन मंथन किया है । "ईस्ट वर्सेस वेस्ट इन फिलोसाफी एण्ड लाइफ" "फोर डिकेड्स ऑफ इन्डियन लिटरेचर", बुद्धिज़्म इन इंडिया एण्ड सीलोन",

---

1. रत्ना लाहिड़ी - "मूल्य संस्कृति, साहित्य और समय" {साक्षात्कार} पृ. 64 - संस्करण 1987.

"प्रोबेल्मस् ऑफ इन्डियन लिटरेचर", "भारत और एशिया का साहित्य", आदि माचवे के प्रसिद्ध ग्रंथ इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं । जिस व्यक्ति में परंपरा, इतिहास, साहित्य, दर्शन आदि का ज्ञान नहीं है, वह ऐसे ग्रंथों की रचना नहीं कर सकता । माचवे की कविताओं में भी परंपरा और संस्कृति के रचनात्मक संकेत प्राप्त होते हैं ।

माचवे के परंपरा-बोध का प्रत्यक्ष प्रमाण है - भारतीय विभूतियों के प्रति श्रद्धांजलिपरक उनकी कवितायें । हमारी संस्कृति, पूर्वजों या अग्रगामियों का नमन करता है या श्रद्धापूर्वक स्मरण करता है । माचवे ने अनेक कवितायें भारत के महान विभूतियों के बारे में लिखा है । भगवान्-बुद्ध, महात्मा-गाँधी, रवीन्द्रनाथ आदि पर माचवे की कवितायें हैं । एक उदाहरण यों हैं -

"एक भगीरथ के प्रयत्न का फल ; सुरसरिता, जीवन-संचय,
और दूसरा तपःपूत अतिवृद्ध धरि-गंभीर हिमालय ।
दोनों भारत की प्राचीन संपदा के संवाहक, रक्षक,
भारत-माँ के लाल लाड़ले । पश्चिम की रण-भू के प्रेक्षक -
तटस्थ । हिंसा समाघात के प्रखर विरोधी । संस्कृति-पूजा
दोनों को प्रिय । एक मेघ-विस्तार और पावस है दूजा ।
हिमगिरि की उन्नत गरिमा के प्रहरी, मौन-मुखता-प्रेमी,
दृष्टा, साधक, शोधक, प्रयोगवेत्ता और प्रखरता-नेमी ।
एक सत्य को खोज रहा है, अशिव-भस्म तन रमा, शिवम् में

और दूसरा सत्यम और सुन्दरम् एक मानता हम में ।"[1]

"विश्वकर्मा" खण्ड काव्य में, मनु की सोच के संदर्भ में - शंकर, रामानुज, महावीर, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद, नानक आदि का उल्लेख माचवे ने किया है । ये विभूतियाँ भारतीय संस्कृति एवं परंपरा के सन्देशवाहक रहे हैं । इन विभूतियों के प्रति माचवे के मन में अगाध-श्रद्धा एवं आस्था है । इन महात्माओं के अपने-अपने मत थे, लेकिन सब मतों का मूल भाषा तो एक ही है -

"शंकर आयें, या रामानुज,
महावीर हों या कि तथागत,
ईसा या कि मुहम्मद, नानक,
सबके हैं अपने-अपने मत,
हम अपनायें वह शाश्वत व्रत,
जिसको कहते "तत्सत्" ।"[2]

आध्यात्मिकता की इच्छा के बावजूद, उसे ठोस यथार्थ के रूप में अपनाने की दृष्टि ही माचवे में बलवती हैं । सब में समाहित सत् की

---

1. प्रभाकर माचवे - "अनुक्षण" - पृ. 61, संस्करण 1959 - "गाँधी और रवीन्द्रनाथ" शीर्षक कविता से ।
2. प्रभाकर माचवे - "विश्वकर्मा" - पृ. 60 - संस्करण 1988 - "अपराह्न" शीर्षक से ।

भावना का जितना आध्यात्मिक उन्मेष है, उतना ही ऐहिक उन्मेष भी मिलता है ।

पारमार्थिकता और भौतिकता का समन्वय :-

माचवे ने अपनी कविता को सदैव मानवीय संदर्भ देने का कार्य किया है । दार्शनिक पद्धतियों से परिचित होने के कारण, उन्होंने विभिन्न धर्मों के स्थायी भाव को अपनाया है । वह अन्ततः एक ही है । कविताओं में यथास्थान ऐसी शक्तियों को वे स्थान देते हैं और हमारी विरासत की इस पारमार्थिकता और लौकिकता के समन्वय पर ज़ोर देते हैं -

"हुए सिद्ध, हुए संत,
बार-बार कहते
"अपने को पहचान"
"आत्मानं विद्धि"
नो दाई सेल्फ"
तेरे ही भीतर है,
तेरा शत्रु - मित्र
सब नश्वर या ईश्वर
सांत और वह अनंत
"तू ही घृणा-प्रेम,
और तू ही है पवित्र और अपवित्र ।"[1]

---

1. प्रभाकर माचवे - "विश्वकर्मा" - पृ. 76 - संस्करण 1988 - "द्वाभा" शीर्षक से ।

पारमार्थिकता और भौतिकता का सन्निवेश इस कविता में हुआ है । शुच और अशुच को धारणा को इस कविता में विकसित किया गया है ।

कहीं - कहीं यही भाव भारतीयता के भौतिक भावों के साथ घुल-मिल जाता है । स्थान विशेषों की महत्ता पर ज़ोर देते हुए, उसी एक भाव को, जो समन्वयात्मकता पर अधिष्ठित है, व्यक्त किया गया है । भावात्मक एकता का एकायामी भाव ही इस कविता में नहीं है । आस्था का गहराता स्तर भी इस में से मिलता है । अखण्डता की संस्कृति की सच्चाई के रूप में ये कविता विकसित होती है । यही नहीं कि इस कविता में भिन्न मार्गी लोगों की आकांक्षा को स्थान-विशेष में पिरोने का कार्य भी उन्होंने किया है । स्पष्ट है कि उनकी कविता भारतीयता का कभी मूल्य ढूँढती है कभी भारतीयता का भौतिक अवशेष । दोनों हमारी दृष्टि को प्रकाशित करते हैं । कविता यों है -

"सारी सभ्यता की रम्य,
भव्य उच्च मीनार
हहराकर भरभराकर
ढहेगी, हो मिस्मार
अजंता के भित्ति-चित्र,
बृहदेश्वर आम्लक,
मीनाक्षी मंदिर, महाबलीपुरम्

ताज, कुतुब मीनार
सिन्धु दुर्ग, स्वर्ण शिखर
तिरुपति या अमृतसर
होंगे सब बेकार !"[1]

कविताओं का प्रकृति संदर्भ और भारतीयता :-

प्रकृति संदर्भ या ऋतु संदर्भ भारतीय संकल्प ही है । कालिदास जैसे भारतीय कवियों की रचनाओं में प्रकृति संदर्भ पर्याप्त मात्रा में है । कालिदास की महान कृति "ऋतुसंहार" पूरा का पूरा ऋतु संदर्भ ही है । इसमें छह सर्गों में छः ऋतुओं का वर्णन है । जैसे प्रथम सर्ग में ग्रीष्म का वर्णन है तो दूसरे सर्ग में वर्षा का वर्णन है । तीसरे सर्ग में शरद का, चौथे सर्ग में हेमन्त का, पाँचवें सर्ग में शिशिर का और छठे सर्ग में वसन्त का वर्णन हुआ है । कालिदास की अन्य रचनाओं में भी इस प्रकार के प्रकृति संदर्भ मिलते हैं ।

माचवे की कविताओं में भी पर्याप्त मात्रा में प्रकृति या ऋतु प्रसंग मिलते हैं, जिन्हें कवि ने प्रकृति के संदर्भ में देखा है । एक उदाहरण इस प्रकार है -

---

1. प्रभाकर माचवे - "विश्वकर्मा" - पृ. 72 - संस्करण 1988 - "द्वाभा" शीर्षक से ।

"शिप्रा, चंबल, कालीसिन्धु.... उतरो नीचे, छोड़ो विन्ध्य !
झर - झर झरती सरिताधार,
तोड़, फोड़ चट्टान, कगार
अष्टदिशा में जल विस्तार
बहता मानो आत्मानन्द-शिला-बन्ध तजकर स्वच्छन्द !"[1]

एक अन्य ऋतु संदर्भ इस प्रकार है -

"हेमन्त श्रीमन्त गज झूमता सा
आया लिये झूल नव-शस्य-बाली
आया, हुई, हर्ष विह्वल बनाली ;
ठंडी हवा को लिए-घूमता सा ।
हेमन्त है मन बने हेम जैसे
कहीं चौकड़ी भूल ठिठके अनश्वर
किसी वंश-वन में सुना निर्झर-स्वर
पुनः घूमती हो शनैः टेक जैसे ।"[2]

इनके अतिरिक्त "वसन्तागम", "वर्षा की गीत", "अवश्वत्थ" "शिशिर वसंतो पुनरायातः", "कार्ला की गुफाएँ", "विन्ध्या में", "तीन पेड़", "अन्तरीप", "पुलिन", "मेघ-मल्लार", "वृष्टि", "काशी के

---

1. प्रभाकर माचवे - "अनुक्षण" -पृ. 78 - संस्करण 1959 - "मालव-सरिताओं से" शीर्षक कविता से ।
2. प्रभाकर माचवे - "स्वप्न-भंग" - पृ. 15 - संस्करण 1957 - "हेमन्त" शीर्षक कविता से ।

घाट पर", "बादल बरसै- मूसलधार", आदि कविताओं में प्रकृति को आज़माने का ढंग भारतीय कहा जा सकता है । असल में इन प्रकृतिपरक कविताओं में प्रकृति की सहज स्वीकृति है, जो प्रदेश के अनुभवों से परिणत होती है ।

पर्वों, त्योहारों का संकेत और भारतीय दृष्टि :-

अपनी मिट्टी के प्रति माचवे का अनुराग हैं, अतः भारत के अनेक स्थानों, पर्वों एवं त्योहारों का चित्रण भी माचवे की कविताओं में मिलता है । माचवे ने स्थानों, पर्वों या त्योहारों का यों ही वर्णन अपनी कविताओं में नहीं किया है, बल्कि विवरणात्मक चित्रों के साथ अपनी मिट्टी से जुड़ने का भाव भी तीव्र हैं । यह भी भारतीयता का एक लक्षण है । ये पर्व, त्योहार, उत्सव तो हमारे संस्कारों के अंश ही हैं । इस संदर्भ में रमेश कुन्तल मेघ का कहना है -"भारतीयता की कसौटी तो जाति, धर्म, सामन्तीय संस्कारों में जकड़ा परिवार, चरखे का अर्थ-तंत्र, पंचायत की गठन व्यवस्था और तीर्थोंवाली नगर-चेतना ही हो सकती हैं ।"[1] माचवे की कविताओं के संदर्भ में भी ऐसा प्रसंग या तीर्थों वाली नगर-चेतना देखा जा सकता है । माचवे ने अपनी कविताओं में अनेक तीर्थस्थानों, नगरों का भी वर्णन किया है । एक उदाहरण इस प्रकार है -

---

1. रमेश कुन्तल मेघ - "आधुनिकता-बोध और आधुनिकीकरण" - पृ. 29 - संस्करण - 1969 - "भारत और भारतीयता" शीर्षक लेख से ।

"कितने अद्भुत विविध-वर्ण के
पीले, लोहित, नील, स्वर्ण के
पुष्पों की सुगन्ध से मोहित,
चन्दन-चर्चित वन-वन करता मन्त्रोच्चारण,
मलय-पवन भागा करता निर्वसन पुरोहित
प्रलम्ब मुक्त-कुंतला-बाला
या जुड़े ये नागवेणियाँ केतकि-उपवन
श्यामच्छाया के घन-अंचल में जैसा सतरंगा रोहित !
दक्षिण भारत के वे विशाल गोपुर, कोकिल,
भव्यवस्तु के कुशल शिल्प के, स्मारक अक्षय
प्रस्तर में मानव का गौरव !"[1]

इसमें "महाबलीपुरम्" का संपूर्ण इतिहास, संस्कृति के कई दृश्य अंकित हैं । एक अन्य उदाहरण यों है -

"है अब की नव-दुर्गा आई संदेश नया लेकर घर-घर,
हो चुका बहुत धर्मान्धों का आपसी युद्ध, बर्बर संगर
इस धर्मान्धों ने गांधी को मारा, गृह-युद्ध बढ़ाया था,
जो क्षुद्रों ने उत्पात मचाया और गज़ब यह ढ़ाया था,
पर आज करें हम प्रण-काली माँ ! दो हम को बल और धीरज
मुझ को प्यारा है एक धर्म-भारत माँ की धरती का रज ।"[2]

---

1. प्रभाकर माचवे - "अनुक्षण" -पृ. 109 -संस्करण 1959 - "महाबलीपुरम्" शीर्षक कविता से ।
2. प्रभाकर माचवे -"अनुक्षण" -पृ. 77 -संस्करण 1959 - "विजय-दशमी" शीर्षक कविता से ।

माचवे का "स्वप्न-भंग", काव्य संग्रह की "फतहपुर-सीकरी", "पुरानी-दिल्ली", "नयी-दिल्ली", "असम", "दक्षिण के मन्दिर", "ब्रह्मपुत्र-कामाक्षी", "आगरा", "उज्जयिनी में" आदि कवितायें तथा अन्य कई कविताओं में स्थानों, पर्वों, त्योहारों का वर्णन है । इसे क्षेत्रीयता से ओतप्रोत संकीर्ण दृष्टि कहना उचित नहीं होगा । इन में क्षेत्रीयता से देशीयता की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति अधिक है ।

भारतीय दर्शन के सिद्धांत :-

भारतीय वेदान्त और दर्शन के बहुत से सिद्धांत माचवे की कविताओं में उपलब्ध हैं । जैसे मनुष्य का जीवन [शरीर] नश्वर है और आत्मा अनश्वर है । इस संसार में कुछ भी स्थिर नहीं है । इस तथ्य को माचवे ने अपनी कविताओं के माध्यम से व्यक्त किया है ।

"कितने कमरे, कितने डिब्बे, कितने बर्थ और कितने घर,
बदले जीवन में-बसने का मोह पुन: क्यों-क्यों उभरा रे,
यह जग केवल एक कारवाँ-सराय या "ग्रैण्ड-होटल" या पुल,
कितने हैं गृह द्वारा निर्वासित, वनवासी टूटे तारे ।"[1]

---

1. प्रभाकर माचवे - "मेपल" - पृ. 41 - संस्करण 1967 - "एक जिन्दगी एक किराये का कमरा" शीर्षक कविता से ।

एक अन्य उदाहरण यों हैं -

"यार, मंजिल है अपनी दूर, दूर है अभी एक झाँकी !
किन्तु रे, अस्तप्राय दिनमान,
पस्त हिम्मत क्यों, प्राण ?
काहे तुम अबही से उदास हो जी ?
हम तो उस शाश्वत खोजी,
काहे सोजा सोजी ?
उड चलो, संगी रे, मन मौजी !"[1]

इन कविताओं पर "श्रीमद् भगवद्गीता" की ध्वनि है । हमारे जीवन का कभी भी नाश नहीं होता, अन्त नहीं होता, केवल बाहरी तौर पर परिवर्तन होता है । आत्मा कभी मरती नहीं -

"वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यान्यानि संयाति नवानि देही ।।"[2]

इस तरह के कई सिद्धांतों की व्याख्या माचवे की कविताओं में हुआ है । एक अन्य दार्शनिक चिन्तन यों हैं -

---

1. प्रभाकर माचवे -"अनुक्षण" -पृ. 22 - संस्करण 1959 - "राही और राजकिशोरी" शीर्षक कविता से ।
2. "श्रीमद् भगवद्गीता" - पृ. 51 - अध्याय-2, संस्करण 1981.

"व्यर्थ यह महाभूत,
व्यर्थ ताप, व्योम, भू
व्यर्थ आप,
व्यर्थ मैं, व्यर्थ तू ।"[1]

भारतीय परंपरा का आख्यान -"विश्वकर्मा" :-

प्रभाकर माचवे का प्रसिद्ध खण्डकाव्य है - "विश्वकर्मा" । इस खण्ड काव्य में मिथकीय कथा के माध्यम से वर्तमान युग की ज्वलन्त यांत्रिक एवं आणविक समस्याओं पर प्रकाश डाला है । साथ ही यह काव्य, भारतीय परंपरा का आख्यान भी है । इसकी विस्तृत भूमिका में भारतीयता का भारतीय परंपरा का स्पष्ट संकेत हैं । माचवे के मन में भारतीय-परंपरा के प्रति अगाध प्रेम है । "विश्वकर्मा" खण्ड काव्य की कथा भी भारतीय परंपरा से जुड़ी है । भारत में सूर्योपासना बहुत पुरानी मानी जाती है । "किसी मनुष्य को सूर्य बनने का सौभाग्य नहीं मिल सका । हम इतना ही सोचें कि हम सब प्रकाश-पथगामी बनें ।"तमसो मा ज्योतिर्गमय....."[2] वस्तुत: सूर्योपासना भारतीय परंपरा का अंश ही है ।

---

1. प्रभाकर माचवे - "अनुक्षण" - पृ. 112 - संस्करण 1959 - "अन्तरीप" शीर्षक कविता से ।
2. प्रभाकर माचवे - "विश्वकर्मा" - पृ. 13 - संस्करण 1988 - "भूमिका" से ।

युग-युगों से चली आ रही सूर्य-छाया, विश्वकर्मा और मनु की यह गाथा जितनी पुरानी है, उतनी ही नयी भी । अतः इसका मिथकत्व स्पष्ट है । माचवे ने स्वयं मिथकत्व के संबंध में अन्यत्र संकेत दिया है -

"वैसे यह पुराण हैं, किन्तु नव-नव है,
ध्यान दें, इस में इतिहास है,
मानवता के इस में
अश्रु और हास हैं
कैसे वह स्वतंत्र बना,
कैसे वह दास है,
कैसे उसकी पत्नी भी,
दूर है कि पास है
क्यों मानव प्रकृति से,
खुश है, उदास हैं ।"[1]

प्रस्तुत पुराण कथा को उठाने का माचवे का उद्देश्य, उसे आधुनिक प्रासंगिकता से जोडना रहा है । इसलिए माचवे ने यहाँ प्रकृति के आदिम शक्ति-स्त्रोत सूर्य के विरोध में विश्वकर्मा की वैज्ञानिक तांत्रिक अहंता को खडा किया है । इनके माध्यम से कवि ने कई बडे प्रश्न उठाने का प्रयत्न किया है । पर्यावरण की शुद्धि और प्रदूषण, यंत्र का मानव

---

1. प्रभाकर माचवे - "विश्वकर्मा" - पृ. 99 - संस्करण 1988 - "उषा" शीर्षक से ।

पर हावी होना, नारी-पुरुष की स्पर्धा, धनसत्ता और तांत्रिकी {टेक्नोलॉजी} का गठबंधन और मनुष्य का बढ़ता हुआ एकाकीपन और आत्म निर्वासन । दर असल यांत्रिकता का विरोध - प्रगतिवादी विचार नहीं है, बल्कि जब कभी यांत्रिकता का अभियान हुआ है, तब मनुष्य को अनदेखा किया है । बढ़ती यांत्रिकता और जटिल से जटिलतर होती जा रही जीवन-स्थितियों पर आधारित यह कृति एक भव्य रचना है ।

भारतीय आदर्शों की स्थापना :-

प्राचीन परंपरा, आदर्श और संस्कृति की ओर उन्मुखता भी भारतीयता का एक लक्षण कही जानी चाहिए । माचवे को भारतीय परंपरा, संस्कृति, आदर्श आदि का बोध है । जैसे वी.के.गोकक का कथन है - "अपनी संस्कृति या परंपरा का पूर्णबोध भारतीयता का एक प्रमुख लक्षण है ।"[1] इस दृष्टि से देखें तो माचवे की कविताओं में भी परंपरा-बोध पूर्णरूपेण विद्यमान है । "विश्वकर्मा" में भी ऐसे कई स्थल हैं, जहाँ वे परंपरा के पोषक बने दीखते हैं । पारिवारिक क्षेत्र में भी पारंपरिक दृष्टि का विन्यास है -

---

1. Edited by Ramesh Mohan - "Indian writing in English".page No "An Indian is a person who owns up the entire Indian heritage and not merely a portion of it. This integral cultural awareness is an indispenable feature of Indianness".

"पति - घर ही, कन्या का परम धाम,
उससे मुँह मोड़कर
निज पति को छोड़कर
पाओगी कैसा सुख, कैसा फिर विश्राम ?
युग - युग से मर्यादा,
चली आई - अन - बाधा,
राधा का कृष्ण और कृष्ण की राधा
इसी तरह चलता आया पथ,
दो चक्रों से जैसा यह रथ
बाँट-बाँटकर सुख-दुःख दोनों झेलें आधा-आधा ।"[1]

भारतीय परंपरा के अनुसार पति का घर ही, स्त्री का परम धाम है । उस धाम से मुँह मोड़ने से स्त्री कभी सुखी नहीं हो सकती ।

माचवे एक रूढ़ परिवार का चित्र अंकित नहीं कर रहे हैं -

"माता-पिता, पुत्र-पुत्री-वधू,
मिलकर बना एक परिवार,
और कई परिवारों का संचित मधु,
यह अपना संसार,

---

1. प्रभाकर माचवे - "विश्वकर्मा" - पृ.31 - संस्करण 1988 - "मध्याह्न: सूर्यहीन छाया" शीर्षक से ।

किन्तु एक भी ईंट अगर हो कच्ची,
किन्तु एक भी भीत नहीं हो सच्ची,
तो यह सारी संरचना ही
ढह पड़ती ज्यों निराधार ।"[1]

निरी भौतिक दृष्टि का त्याग श्रेष्ठ जीवन के लिए अनिवार्य हैं । यह एक भारतीय दृष्टि है । संपूर्ण त्याग सामान्य जीवन में संभव नहीं है । विरक्त रहने से ही आसक्ति को छोडा जा सकता है । आसक्ति की अधिकता के कारण ध्वंस का क्रम शुरू होता है -

"भीतर से मनु खाली - खाली,
गोली, तोपें, बम, पामाली,
इतने सब संहार किये,
फिर भी सुख निस्सार हुए,
मिली नहीं वह शांति निराली ।"[2]

यही भाव "मेपल" की एक कविता में भी उपलब्ध है -

---

1. प्रभाकर माचवे - "विश्वकर्मा" - पृ. 56 - संस्करण 1988 - "अपराह्न" शीर्षक से ।
2. प्रभाकर माचवे - "विश्वकर्मा" - पृ. 52 - संस्करण 1988 - "अपराह्न" शीर्षक से ।

"नहीं चाहिए भावी-पीढ़ी लुंज-पुंज हो,
विकृतांग या संक्रामक रोग उलीचे
नहीं चाहिए हमें राख के ढेर, ध्वस्त खेती,
श्मशान बस पीछे -
मत दुनिया को प्रतिहिंसा की
इस भट्टी में झोंको
रोको, रोको,
अणु के अस्त्र-परीक्षण रोको !"[1]

अत्यन्तिक यांत्रिकता मानव भविष्य के लिए घातक एवं विनाशकारी हैं । अतः मनु यांत्रिकता एवं तांत्रिक अहंता से अपना नाता तोड, प्रकृति के तेजोमय पुरुष अपने पिता सूर्य की ओर अभिमुख होता है । माचवे एक कटु सत्य की ओर भी संकेत करते हैं -

"कितनी-कितनी उन्नति
कितना-कितना विकास
मानव यों समझ मैं
लाया हूँ, स्वर्ग पास,
फिर भी यह क्या हुआ ?
मानव का ज्ञान शाप,
वरदान से उल्टे

---

1. प्रभाकर माचवे - "मेपल" - पृ. 38 - संस्करण 1967 - "सौ का मार्च" शीर्षक कविता से ।

बना कैसे चुपचाप ।"[1]

"विश्वकर्मा" दर असल एक समकालीन कथाकाव्य है । उसमें समकालीन असंगति का एक सही परिपार्श्व हैं । इसलिए माचवे लिखते हैं - "भारत जैसी तीसरी दुनिया के महादेश में पूँजीवादी और साम्यवादी देशों के आज़माये हुए समाधान ज्यों के त्यों कारगर नहीं होंगे । यहाँ एक तीसरा रास्ता ही अपनाना होगा, जो विकेन्द्रीकरण, आत्मनिर्भरता, प्रकृति की ऊर्जा से जुड़ने से ही संभव होगा ।"[2]

इस वक्तव्य में भी समकालीन प्रसंग ही स्पष्ट होता है । लेकिन यह भारतीयता की बुनियादी दृष्टि के विपरीत नहीं है । यहाँ माचवे ने प्रकृति की ऊर्जा से जुड़ने की बात कही हैं । यह इस दृष्टि का परिणाम है, जिस में कवि मनुष्य को प्रकृति का अंग मान रहे हैं ।

स्वीकार की भावना :-

डा. प्रभाकर माचवे भारतीय साहित्य, कला और संस्कृति की विरासत को भाषा, विधा, निकाय, वर्ग, कद या विचार की संकीर्ण

---

1. प्रभाकर माचवे - "विश्वकर्मा" - पृ. 67 - संस्करण 1988 - "सूर्यास्त" शीर्षक से ।
2. प्रभाकर माचवे - "विश्वकर्मा" - पृ. 11 - "भूमिका" से ।

दीवारों से जकड़कर नहीं देखते । माचवे इस अक्षय धरोहर को विराट सांस्कृतिक वटवृक्ष के रूप में देखते हैं । भारत एक पुरातन देश है तथा उसकी सब से बड़ी विलक्षणता उसकी गरिमामय संस्कृति है । भारतीय संस्कृति की सब से बड़ी विशेषता, भारत के वैविध्य में विद्यमान अनोखी एकता है । भौगोलिक, प्राकृतिक, आचार-विचार, वेश-भूषा एवं भाषापरक विविधताओं में भी परिलक्षित इस अनोखी एकता की भावना को बनाये रखने में माचवे ने जीवन भर कोशिश की है । प्राचीन काल से ही भारत के आचार्यों ने इस अनूठे तत्व को अक्षुण्ण बनाये रखने में प्रयत्नशील रहा है । अज्ञेय के अनुसार 'भारतीयता का विशिष्ट गुण है - स्वीकार की भावना ।'[1] स्वीकार की भावना माचवे की कविताओं में भी परिलक्षित होती है । माचवे ने अपनी कविताओं में भारतीय-भाषाओं के कई शब्दों का प्रयोग किया है । इसके अतिरिक्त प्रचलित विदेशी शब्दों का अनुकूल और उन्मुक्त प्रयोग माचवे की कविताओं में मिलता है । अतः 'भाषिक-एकात्मकता को बनाये रखने में माचवे सफल रहे हैं । एक उदाहरण यों हैं -

'श्यामच्छाया के घन अंचल में जैसा सतरंगा रोहित ।
दक्षिण भारत के वे विशाल गोपुर, कोविल
भव्य वास्तु के, कुशल शिल्प के, स्मारक अक्षय,
प्रस्तर में मानव का गौरव !'[2]

---

1. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी (संपादक) - 'अज्ञेय' - पृ. 86 - संस्करण 1978 'भारतीयता' शीर्षक लेख से ।
2. प्रभाकर माचवे - 'अनुक्षण' पृ. 109 - संस्करण 1959 - 'महाबलीपुरम्' शीर्षक कविता से ।

'गोपुर' के साथ तमिल-शब्द 'कोविल' का प्रयोग करके माचवे ने भाषा के बीच की दूरी को मिटाया है। यह एक उदाहरण भर है। अन्यत्र भी कई उदाहरण मिलते हैं। जान-बूझकर किया हुआ प्रयोग कविता की आत्यन्तिक संवेदना को भी बदल सकता है। इसके लिए अपनी भाषा के घेरे से निकलने की आवश्यकता है। उसके लिए विशाल मन की आवश्यकता है।

विभिन्न भाषा के शब्दों के अतिरिक्त विभिन्न भाषाओं के उद्धरणों को अपनी काव्य-पंक्तियों के साथ जोडने की प्रवृत्ति भी माचवे में है। एक उदाहरण इस प्रकार है -

"आज भी भयानक है शीत,
सख्त ठंडी हवाएँ हैं,
फिर भी हम आये हैं
गाते हुए वह शचीन्द्र प्रिया-गीत।
साथ यह केरल के कवि गण हैं।
कोई सूर्यस्तोत्र गुनगुना रहा
'दारिद्र्य दुःखक्षय कारणं च
पुनातु मॉं तत्सवितुर्वरेण्यम्।'[1]

---

1. प्रभाकर माचवे - "अनुक्षण" - पृ. 114 - संस्करण 1959 - "अन्तरीप" शीर्षक कविता से।

इनके अतिरिक्त अन्य भाषाओं के छन्द, लय, धुन, शैली आदि को माचवे ने अपनाया है । आज भारत की सभी भाषाओं का झुकाव, लोकगीत, लोकभाषा, लोकनाट्य, लोकधुन की ओर है । माचवे की कविताओं में भी यह लोकोन्मुखता दिखाई देती है । यह असली भारतीयता है । इसके माध्यम से कवि रचना के बाह्य कलेवर को ही बदलता नहीं, बल्कि कविता के आन्तरिक तत्व को परिवर्तित करता है ।

माचवे साहित्य और जीवन को उसकी संपूर्णता और विविधता में जीते रहे । साहित्य, संस्कृति, दर्शन, इतिहास, पुरातत्व, धर्म एवं आध्यात्म, ललित-कला - उनकी सक्रियता के साथी हैं । मध्यकाल में विद्यमान विभिन्न संतों और मनीषियों का जैसा व्यवस्थित आकलन माचवे ने प्रस्तुत किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ हैं । भारतीय मनीषियों पर उनका लेखन और मूल्यांकन के द्वारा, माचवे ने हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाया है । माचवे जी में भारत की पावन मिट्टी की गंध विद्यमान है । वे विविधता में एकता की प्रतिमूर्त्ति भी हैं । माचवे की कविताओं में भी मिट्टी की गंध वर्तमान है । भारतीयता की खोज मिट्टी के साथ जुडकर ही संभव है ।

अध्याय छः

माचवे की कविताओं का शैल्पिक अध्ययन

माचवे की कविता शिल्प की संभावनाएँ :-

बचपन से ही माचवे के मन में कविता के प्रति लालसा रही है। साथ ही इस विधा में कुछ नया कर गुज़रने की इच्छा उनमें प्रारंभ से रही।[1] सन् 1938 में अज्ञेय ने जब उनकी "दो इम्प्रेसनिष्ठ कविताएँ" "विशाल भारत" में प्रकाशित कीं, तो वह विद्वानों के बीच चर्चा का विषय बनी रही। सन् 1943 में अज्ञेय ने "तार सप्तक" का प्रकाशन किया और माचवे एक सहयोगी कवि बने। "तारसप्तक" में माचवे का वक्तव्य एक ऐसे कवि का प्रतिवेदन है, जो निरी भावुकता को कविता नहीं मानता और न ही उसकी अमरता को पर्याप्त मानता है।"[2] माचवे का मत था कि "कला की अपनी स्वयं-निर्णीत तर्क-पद्धति होती है। इसलिए रचना की प्रक्रिया पर ही कुछ कहा जा सकता है वस्तु"विषय, व्यंजना आदि पर।"[3] माचवे का इस कथन का विश्लेषण अनिवार्य हैं। "कला की स्वयं निर्णीत तर्क पद्धति" पर उनका ज़ोर है। यह एक आधुनिक विषय है जिस में से आधुनिक कविता की शिल्प संबंधी अवधारणा प्रकट होती है। किसी पूर्व निर्धारित सिद्धांतों या तर्क-पद्धतियों के आधार पर कविता लिखी जा सकती है। लेकिन कविता की रचनात्मकता के लिए वह दृष्टि बाधक है। कविता वस्तुतः रची जाती है।

---

1. राम विलास शर्मा -"नयी कविता और अस्तित्ववाद" -संस्करण 1987 - पृ. 16 - पहली कविता "अर्थशास्त्र" और दूसरी कविता है "देहाती मेले।"
2. "भाषा-दिसंबर 1991 - पृ. 13 - जगदीश चतुर्वेदी - "प्रभाकर माचवे: कवि चिंतक और अध्येता" शीर्षक लेख से।
3. "तार सप्तक" -द्वि. संस्करण 1966 - पृ. 183 - "प्रभाकर माचवे - वक्तव्य

जब कविता रची जाती है तो उसकी शिल्पपरक सौष्ठता का स्वतः विकास होता है । रूप यहाँ आरोपित अवस्था नहीं है । रूप वस्तु विन्यास का अभिन्न अंग बनकर रचना की संवेदना को प्रदीप्त करने में सहायक सिद्ध होता है । वस्तु और रूप का यह सामंजस्य आधुनिक कविता-चिंतन का अविभाज्य तत्व है । संभवतः माचवे इस ओर ही संकेत कर रहे हैं ।

माचवे की शिल्प-संबंधी मान्यता :-

जब किसी काव्य-धारा में परिवर्तन होता है तो उसके वर्ण्य विषय के साथ ही उसके अभिव्यंजना रीति में भी परिवर्तन होता है । माचवे शिल्प के प्रति अधिक सचेष्ट कवि हैं । "तार सप्तक" के अपने वक्तव्य में माचवे ने कहा है -"वस्तु की दृष्टि से, हिन्दी कविता में अभी विषयों की विविधता, व्यंग्य का तीक्ष्ण और सुरुचिपूर्ण प्रयोग, प्रकृति के संबंध में अधिक वैज्ञानिक दृष्टि, जन जीवन के निकटतम् जाकर ग्राम-गीत, लोक-गाथा और बाजारू कहलाई जाकर हेय मानी जानेवाली बहुत सशक्त और मुहावरेदार जबान से नये-नये शब्द रूपों और कल्पना चित्रों को ग्रहण करना और प्रयोगशील अभिव्यंजना के प्रति औदार्य आना चाहिए ।"[1] माचवे के इस कथन से उनकी शिल्प-संबंधी विचार स्पष्ट हैं । पुरानी विषय-वस्तु को भी वे नए ढंग से अभिव्यक्त करना चाहते हैं । यही नहीं इस कथन में उनका कविता संबंधी विचार भी हैं । उनकी लोकचेतना का आभास भी हमें मिलता है । कविता और लोक-जीवन के सामंजस्य से नए शिल्प की कल्पना की तरफ उनका इशारा है ।

---

1. "तार सप्तक" -संस्करण 1966 - पृ. 185 - "प्रभाकर माचवे-वक्तव्य" से ।

आधुनिक कविता जितनी लोकोन्मुखी होगी उतने ही रूप वैविध्य भी उसमें आ जाएँगे । परन्तु रूप, रूप तक सीमित होनेवाला प्रयोग नहीं है । डा. नरेन्द्र मोहन का कहना है - "आधुनिक जीवन की उलझी हुई परिस्थितियों और जटिल संवेदनाओं के संदर्भ में परंपरागत काव्य माध्यम अपर्याप्त सिद्ध हुआ । उसे पुराने रूप-विधान में अभिव्यक्त करना संभव न रहा । अभिव्यक्ति की इस समस्या से जूझने के दौरान ही ऐसे काव्य माध्यम की तलाश शुरू हुई, जिस में नये जीवन-विधान की संगति हो और जो परंपरागत रूपविधान की रूढ़ियों से मुक्त भी हो, जिस में नये सत्य के साक्षात्कार की क्षमता हो और जो आधुनिक परिस्थिति और संवेदना द्वारा पुष्ट और प्रामाणित भी हो ।"[1]

नरेन्द्र मोहन ने यह विचार लंबी कविताओं के रचना विधान के सिलसिले में प्रस्तुत किया है । लेकिन उसकी प्रासंगिकता इस बात में है कि वे यही व्यक्त कर रहे हैं कि रूढ़ियों से ग्रस्त काव्य माध्यम नए जीवन संदर्भों को अभिव्यक्ति नहीं दे सकेंगे । आधुनिक जीवन की जटिलता का संबंध जीवन की तमाम प्रकार की गहराइयों में है । कविता जब इन गहराइयों से जूझने के लिए मजबूर हो जाती है तो उसका रूप स्वत: बदलता है । रूपात्मक प्रयोग की इच्छा इसके लिए उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकती है । रूप का सांकेतिक अर्थ रचना विधान की सह-स्थिति के रूप में विस्तार पाता है । आधुनिक कविता में शिल्प को इस व्यंजनाशक्ति के रूप में ही अनुभव किया गया है ।

---

1. नरेन्द्र मोहन (संपादक) - "लंबी कविताओं का रचना विधान" - प्रथम संस्करण 197? - "भूमिका" से ।

माचवे की कविता का शिल्प-विधान :-

कविता में प्रयोग करने की प्रवृत्ति माचवे में सर्वाधिक है। परन्तु वे कविता के बाह्य-रूप को सँवारने वाले कवि नहीं हैं। बाह्य-विधान की विशिष्ट पहचान के साथ भीतरी स्थिति में बदलाव लाने वाले कवि रहे हैं। जगदीश चतुर्वेदी का कथन इस संदर्भ में बहुत ही समीचीन लगता है। "अति नवीन का आग्रह रखनेवाले माचवे शुरू से ही कविता में प्रयोग, नया वाक्य विन्यास और शब्दिक बुनावट पर विश्वास करते हैं।"[1] ये बाह्य तत्व भले ही हो, फिर भी कविता की अन्दरूनी स्थिति में परिवर्तन लाने वाले घटक भी हैं।

माचवे की काव्य-भाषा :-

"तार सप्तक" के अपने वक्तव्य में भाषा-संबंधी विचार माचवे ने यों प्रकट किया हैं -"ज्यों-ज्यों कविता की भाषा अधिकाधिक आम जनता की भाषा बनती चलेगी, उसमें प्रादेशिक शब्द अधिक आयेंगे और यह इष्ट ही होगा। मगर शब्दों की अभिधामूल लक्षणा की अपेक्षा व्यंजना शक्ति पर मेरी अधिक श्रद्धा है।"[2] इतनी ही नहीं माचवे जहाँ "हिन्दी कविता में वस्तु की दृष्टि से अनेक अपेक्षाएँ करते हैं, वहाँ वे जन-जीवन के निकट के ग्राम-गीत, लोक-गाथा और बाज़ारू मानी जानेवाली बहुत सशक्त और

---

1. "भाषा" -दिसंबर 1991, पृ. 13 - जगदीश चतुर्वेदी -"प्रभाकर माचवे कवि, चिंतक और अध्येता" शीर्षक लेख से।
2. "तारसप्तक" द्वितीय संस्करण 1966 - पृ. 185 -"माचवे-वक्तव्य" से।

मुहावरेदार ज़बान से नये-नये शब्द और कल्पना चित्रों को ग्रहण करने के प्रति आग्रहशील हैं ।"[1] वास्तव में प्रचलित भाषा से बढ़कर कविता बाह्य की भाषा का प्रयोग सामान्य प्रयोगशीलता का नमूना नहीं है, वह कविता की खोज की भाषा का विन्यास है । "दर असल, यह सही भी है कि कविता की भाषा जन-व्यवहार की भाषा हो जाने से कविता सीमित वर्ग के जानने तथा समझने की चीज़ नहीं रह जायेगी । वह सर्व-जन ग्राह्य होती चली जायेगी । यह तभी संभव है जब आज का कवि चेष्टापूर्वक कविता की भाषा को सहज व्यवहार की भाषा के निकट ले आए ।"[2] माचवे निरंतर इसी सहज भाषा की खोज करते रहे । तार सप्तकीय काल में ही प्रस्तुत माचवे की यह भाषा-दृष्टि आज भी प्रासंगिक है । भाषा के इस वैविध्यपूर्ण व्यवहार में भाषा का व्यवहार पक्ष या प्रयोग पक्ष का संकेत मात्र नहीं है । भाषा की निरंतर संरचनात्मक और सृजनात्मक होने की दृष्टि भी इस कथन में व्यक्त है ।

माचवे बहुभाषी साहित्यकार हैं । इसलिए उनकी कविता में विभिन्न भाषाओं के शब्दों का समायोजन है । अपने शब्द भण्डार को समृद्ध करने के लिए उन्होंने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से शब्द चुने हैं । "माचवे उन इने-गिने शब्द-प्रभुओं में से हैं, जिन्होंने भाषा को वशीभूत करने के लिए

---

1. "तार सप्तक" द्वितीय संस्करण 1966 - पृ. 185 - "प्रभाकर माचवे-वक्तव्य" से ।
2. कृष्ण-लाल -"तार सप्तक के कवि काव्य शिल्प के मान" - संस्करण 1979 पृ. 109.

पहले कड़े अनुशासन का पालन किया और फिर उसकी शक्ति को बढ़ाने के उद्देश्य से उसको निर्ममता से तोड़ा-मरोड़ा । मनुष्य जीवन के विविध स्तरों, उन स्तरों के वर्गीय वैशिष्ट्यों से माचवे का परिचय घनिष्ठ है ।[1] बाँदिवडेकर का यह कथन इसलिए सही है कि माचवे ने अपनी शब्द-क्षमता के भीतर नए विन्यास को प्रश्रय दिया था ।

माचवे का शब्दविधान यदि एक ओर संस्कृत या तत्सम शब्दों से प्रभावित है तो दूसरी ओर ग्रामीण शब्दों से । यदि उनमें बोलचाल के शब्द हैं तो अंग्रेज़ी, अरबी और फारसी के भी हैं । अनेक स्थलों पर पुराने शब्दों को नया रूप देकर या नये शब्द निर्मित करके, उन्होंने भाषा को समृद्ध किया है । माचवे के भाषा-संबंधी विचारों के बारे में डा. पांडुरंग राव का कथन बहुत ही समीचीन लगता हैं -"राष्ट्रभाषा के विकास में उनका [माचवे का] और हमारा एक ही प्रकार का दृष्टिकोण रहा । जब तक कोई व्यक्ति अपनी भाषा और साहित्य के दायरे से बाहर निकलकर विशाल दृष्टिकोण से सोच नहीं पाता और अपनी भाषा में भिन्न परंपरा और प्रकृति की दो-तीन भाषाओं से परिचय नहीं प्राप्त करता, तब तक भाषा के क्षेत्र में कोई ठोस काम नहीं कर पाता । डा. माचवे स्वयं अहिन्दी भाषी है, पर हिन्दी और अहिन्दी का अंतर उनके समीप आकर एकदम मिट जाता है । भाषा पर उनका प्रभुत्व देखकर किसी को यह अनुमान तक नहीं लग सकता कि उनकी

---

1. अक्षर-अर्पण - संस्करण 1977 - पृ. 9 - चन्द्रकांत बाँदिवडेकर - "डा. माचवे का प्रश्नोपनिषद्" - शीर्षक लेख से ।

मातृभाषा हिन्दी नहीं है ।"[1] इस कथन में अपनी भाषाई सीमा को तोड़ने की बात भाषा-समृद्धि का उदाहरण ही है । काव्य भाषा की उनकी समृद्धि के पीछे माचवे का विस्तृत अनुभव, गहन अध्ययन, जनवादी दृष्टिकोण का महत्व है । दर्शन, इतिहास, साहित्य में उनकी गहरी पैठ है तथा कई भाषाओं के वे जानकार हैं । माचवे हिन्दी, अंग्रेज़ी और मराठी के सर्जक लेखक भी है । मराठी और हिन्दी को अपनी मातृभाषा के रूप में व्यवहृत करने की क्षमता रखने के कारण, उन में एक विशेष प्रकार की सर्जनात्मकता भी लक्षित होती है । इसके अलावा माचवे जीवन की सक्रियता से निरंतर संबद्ध व्यक्ति भी रहे हैं । इसलिए उनकी काव्य भाषा ठोस धरातल को छूती है । "माचवे की भाषा जनपदीय भाषा थी । उनकी कविता में अपने जनपद मालवा का यथार्थ है । कस्बे का भी यथार्थ है । सामान्य जीवन का यथार्थ है । आज की कविता की तरह पत्रकारिता की भाषा की सपाटता उनकी कविता में नहीं है ।"[2] माचवे ने "मेपल" की भूमिका में (कुछ गद्य-पंक्तियाँ) भी लिखा है । "कवि के लिए कुछ भी वर्जनीय या बहिष्कार्य नहीं । न कोई अनुभूति, न किसी भाषा के शब्द, न कोई राजनैतिक - सामाजिक मत "वाद" न कोई दर्शन - आम्नाय ।....... शर्त इतनी ही है कि वह सब खाद है जिसके एक नया अंकुर बनता है, जिसे कहते हैं "कविता" ।"[3] यथार्थ की इस पहचान के

---

1. "अक्षर-अर्पण" - संस्करण 1977 - पृ. 24 - 25, डा. पांडुरंग राव - "वर्चस्विता के सागर डा. प्रभाकर माचवे" शीर्षक लेख से ।
2. "परिषद-समाचार" (संयुक्तांक) जुलाई-अगस्त-सितम्बर 1991 - पृ. 26 गिरिजाकुमार माथुर - "प्रभाकर माचवे की याद" शीर्षक लेख से ।
3. प्रभाकर माचवे - "मेपल" - संस्करण 1967 - पृ. 9 - भूमिका से ।

कारण भाषाई जड़ता को वे तोड सके हैं । रामविलास शर्मा ने सही लिखा है - "नयी कविता में जो गद्यात्मकता है, उसकी नस सब से पहले अच्छी तरह प्रभाकर माचवे ने पहचानी थी ।"[1] इसी गद्यात्मकता ने नई कविता को यथार्थ से जूझनेवाली क्षमता दी थी ।

गीतिनाट्य या संलाप का प्रयोग :-

इस शैली की रचनाओं में पर्याप्त नाटकीयता होती है । "अनुक्षण" में संकलित उनकी "मुक्तिदेवता: प्रणाम" शीर्षक कविता इसी शैली में लिखी है । यह कविता अपनी विलक्षण नाटकीयता के कारण काफी प्रसिद्ध है । इस कविता में बीच-बीच में भजन, समवेत गान, वेदपाठ आदि भी होते हैं । यह कविता माचवे का प्रसिद्ध रेडियो गीत नाट्य है -

वाचिका यही शक्ति कहलाई वाक् तथा
सूर्य वेशयन्ती यह देवी
भूरिस्थात्र बनी । यों कुछ युग बीते,
जब थी मुक्ति चतुर्फलदायी
वाचक तब जीवन की अर्थार्जन की, कम थी चिन्ता
ब्रह्म रंध्र के शून्य महल में लगा अहंता
जीवन मुक्ति निरत था । हँता नियंता
(विराट गंभीर हँसी)

---

1. रामविलास शर्मा - "नयी कविता और अस्तित्ववाद" - द्वितीय संस्करण 1987, पृ. 24 - "नयी कविता "तारसप्तक और उसके बाद" शीर्षक लेख से ।

(पुरुषों के समवेत गान)

हम आचार,
हम हैं केवल ब्रह्माचार ।
हम विचार को बाँध जकड़ कर
सदा चलेंगे खूब अकड़कर
हम कर देंगे धर्म नीति को बस लाचार ।
हम आचार ।[1]

लोक गीत के प्रभाव :-

आज कविता में लोक गीतों की धुन और तुक ने प्रवेश पा लिया है । यह नयी कविता की एक प्रवृत्ति भी है । माचवे कविता की भाषा को अधिकाधिक लोक जीवन के निकट लाने के पक्ष में है । यही कारण है कि माचवे ने कहीं कहीं लोक धुनों पर आधारित गीत की सृष्टि भी की है । माचवे ने "तारसप्तक" के "बादल बरसे मूसलधार", "वसन्तागम" जैसी अनेक कविताओं में लोकगीतों की धुनें प्रतिष्ठित की हैं । उदाहरण दृष्टव्य है -

"गा रे गा हरवाहे दिल चाहे वही तान,
खेतों में पका धान,
मंजरियों में फैला आमों का गन्ध-ध्यान

---

1. प्रभाकर माचवे - "अनुक्षण" - संस्करण 1959 - पृ. 96 - "मुक्तिदेवता ! प्रणाम " शीर्षक कविता से ।

आज बने हैं कल के ज्यों निशान,
फूलों में फलने के हैं प्रमाण ।
खेती हर लड़की की भोली-सी आँखों में, निम्बुओं की फाँकों में,
मुसकाता अज्ञान, हँसता है सह जहान,
खेतों में पका धान ।"[1]

प्रगतिवादी कवि त्रिलोचन और नागार्जुन सरीखे कवियों ने लोक शैली का जो प्रयोग शुरू किया उसे प्रयोगवाद में तथा नई कविता के दौर में काफी बढ़ावा मिला । माचवे ने इसका भरपूर प्रयोग किया है जिससे उनकी कविता में निकट आई है ।

भिन्न भाषा शब्दावली :-

विदेशी शब्दों का अनुकूल और उन्मुक्त प्रयोग किसी भी रचनाकार के लिए उसके भाषा पर अधिकार का द्योतक होता है । माचवे ने ब्रज और देशज के कई मीठे शब्दों को अपनाया है । इनके अतिरिक्त उर्दू और अंग्रेज़ी के प्रचलित शब्दों का भी माचवे ने इस्तेमाल किया है । विशेषकर "मेपल" संग्रह में प्रयुक्त अंग्रेज़ी शब्दों की संख्या ज़्यादा है । उदाहरण द्रष्टव्य है -

---

1. "तारसप्तक" - द्वितीय संस्करण 1966 - पृ. 188 - "वसन्तागम" शीर्षक कविता से ।

"सीमेण्ट-इस्पात - घटाटोप कानन्
यहाँ लुप्त मानव-संस्पर्शमात्र प्यार,
सेक्स, सप्राण कोणार्क
सेन्ट्रल पार्क
दुनिया की सब से भव्य इमारत से
विश्व-छत से
हल्के-सस्ते रिमार्क
यही फ़िक्र सतायेंगे इनकमटैक्सवाले शार्क
व्यापार का भविष्य डार्क !"[1]

इस कविता में प्रयुक्त सीमेण्ट, सेक्स, सेन्ट्रल पार्क, रिमार्क, इनकमटैक्स, शार्क, डार्क आदि शब्द विदेशी हैं। "काव्य भाषा के प्रयोग में डा. प्रभाकर माचवे तरह-तरह के प्रयोग करते दिखाई पड़ते हैं। एक ओर संस्कृत तत्सम पदों का, दूसरी ओर उर्दू, मराठी पदों का, तीसरी ओर बोलचाल के शब्दों का प्रयोग वह अपनी रचनाओं में करते चलते हैं।"[2] कवि चाहे कितनी ही भाषा के शब्दों का प्रयोग करें, कविता में उसका सामान्य प्रभाव ही पड सकता है। लेकिन प्रत्येक गैर भाषा शब्द के संतुलित प्रयोग से काव्य संवेदना में परिवर्तन आते हैं।

---

1. प्रभाकर माचवे -"मेपल" - संस्करण 1967 -पृ. 45 - "न्यूयॉर्क" शीर्षक कविता से।
2. डा. अरविन्द -"सप्तक काव्य" - प्रथम संस्करण - 1976 - पृ. 45

मुहावरे और लोकोक्ति का सही सन्निवेश :-

माचवे ने अपनी कविताओं में अक्सर मुहावरे और लोकोक्तियों का प्रयोग सटीक किया है । किसी भाषा की इस प्रकृति से परिचित होना एवं उसका सही उपयोग करना, बहुत बड़ी बात है । माचवे इस मामले में अपने अन्य समकालीन कवियों से आगे हैं । माचवे ने कभी-कभी पूरी काव्य पंक्ति को बड़ी सतर्कता से मुहावरों और लोकोक्तियों में ढाल दिया है -

"फटी, थेगरों की यह संस्कृति की जो गठरी,
अब न सुधरने की यह, बिगड़ चुकी बहुत, अरी !
फूट गई जुड़ न सकेगी मटकी, यह गगरी !
क्या दृगम्बुसिंचिता प्रेमबेल, वंचिता,
मुरझ यदि गई, पुनः पनप सकी ? हुई हरी ?
आँखों का नीरसार व्यर्थ वेदनाप्रसार,
सूखी सरि-सिकता पर द्रवित झुकी, क्या बदरी ?
ये मुमूर्षु व्यक्ति, जाति, उनकी भी यही ख्याति,
गलितप्राण निर्वाणोन्मुख टिक सकी न मरी !
अस्थिशेष, शुष्कपत्र, खादप्राय, यत्र-तत्र........"[1]

इस प्रकार माचवे की कविताओं के अनुशीलन से स्पष्ट है कि माचवे में भाषा का वैविध्य है ।

---

1. प्रभाकर माचवे - "अनुक्षण" -संस्करण 1959 - पृ. 88 - "संक्रमण" शीर्षक कविता से ।

क्लासिकी भाषा :-

माचवे ने अपने संस्कृत ज्ञान के कारण तत्सम शब्दावली को नहीं अपनाया । जब कवि की अनुभूति सामान्यता से ऊँची हो जाती है तो भाषा में औदात्य का सन्निवेश होता है । माचवे के अन्य काव्य-संग्रहों की अपेक्षा "विश्वकर्मा" नामक खण्ड-काव्य में क्लासिकी भाषा का प्रयोग अधिक मिलता है -

"इतनी शक्ति, इतनी युक्ति, इतनी कला,
उनके अधीन थी, इतनी ध्वंस-विद्या,
फिर भी विश्वकर्मा थे चिन्तित देव जाति से,
पुत्री के लिए, उसके जमाई की ख्याति से ।"[1]

दूसरा उदाहरण द्रष्टव्य है -

"एक भगीरथ के प्रयत्न का फल सुरसरिता, जीवन-संचय,
और दूसरा तप:पूत अतिवृद्ध धीर-गंभीर हिमालय ।
दोनों भारत की प्राचीन संपदा के संवाहक, रक्षक ।
भारत-माँ के लाल लाड़ले । पश्चिम की रण-भू के प्रेक्षक -
तटस्थ । हिंसा-समाघात के प्रखर विरोधी । संस्कृति-पूजा,
दोनों को प्रिय । एक मेघ-विस्तार और पावस है दूजा ।
हिमगिरि की उन्नत गरिमा,के प्रहरी, मौन-मुखरता प्रेमी
द्रष्टा,साधक, शोधक, प्रयोगवेत्ता और प्रखरता-नेमी ।"[2]

---

1. प्रभाकर माचवे -"विश्वकर्मा" प्रथम संस्करण 1988 - पृ. 25.
2. प्रभाकर माचवे -"अनुष्टुप" संस्करण 1959 - पृ. 61 - "गांधी और रवीन्द्रनाथ" शीर्षक कविता से ।

काव्य भाषा का यह सधा हुआ प्रयोग है । प्रत्येक शब्द विषय विन्यास की गरिमा और व्याप्ति का सूचक है । यही नहीं क्लासिकी वृत्ति के कारण शब्द प्रयोग अनुशासित भी है । इसे भाषा के स्तर किया गया एक शिल्प प्रयोग कह सकते हैं ।

भाषा की सहजता और व्यंग्यात्मक भाषा :-

सामान्य जीवन की सहज स्थितियों की अभिव्यक्ति के अवसर पर माचवे की कविता की भाषा में सहजता तथा व्यंग्यात्मकता आ जाती है । व्यक्ति को किसी न किसी अच्छाई-बुराई के प्रतिनिधि के रूप में मानकर माचवे ने व्यंग्य लिखा है । माचवे के व्यंग्य की मुख्य विशेषता उनकी तटस्थता है । माचवे ने अपनी कथन-भंगिमा, सत्य कथन की तत्परता, आक्रमणशीलता, आतंरिक संवेदना के कारण अलग-अलग समय में एक सर्वथा नयी व्यंग्य भाषा का निर्माण भी किया है । माचवे ने अपनी भाषा के संबंध में कहा है - "मैं ने भाषा के साथ भी कहीं-कहीं खिलवाड किया है । ज़्यादती की है, स्वतंत्रता ली है । यह भी मैं ने जान-बूझकर किया है । कुछ सुधी-विद्वानों ने इससे यह निर्णय निकाला है कि मैं हिन्दी के लिए "आउट-साइडर" हूँ । मेरा हिन्दी भाषा का ज्ञान कच्चा है, मैं अर्थपूर्ण, शैली युक्त, सरपट, इस्त्री-बन्द, कानून को मानने वाली पाप भीरु "चेस्ट" हिन्दी नहीं लिख सकता । उनका निष्कर्ष सही हो सकता है । विद्वानों की वैसी कँटी-छँटी, साफ-सुथरी, ठंडी और सपाट हिन्दी से मुझे ऊब आती है - शायद वह भाषा व्यंग्य-निबन्धों के लिए उपयुक्त नहीं है ; सरकारी अखबारों के संपादकीयों या परीक्षार्थियों की उत्तर-पुस्तिकाओं के

लिए चाहे उपयुक्त हो । फिर भी हिन्दी के सौ-टंच प्र-शुद्ध "परयोग" का मेरा दावा नहीं है ।" इस कथन के कई वाक्य पुनर्विश्लेषण की माँग करता है । संवादी भाषा के प्रति अनिच्छा वस्तुतः माचवे की नहीं उसका दृष्टि के लिए उपयुक्त प्रमाण है ।

छन्द विधान :-

छन्द समस्त भारतीय काव्य के पूर्वाधार रहे हैं । उनमें परिवर्तन, संशोधन और परिवर्धन भी अवश्य हुए हैं । माचवे का कथन है - "निराला "बंधनमय छन्दों की छोटी राह" छोडकर, छन्द की कारा तोडकर हिन्दी में मुक्त-छन्द को बंगाल से लाये । छन्द भी जिस तरह कानून के अंदर सीमा के सुख में आत्मनिष्ठ हो सुन्दर नृत्य करते, उच्चारण की श्रृंखला रखते हुए, श्रवण माधुर्य के साथ श्रोताओं को सीमा के आनन्द में भुला रखते हैं, उसी तरह मुक्त-छन्द भी विषम-गति में एक ही साम्य का अपार सौन्दर्य देता है जैसे एक ही अनन्त समुद्र के हृदय की सब छोटी-बडी तरंगें हों, दूर-प्रसारित दृष्टि में एकाकार ही गति में उठती और गिरती हुई ।"[2] इसके अतिरिक्त कविता में छन्द के संबंध में माचवे का मत "तार सप्तक" के वक्तव्य में उपलब्ध है -"छन्दोरचना के विषय में हमें नव-नवीन-प्रयोग अपनाने होंगे । अन्य भाषाओं के छन्द भी हम लें । "निराला" द्वारा हिन्दी में लायी गयी

1. प्रभाकर माचवे तेल की पकौड़ियाँ संस्करण 1962, पृष्ठ-6.
2. "प्रतीक" में प्रकाशित प्रभाकर माचवे -"नयी हिन्दी कविता में छन्द-प्रयोग" शीर्षक लेख से ।

मुक्त, विषमचरणावर्त्तिनी, अतुकान्त, अक्षर मात्रिक छन्द पर आश्रित तालात्मक पद-रचना श्रेयस्कर हैं ।"[1] इस कथन से स्पष्ट है कि माचवे छन्द के विषय में खुले विचार रखने वाले रहे हैं । माचवे ने पूर्व प्रचलित छन्दों को स्वीकार करने के साथ-साथ, नये-नये छन्दों का निर्माण भी किया है । छन्द के क्षेत्र में नव-नवीन प्रयोग करने के लिए माचवे ने अन्य भाषाओं के छन्दों को भी स्वीकार किया है । माचवे ने छन्दो-बद्ध और मुक्त छन्द - दोनों पद्धतियों का उपयोग किया है ।

रुबाई का प्रयोग :-

रुबाई अरबी-फारसी का चार चरण वाला एक छन्द है, जिसे हिन्दी में "चतुष्पदी" या "चौपदी" कहा जाता है । माचवे ने रुबाइयों के सुन्दर प्रयोग किये हैं । माचवे ने कविता का शीर्षक भी "दो रुबाइयाँ" रखा है । "अनुक्षण" काव्य संग्रह में रुबाईयों के सुन्दर प्रयोग किये हैं । उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

"दर्द सा उठा पर्दों से अन्तरम के,
सर्द सी आह खिंच गयी अजान सहम के,
याद की चली जो पुरवैया इस मौसिम
गर्द सा उठा औ" पलक जलातुर चमके !"[2]

---

1. "तार सप्तक" -द्वितीय संस्करण 1966 - पृ. 186 - प्रभाकर माचवे - "वक्तव्य" से ।
2. प्रभाकर माचवे -"अनुक्षण" -संस्करण 1959 - पृ. 15 - "दो रुबाईयाँ" शीर्षक कविता से ।

षट्पदी का प्रयोग :-

रुबाई की भांति ही माचवे ने मुसद्दस का भी प्रयोग किया है । मुसद्दस को हिन्दी में "षट्पदी" कहा जाता है । इसमें छः चरण होते हैं । उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

"मत पढ पागल प्राण पुराने स्नेह-मोह के दाग बचे से,
मत देखे वे स्मृति-मंदिर में मधुक्षण रखे सँभाल रचे से ।
आज याद कर लेने में भी काँटा सा कसका जाता है,
आज बना है दुर्बल बन्दी, अब न रहा डर निर्मता है,
जग की दावा में बेजाने दोनों फूल भस्म होने के,
किसे पता है, गालों पर रहते कब तक निशान रोने के ?"[1]

लावनी का प्रयोग :-

लावनी एक प्रकार का छन्द होता है, जो प्रायः चंग पर गाया जाता है । संगीत में लावनी को एक उपराग के रूप में स्वीकार किया गया है । देशी राग के अन्तर्गत होने के कारण इसका संबंध लोकगीतों से स्थापित किया जाता है । माचवे ने अपनी कविताओं में "लावनी" का भी प्रयोग किया है ।

"आँखों में आँजा था काजल,
वह काजल नहीं,

---

1. प्रभाकर माचवे - "अनुक्षण" - संस्करण 1959 - पृ. 18 - "दो षट्पदियाँ" शीर्षक कविता से ।

हृदय जल-जल जो उठा अँवा
वह हुआ धुँआ !
गोरे हाथों पर तुलसी का वह गुँदना क्या ?
मुसकाते लाज भरे पलकों का मुँदना क्या ?
बिधना ! मन से छबि बँधना क्या ?
कुसुमों के तरकस सधना क्या ?
हाथों में राँची थी मेंह्दी,
वह मेंह्दी नहीं,
हृदय पिस-पिस बन गया हिना !
ज्यों चोंच - सुआ !"[1]

मुक्त छन्द :-

निराला पहले कवि हैं, जिन्होंने मुक्त छन्द को मान्यता प्रदान की । निराला के बाद अनेक कवियों ने इसका प्रयोग किया है । प्रभाकर माचवे ने भी मुक्त छन्द में कविता लिखी है -

"होंगें
घोंघे
अपने ही कवचों में बन्द
उस में ही लेते आनन्द !

---

1. प्रभाकर माचवे - "अनुक्षण" - संस्करण 1959 - पृ. 66 - "लावनी" शीर्षक कविता से ।

होंगी सीपी
मोती के सातापन में ही मस्त ।
रजतरंग से लीपी
ध्वनियाँ गुंजित करती श्रुति में व्यस्त ।"[1]

इसमें माचवे ने गेयता पर बल दिया है, क्योंकि मुक्त छन्द में लय का समावेश कविता का सौंदर्य बढ़ाता है ।

सॉनिट :-

अंग्रेज़ी के छन्दों में से "सॉनिट" का प्रयोग माचवे ने सबसे अधिक दिया है । हिन्दी का चतुर्दशपदी और अंग्रेज़ी का "सॉनिट" एक ही है । इन में 14 पंक्तियों का विधान होता है । "तार सप्तक" की कई कविताओं के अतिरिक्त, "स्वप्न-भंग" में माचवे के सौ श्रेष्ठ सॉनिट संकलित है । इसमें सॉनिट-शैली की परिपक्वता के साथ विषय और शिल्प में भी नवीनता है । इस संग्रह के "कोणार्क", "भुवनेश्वर में पार्वती की प्रतिमा देखकर" "यात्रा", "असम", "केरल", "नवरामायण" आदि काफी प्रसिद्ध सॉनिट हैं । उदाहरण द्रष्टव्य है -

"ऐसा अद्भुत शिल्प देख
इतना सुडौल, इतना सुरेख,
मन में आया यह सौम्य मूर्ति !

---

1. प्रभाकर माचवे - "अनुक्षण" -संस्करण 1959 - पृ. 116 - "पुलिन" शीर्षक कविता से ।

जो अब भी देती हमें स्फूर्ति !
इसको कैसे काला पहाड
हा ! तोड सका, कैसा कुल्हाड़
नासा को छेदा-हाथ तोड़
पैर के अंगूठे को झिझोड -
किस तरह कला का ध्वंस किया ?
उस शिल्प-सरणि पर दंश किया !
पर कैसी यह सौंदर्य - सृष्टि
अब भी वैसी कारुणिक दृष्टि,
अये ! जगधात्री ! माँ ! ! करता प्रण-दान यहीं,
शक्ति का करूँगा अब जीवन अपमान नहीं !"[1]

माचवे ने अपनी कुछ कविताओं में सॉनिट में बोल-चाल के शब्दों को जोडकर एक नयी शैली को अपनाया है । इनकी विशेषता यह है कि कविता पूरे शिल्प बन्ध के बाद भी सीधे सँवाद की स्थिति में उतरती है । "अनुक्षण" में संकलित, "पन्द्रह का पहाडा" "लामज़हब" आदि इस शैली के उदाहरण है ।

पन्द्रह रुपये माहवार पर देहाती टीचर हैं ? "जी", हाँ !"
लखमीचंद जी, आजे कोई सट्टे को फीचर है ? जी हाँ ।
"हडतालों से मेहतर ने भी तीस रुपैया पायी तनखा"
"कल की फिल्म बडी रद्दी थी, कृष्ण लग रहा था ज्यों जनखा,

---

1. प्रभाकर माचवे - "स्वप्न भंग" - संस्करण 1957 - पृ. 36
"भुवनेश्वर में पार्वती की प्रतिमा देखकर" शीर्षक कविता से ।

पैंतालीस हो गया है अब डाक-बाबुओं का भी वेतन"
कवि राष्ट्रीय गा रहे अब भी हम अनिकेतन, हम अनिकेतन,
वारपिंग वातेवाले की पगार मय मँहगाई साठ"
उस में से आधा उड़ जाता जब कि "बार" में बजते आठ.....
जी हाँ, एम.एससी हूँ फर्स्ट क्लास पिचहत्तर स्टार्ट दिया है ।
जी हाँ, अब की सावित्री का मुन्नीजान ने पार्ट किया हैं ।
"हाँ", एजेन्सी है बीमे की पड़ जाते हैं अस्सी नब्बे
"बड़े ठसाठस भरे हुए रहते हैं थर्ड क्लास के डिब्बे !"
यही बेतुकी बातें जहाँ सुनो मिल जायेंगी सुनने को !
यहाँ किसे फुरसत है सुसरी कला और संस्कृति गुनने को !"[1]

इनके अतिरिक्त माचवे ने अनेक स्थलों पर सॉनिट का प्रयोग किया है । डा.मारुतिनन्दन पाठक का कथन है -"यह वह युग था, जब हिन्दी में सॉनिट लिखने का प्रचलन नहीं हुआ था, यदा-कदा किसी-किसी को उसमें पूर्वाभ्यास करते या डग भरते देखा जाता था, उस समय माचवे जी ने सॉनिट में सिद्धि प्राप्त कर ली थी । कहने की आवश्यकता नहीं, माचवे जी सॉनिट शैली के हिन्दी में प्रथम समर्थ कवि हैं ।"[2]

सचमुच माचवे ने छन्द के क्षेत्र में बेहिसाब प्रयोग किये हैं । दरअसल शिल्प की दृष्टि से माचवे ने अनेक छन्दों में और बोलचाल की भाषा

---

1. प्रभाकर माचवे - "अनुक्षण"-संस्करण 1959 - पृ.85 - "पन्द्रह का पहाड़ा" शीर्षक कविता से ।
2. डा.मारुतिनन्दन पाठक -"डा.प्रभाकर माचवे सौ दृष्टिकोण" - {संपादक} संस्करण 1988, पृ. 13 - "दृष्टिपथ" से ।

की निकटतम वाचिक परंपरा को लेकर कई बोलियों के बातचीत के टुकड़े और उद्धरण उन कविताओं में जड़ दिये हैं, किन्तु कहीं भी वे कृत्रिम या बोझिल नहीं लगते ।

रूप परक-प्रयोग परकता :-

माचवे की प्रयोग-चेतना व्यापक हैं । उन्होंने अपनी कल्पना का अच्छा-खासा उपयोग शिल्प-क्षेत्र में किया है । यह प्रयोगपरकता उनकी कविताओं के शीर्षकों में भी दिखाई देती है जिसे रूपपरक प्रयोग के अन्तर्गत रखा जा सकता है । माचवे अपनी कविताओं के शीर्षक संस्कृत अथवा अंग्रेज़ी में रखते हैं ।

संस्कृत में दिये गये शीर्षक :-

माचवे ने कई कविताओं के शीर्षक संस्कृत में दिये हैं -

"कस्मै - देवाय ?"[1]

"क्व: पन्था ?"[2]

"शिशिर वसंतो पुनरायात:"[3]

"सख्यम् आत्म-निवेदनम्"[4]

---

1. प्रभाकर माचवे - "अनुक्षण" -संस्करण 1959 - पृ. 52
2. प्रभाकर माचवे - "स्वप्न भंग" - संस्करण 1957 - पृ. 18
3. वही - पृ. 23
4. वही - पृ. 77

"नमो बुद्धाय"[1]

"नमः शिवाय"[2]

अंग्रेजी शीर्षकों के कुछ उदाहरण :-

"साम" { }[3]

"एब्स्ट्रैक्ट पेंटिंग"[4]

"माडर्न आर्ट"[5]

"न्ययार्क"[6]

"पेरिस"[7]

शीर्षक के मुद्रण में वैचित्र्य { प्रयोगपरकता}

माचवे की कुछ कविताओं के शीर्षकों के मुद्रण में नयापन मिलता है । यह भी सामान्य प्रयोगपरकता का नमूना है । माचवे की एक कविता का शीर्षक है -

{ प्रिय - } ति...[8]
{ ग - }

---

1. प्रभाकर माचवे - "मेपल" - संस्करण 1967 - पृ. 61
2. वही - पृ. 64
3. वही - पृ. 15
4. वही - पृ. 29
5. प्रभाकर माचवे - "स्वप्न भंग" - संस्करण 1957 - पृ. 78
6. वही "मेपल" - संस्करण 1967 - पृ. 45
7. वही - पृ. 52
8. वही - पृ. 13

"स्थिति-गति" जैसे शीर्षक को नये ढंग से रखने का उनका यह अपना तरीका है । माचवे ने अपनी एक दूसरी कविता का शीर्षक सिर्फ एक "रेखा-चित्र" में दिया है -

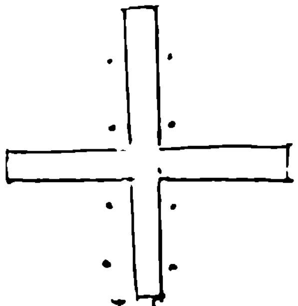

आज देख आया हूँ ईसा का जन्म स्थल
तीन पन्थियों ने दिखलाये तीन अस्तबल
देखे ईसा के अनुयायी, भाविक, अन्धे
देखे श्रद्धा के शतरंगी गोरख-धन्धे
बेथलहम का तारा झूठा-कहाते में "डिम"
टिम टिम ज्योति हुई है मद्धिम, प्रश्न "ततः किम् ?"[1]

इस प्रकार यहाँ वे अंग्रेज़ी शब्द को ही प्रयुक्त करते हैं ।

"दुनिया की सब से भव्य इमारत से,
विश्व -छत से
हल्के-सस्ते रिमार्क
यही फिक्र सतायेंगे इनकम टैक्स वाले शार्क

---

1. प्रभाकर माचवे -"मेपल" - संस्करण 1967 - पृ. 56

व्यापार का भविष्य डार्क
HARK .[1]

ये सभी उदाहरण रूपपरक शिल्प प्रयोग हैं । कविता के बदलाव के युग में प्राय: ऐसे प्रयोग बराबर मिलते हैं । गद्य का खुला प्रयोग, अटपटा शब्द प्रयोग, चिह्नों का प्रयोग आदि उसके कुछ नमूने हैं । प्रतिष्ठित पूर्व काव्य प्रवृत्ति से अलगाने के लिए ऐसे रूपात्मक प्रयोग सहायक होते हैं । अज्ञेय, मुक्तिबोध आदि कवियों ने भी ऐसे प्रयोग किए हैं ।

विभिन्न भाषाओं से उद्धरण देने की प्रवृत्ति :-

विभिन्न भाषाओं के उद्धरणों को अपनी कविता के साथ जोड़ने की प्रवृत्ति भी माचवे में मिलती है । यद्यपि अन्य कवियों ने भी आवश्यकतानुसार ऐसी प्रणाली अपनायी है, पर माचवे में ये उद्धरण विविध हैं और उनकी संख्या भी अधिक है । ये प्रयोग माचवे की चमत्कार-प्रियता का ज्वलन्त उदाहरण है - "अनुक्षण" की "पुलिन" शीर्षक कविता में माचवे ने निराला की दो पंक्तियों का उद्धरण लिया है -

"यह है उसकी स्वाभाविकता
केवल सिकता सिकता
स्वाभाविकता

---

1. प्रभाकर माचवे -"मेपल" - संस्करण 1967 - पृ. 45 - "न्यूयॉर्क" शीर्षक कविता से ।

सहज, तटस्थ, अधिकता
- नहीं स्वार्थ के कवच
न मुक्ताहल की लालच,
नहीं महत्वाकांक्षा वीरों के अधरों से छूकर
उनकी फूंक गुंजाऊँ भू पर
केवल मूक और चिर-उत्सुक
जनसाधारण का ज्यों सुख-दुःख
कितना है विस्तार यहाँ पर दिखता
कितने आँसू, कितना जीवन यहाँ छिपाये हुए,
कि कण-कण क्षण-क्षण सब पैरों के निशान लिखता
काल घड़ी में छन-छन, कितने पिछड़े और मिटाये हुए
सिकता यह अनासिक्ता !
'स्नेह निर्झर बह गया है
रेत सा तन रह गया है ।'
मैं नहीं (कोई निराला ही) कवि कह गया है
कह नहीं केवल कि दहती जिन्दगी में सह गया है ।[1]

एक अन्य उदाहरण यों है -

"आज भी भयानक है शीत
सख्त ठंडी हवाएँ हैं
फिर भी हम आये हैं

---

1. प्रभाकर माचवे - "अनुक्षण" - संस्करण 1959 - पृ. 117 - "पुलिन" शीर्षक कविता से ।

गाते हुए वह सुधीन्द्र प्रिया-गीत ।
साथी यह केरल के कविगण हैं ।
कोई सूर्यस्तोत्र गुनगुना रहा
"दारिद्र्य दुःखक्षय कारणं च
पुनातु मां तत्सवितुर्व रेण्यम् ।" 1

"रवीन्द्रनाथ तुकाराम" शीर्षक कविता की पंक्तियों के बीच मराठी कविता को जोडते हैं ।

"आपुलें मरण पाहिले म्यां डोळां".....
"मरण जे दिन आसुबे तेमार दुयारे"....
कैसा मरण ? भाव दोनों का इतना भोला
एक घाट पर बोझा लिया, उतारा अन्य किनारे....
ज्योतिरीन्द्र के साथ हुए "बम्बई-प्रवासी"
और सुनी देहू के बनिये की अभंग-बानी
मन में यौवन में ही क्या छा गयी उदासी
कोई अकथ-कहानी मानों सहसा जानी 2

---

1. प्रभाकर माचवे - "अनुक्षण" - संस्करण 1959 - पृ. 114 - "अन्तरीप" शीर्षक कविता से ।
2. प्रभाकर माचवे - "मेपल" - संस्करण 1967 - पृ. 40 - "रवीन्द्रनाथ और तुकाराम" शीर्षक कविता से ।

बिंब-योजना :-

कविता में बिंब-विधान का अपना अलग महत्व है । बिंब योजना के द्वारा कवि विचारों और वस्तुओं के कविता रूप को इन्द्रिय ग्राह्य बनाने की कोशिश करता है । काव्यगत भाव तथा उसके मूल-अर्थ को स्पष्ट, मूर्त तथा तीव्रतम रूप में संप्रेषित करने में बिंब की भूमिका हैं ।

"तार सप्तक" के कवियों ने बिंबविधान की ओर पर्याप्त ध्यान दिया है । सामान्यत: "तारसप्तक" के कवि काव्य में बिंब की स्वीकृति के प्रति एकमत हैं । उनके अनुसार बिंब विधान काव्य की विषय वस्तु से और उसके रूप से घनिष्ठ रूप में संबद्ध है । साथ ही काव्य में बिंबों के साहचर्य से विषय में संक्षिप्तता और रूप में मूर्त्तता तथा दीप्ति का सन्निवेश भी होता है । केदारनाथ सिंह का कथन है -"कविता में मैं सबसे अधिक ध्यान देता हूँ बिंबविधान पर । बिंबविधान का संबंध जितना काव्य की विषयवस्तु से होता है, उतना ही उसके रूप से भी । विषय को वह मूर्त्त और ग्राह्य बनाता है, रूप को संक्षिप्त और दीप्त ।"[1] परंपरागत बिंब जब निर्जीव और केवल अभिधा बनकर रह जाते हैं, तब उन में इतना सामर्थ्य नहीं रह जाता कि वे कवि की संवेदना को संप्रेषणीय कर सकें । ऐसी अवस्था में नवीन बिंबों की खोज एक अनिवार्यता हो जाती है । यह केवल वैचित्र्य और आकर्षण के लिए ही नहीं होता है बल्कि समस्त अनुभूति पुंज को उसकी

---

1. अज्ञेय [संपादक] - "तीसरा सप्तक" - "तृतीय संस्करण 1967 - पृ. 114
   केदार नाथ सिंह -"वक्तव्य" से ।

तीव्रता के साथ अंकित करने के लिए होता है । बिंब की महत्ता के बारे में केदारनाथ सिंह ने कहा है - "प्राचीन काव्य में जो स्थान "चरित्र" का था, आज आज की कविता में वही स्थान बिंब अथवा "इमेज" का है ।"[1]

माचवे की बिंब संबंधी दृष्टि :-

प्रभाकर माचवे ने "तार सप्तक" के अपने वक्तव्य में कहा है -"हमारी कविता में पाये जानेवाले अधिकांश कल्पना चित्र या बिंब {इमेज} बच्चों के से निरे शाब्दिक सहस्मृत या परंपरागत होते हैं । इन शाब्दिक साहचर्यात्मक और पारंपरिक बिंबों की बजाय हमें राग और ज्ञान से पूरित ऐन्द्रिय, आवेगाश्रित और आभिजात बिंबों की सृष्टि करना है ।"[2] इस कथन से स्पष्ट है कि माचवे बिंब-योजना में ऐन्द्रियता को विशेष महत्व देते है, जो बिंब की सफलता का आधार है । माचवे ने अपने वक्तव्य में अन्यत्र कहा है -"मैं यह भी मानने के लिए तैयार हूँ कि "बिंबवाद" ही कविता नहीं है, अगर आप यह माने कि "बिंबवाद" भी कविता है ।"[3]

---

1. अज्ञेय {संपादक} - "तीसरा सप्तक" - तृतीय संस्करण 1967 - पृ. 114 - केदारनाथ सिंह - "वक्तव्य" से ।
2. "तार सप्तक" - द्वितीय संस्करण 1966 - पृ. 186 - प्रभाकर माचवे - "वक्तव्य" से ।
3. "तार सप्तक" - द्वितीय संस्करण 1966 - पृ. 184 - प्रभाकर माचवे - "वक्तव्य" से ।

माचवे ने अपनी कविताओं में सभी प्रकार के बिंबों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है । उनके काव्य में दृश्य बिंब और श्रव्य बिंब विशेष महत्व रखते हैं ।

दृश्य बिंब :-

दृश्य बिंब का सीधा संबंध आँखों से है । दृश्यात्मकता बिंब की प्राथमिक विशेषता है । यह दृश्यात्मकता सभी प्रकार के बिंबों के मूल में निहित है ।

"नोन-तेल लकडी की फ्रिक में लगे घुन से,
मकडी के जाल से, कोल्हू के बैल से ।
मकां नहीं रहने को, फिर भी ये घुन से
गन्दे, अँधियारे और बदबू-भरे, दडबों में,
जनते हैं बच्चे ।"[1]

एक अन्य उदाहरण यों हैं -

"प्रेम वह प्रसन्न
खेत में निरन्न
दुर्भिक्षावसन्न
सृजक कृषक खडा दीन अन्नाधिकारी ।"[2]

---

1. "तार सप्तक" - द्वितीय संस्करण 1966 - पृ. 204 - प्रभाकर माचवे "निम्न मध्य वर्ग" शीर्षक कविता से ।
2. "तारसप्तक" - पृ. 195 - "प्रेम- एक परिभाषा" शीर्षक कविता से ।

श्रव्य बिंब :-

श्रव्य बिंबों का संबंध श्रवण से है । श्रव्य-बिंब से श्रवण सुख ही प्राप्त नहीं होता, बल्कि श्रव्य और दृश्य का सामंजस्य भी होता है ।

"झर - झर झरती सरिता धार,
तोड - फोड चट्टान कगार
अष्ट दिशा में जल विस्तार ।"[1]

श्रव्य बिंब का एक अन्य उदाहरण यों है -

"झरर - झरर - झर
ये संघर्षित झड़ियाँ या
झन-झन-झन बजती-सी कड़ियाँ ।"[2]

घ्राण-बिंब का उदाहरण :-

"मंजरियों में फैला आमों का गन्ध ध्यान,
आज बने हैं कलके ज्यों निशान
फूलों में फलने के हैं प्रमाण ।"[3]

---

1. प्रभाकर माचवे -"अनुक्षण" -संस्करण 1959 - पृ. 78 - "मालव-सरिताओं से" शीर्षक कविता से ।
2. "तार सप्तक" - संस्करण 1966 - पृ. 198 - "वृष्टि" शीर्षक कविता से ।
3. "तार सप्तक" - संस्करण 1966 - पृ. 188 - "वसन्तागम" शीर्षक कविता से ।

एक अन्य उदाहरण इस प्रकार हैं -

"पुष्पों की सुगन्ध - से - मोहित
चन्दन-चर्चित वन-वन करता मन्त्रोच्चारण,
मलय-पवन भागा करता निर्वसन पुरोहित, "[1]

"मेपल" की एक कविता में अपनी प्रेयसी की अंग-गन्ध कवि को इस प्रकार प्रतीत होती है जैसे लक्ष-लक्ष चम्पक फूल हो या फिर केसर की निर्मल धारा प्रवाहित हो रही हो -

"और तुम्हारी अंग-गन्ध,
लक्ष-लक्ष चम्पक फूलें ज्यों
केसर का सोता बहता निर्मल अबन्ध ।
और तुम्हारा रस अमन्द
तुम से मिलना विद्यापति का छन्द-द्वन्द्व
मधुराष्टक की पंक्ति-पंक्ति या दशमस्कंध ।"[2]

स्पर्श बिंब का उदाहरण :-

अन्य बिंबों की अपेक्षा माचवे ने स्पर्श बिंबों का प्रयोग कम किये हैं । उदाहरण द्रष्टव्य है -

---

1. प्रभाकर माचवे - "अनुक्षण" संस्करण 1959 - पृ. 109 - "महाबलीपुरम" शीर्षक कविता से ।
2. प्रभाकर माचवे - "मेपल" संस्करण 1967 - पृ. 27 - "रभस" शीर्षक कविता से ।

"आज भी भयानक है शीत
सख्त ठंडी हवाएँ हैं,
फिर भी हम आये हैं
गाते हुए वह शचीन्द्र प्रिया-गीत ।"[1]

एक अन्य उदाहरण

"गर्म श्वास यों निकले नर्म रसा से -
निःक्षत्रिय करने को मानों आज उठ खड़ी
सरोष जनता लेकर फरसा,
ऐसी वर्षा !"[2]

प्रतीक विधान :-

जब कवि कम से कम शब्दों के द्वारा अधिक अर्थ-व्यक्त करना चाहता है तो उसे प्रतीक का सहारा लेना पड़ता है । प्रतीकों के प्रयोग से भाषा में एक नयी अर्थवत्ता, नयी शक्ति आती है । प्रतीक की महत्वा के बारे में कहा गया है -"बिना चित्रों, प्रतीकों, रूपकों और बिंबों की सहायता के मानव-अभिव्यक्ति का अस्तित्व प्रायः असंभव है । यहाँ तक

---

1. प्रभाकर माचवे - "अनुक्षण" - संस्करण 1959 - पृ. 114 - "अन्तरीप" शीर्षक कविता से ।
2. "तार सप्तक" - संस्करण 1966 - पृ. 199 - "वृष्टि" शीर्षक कविता से ।

कि जब हम शुद्ध विचार के क्षेत्र में पहुँचकर गंभीर तत्व-दर्शन की चर्चा करते हैं ।"[1] यही कारण है कि परंपरा से ही कवि अपने काव्य में प्रतीकों का प्रयोग करते आये हैं । प्रयोगवादी कविता में घिसे-पिटे प्रतीकों और उपमानों का त्याग इसलिए भी कर दिया गया क्योंकि वह यांत्रिक युग की जटिल संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने में असमर्थ हो गये थे । नवीन प्रतीकों की अवतारणा हमारा सौंदर्य बोध का निदान है । अब कमल का फूल ही नहीं, कैक्टस का फूल भी हमारी सौंदर्य-चेतना के प्रवाह का आधार बन गया है । प्रतीकों की इस निरंतर प्रयोग परक दृष्टि के कारण हमारा सौंदर्य-बोध कमल से कैक्टस तक की दूरियाँ तय कर सका है । माचवे ने नए-नए प्रतीकों का उपयोग भी अपनी कविता में किया । चित्रकला के मर्मज्ञ होने के कारण प्रतीक व्यवस्था का सही प्रयोग उनकी कविता में हुआ है । कुछ प्रमुख प्रतीकों का विश्लेषण इस प्रकरण में वांछित हैं -

प्राकृतिक प्रतीक :-

प्रकृति के अनेक उपादान माचवे की कविताओं में प्रतीक बन कर आये हैं । इन प्राकृतिक प्रतीकों के माध्यम से जहाँ माचवे ने परंपरागत अर्थ को व्यक्त किया है, वहाँ अधिकांश प्रतीकों के माध्यम से, वे नये अर्थ का बोध भी कराते हैं । उदाहरण द्रष्टव्य है -

"बहुत दिनों से मैं ने कुछ भी नहीं लिखा,
बहुत दिनों से चाँद कहीं पर नहीं दिखा,

---

1. "तीसरा सप्तक" - संस्करण 1967 - पृ. 115 - केदारनाथ सिंह "वक्तव्य" से ।

कोहरा ही कोहरा था दिल में,
उमड़-घुमड़कर मद्धिम होती होम-शिखा'[1]

दूसरा उदाहरण इस प्रकार है -

'नयी-नयी पौध का,
होगा आत्म-घात
होगी तभी - प्रात,
जानता हूँ यही बात ।'[2]

इस कविता में 'नयी-पौध' नई पीढ़ी का प्रतीक है और प्रात: नयी सामाजिक व्यवस्था का प्रतीक है । उसी प्रकार -

'भूरे नभ में रात उतरती शिशिर सांझ की धुंधली बेला,
पीपल का विराट श्यामल वपु खड़ा हुआ कंकाल अकेला,
एक-चील का बड़ा घोंसला,
क्षीण, तीज की पति शशिकला -
अटके हैं ज्यों जीर्ण देह में बचा मोह का तन्तु विषैला ।'[3]

---

1. प्रभाकर माचवे - 'मेपल' - संस्करण 1967 - पृ. 31 - 'बहुत दिनों से' शीर्षक कविता से ।
2. प्रभाकर माचवे - 'अनुक्षण' - संस्करण 1959 - पृ. 89 - 'जानना और करना' शीर्षक कविता से ।
3. 'तार सप्तक' - संस्करण 1966 - पृ. 211 - 'अश्वत्थ' शीर्षक कविता से ।

इसमें पीपल का वृक्ष मनुष्य के शरीर का प्रतीक है । शिशिर जीवन की संध्या अथवा वृद्धावस्था का प्रतीक है । जिस प्रकार निष्पर्ण वृक्ष पर पक्षी नहीं चहचहाते, उसी प्रकार वृद्धावस्था में भी जीवन का आकर्षण समाप्त हो जाता है ।

सामाजिक प्रतीक :-

प्रगतिशील विचार से प्रयुक्त होने से माचवे की कविताओं में पूँजीपतियों की भर्त्सना और किसान-मजदूर के प्रति सहानुभूति प्रकट हुई है -

"बहुत कुछ जायेगा लगान,
कुछ जायेगी कर्ज-किश्त्
बाकी रह जायेगी -
झोंपड़ियों की उन भूखी अंतड़ियों के लिए सूखी
एक बेर रोटी ।"[1]

शोषित वर्ग की पीड़ा का प्रतीकीकरण इन पंक्तियों में दृष्टव्य है । दूसरा उदाहरण इस प्रकार है -

"धर्म बन गये रक्षक इन पापी काले बाज़ारवालों के,
मन्दिर में जप-जाप-"अहिंसा", शोषण में शर्माती जोंकें ।"[2]

---

1. "तार सप्तक" संस्करण 1966 - पृ. 196 - "गेहूँ की सोच" शीर्षक कविता से ।
2. प्रभाकर माचवे - "अनुक्षण" - संस्करण 1959 - पृ. 86 - "लामज़हब" शीर्षक कविता से ।

इस कविता में माचवे ने धार्मिक विसंगतियों पर चोट किये हैं । इसमें प्रयुक्त "जोंक" शब्द समाज के शोषक वर्ग का प्रतीक हैं ।

प्रेमचन्द की अमर कृति "गोदान" के नायक होरी को माचवे ने निर्धन किसान के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है -

"कहीं दर्द है कहीं निठुरता,
होरी जाड़ा खाय ठिठुरता
मरता, शबनम जैसा ढुरता ।"[1]

माचवे की कविताओं में प्रयुक्त सामाजिक प्रतीक, स्थूल होते हुए भी बड़े ही सुन्दर हैं । इनके द्वारा कवि ने सामाजिक विसंगति को अभिव्यक्ति दी है । माचवे के सामाजिक प्रतीक हमारे रोजमर्रा जीवन से लिए हुए हैं ।

पौराणिक प्रतीक :-

अपनी कविताओं में माचवे ने सांस्कृतिक प्रतीकों का भी प्रयोग किया है । सांस्कृतिक प्रतीक धर्म, इतिहास, पुराण और साहित्य से संबंधित है । यद्यपि सांस्कृतिक प्रतीकों का आधार अतीत है, फिर भी ये प्रतीक आधुनिक भावबोध को व्यक्त करने में समर्थ है । सांस्कृतिक प्रतीकों में माचवे ने पौराणिक प्रतीकों का ही अधिक प्रयोग किया है । कुछ उदाहरण

---

1. प्रभाकर माचवे - "तेल की पकौड़ियाँ" - संस्करण 1962 - पृ. 22 - "न्यू डिटरमिनिज्म" शीर्षक कविता से ।

इस प्रकार हैं -

सुन्दरी के पैरों में देखी जब सोनहली
नरम बाल वाली और गोल-श्वेत चत्तों की
चप्पल, तो देख उसे याद आयी हिरनों की
खुले चरगाहों में चौकड़ियाँ पहली !
याद मुझे आया भूत, वर्तमान, भावी,
याद नहीं आयी मुझे किसी भगवान् की,
याद मुझे आयी सिर्फ भगवती-जानकी,
मारीच आया बन हेम-हिरन मायावी ।[1]

इस कविता में "हेम-हिरन" सुख और उल्लास का प्रतीक है । इसके पढ़ते ही राम का कंचन-मृग के पीछे दौड़ना याद आ जाता है । एक अन्य उदाहरण -

"आज भी "सु-वर्ण" हमें - तुम्हें ललचाता है
आज भी हमारी देवियां को वही कंचुकी
पहनने की इच्छा है किन्तु वह बन चुकी !
आज राम शरासन ले वन में कहाँ जाता है ?
लक्ष्मण की रेखा खुद लक्ष्मण मिटाता है ।
खुशी-खुशी सीता संग रावण मुस्काता है ।"[2]

---

1. प्रभाकर माचवे - "तेल की पकौड़ियाँ" - संस्करण 1962 - पृ. 30 - "सोने का हिरन" - शीर्षक कविता से ।
2. प्रभाकर माचवे - तेल की पकौड़ियाँ - संस्करण 1962 - पृ. 30 - "सोने का हिरन" शीर्षक कविता से ।

इस कविता में "लक्ष्मण की रेखा" मर्यादा का अर्थ देती है जिसकी आज के संदर्भ में कोई मूल्य नहीं है । मर्यादा का पालन करने वाला स्वयं मर्यादा का उल्लंघन करता है । एक दूसरी कविता में माचवे ने "हिरण्यकश्यप" को अन्याय का प्रतीक माना है -

> "देखता हूँ रोज़-रोज, स्तंभों में पढ़ता हूँ
> छिपे हुए हिरण्यकश्यपों की शव साधना को,
> और अब दर्द ऐसा भर गया है
> कि तू..... तेरी याद भी उस में खो गयी है ;
> ओ मेरी आत्मा
> मेरी तलाक दी हुई प्रियतम निजता !"[1]

पुराण के कई पात्र, संदर्भ आधुनिक कवियों के लिए इसलिए आकर्षक लगे हैं कि वे स्वयं किसी की उपज है । उन्हें सही प्रतीक व्यवस्था में ढालते समय कविता की अर्थध्वनि बढ़ती है ।

मिथक काव्य :-

जिस प्रकार से प्रतीक और बिंब भावों और विचारों को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त करने में सहायक हैं, उसी प्रकार मिथक भी काव्य की प्रखरता को बढ़ाकर, उस में अन्तर्निहित भावों को प्रभावशाली ढंग से उजागर करता है । मिथक के माध्यम से कवि अपने कथ्य को ऐसा प्रभावी बना देता है कि पाठक का उससे सहज और स्वाभाविक रूप से तादात्म्य स्थापित हो जाता है ।

---

1. प्रभाकर माचवे - "मेपल" - संस्करण 1967 - पृ. 7 - "तू" शीर्षक कविता से ।

माचवे का "विश्वकर्मा" नामक खंड काव्य मिथक काव्य की श्रेणी में रखा जा सकता है । यह एक प्राचीन प्रसंग के आधार पर संरचित काव्य है । इसकी भूमिका में माचवे का कथन है - "मैं ने सोचा कि इस पुराण-कथा के मिथक को आधुनिक प्रासंगिकता से जोड़ूँ । इसलिए मैं ने प्रकृति के आदिम शक्ति-स्त्रोत "सूर्य" के विरोध में विश्वकर्मा की वैज्ञानिक-तांत्रिक अहंता को खड़ा किया है । दोनों के बीच में है मनुष्य की चेतना {"संज्ञा" और "छाया"} और इससे युग-युग में पैदा होनेवाली मनुष्य की संतान, जिसे कहा गया "मनु" । इन चार पात्रों के माध्यम से ही मैं ने इस छोटे काव्य में कई बड़े प्रश्न संकेत से उठाये हैं ।"[1]

कुल आठ सर्गों में -सूर्योदय, मध्याह्न:- सूर्यहीन छाया, मध्याह्न: छायाहीन सूर्य, अपराह्न, सूर्यास्त, द्वाभा, निशा और उषा - रचित "विश्वकर्मा" एक मिथकीय खण्ड काव्य है । इसमें कुल-चार पात्र हैं । देवताओं का अभियन्ता, विश्वकर्मा, उसकी पुत्री संज्ञा, प्रकृति के तेजस्वी महापुरुष सूर्य और मनु - ये चारों पात्र मिथक आयाम से युक्त हैं । आदिम शक्ति स्त्रोत रूपी सूर्य को मिथकीकृत करते ही काव्य के कई आयाम उभरने लगते हैं । प्रकृति और मनुष्य का प्रसंग सजीव हो उठता है । प्रकृति पर मनुष्य की अवांछित हरकतों का परिदृश्य भी स्पष्ट होता है । इस प्रकार पूरा काव्य मिथकीय बन पड़ा है -

---

1. डा.प्रभाकर माचवे - "विश्वकर्मा" - संस्करण 1988 - पृ. 10 - "भूमिका" से ।

यंत्र से बढ़ा उत्पादन, धन साधन मनु ने जमा किये
इतनी पूँजी, इतनी सत्ता ! फिर शस्त्र बनाये नये-नये
उस संचय को संरक्षित करने कई बनाये नये ढंग
मनु बढ़ा और उसने ठानी जो महाभारती नई जंग

भीतर से मनु खाली - खाली
गोली, तोपें, बम, पामाली
इतने सब संहार किये
फिर भी सुख निस्सार हुए
मिली नहीं वह शांति निराली
चाहा था यंत्र से पूर्णिमा
होगी इस जग में, सब सुषमा
छायेगी मिट लघिमा-गरिमा,
उल्टे अमा घिरी क्यों काली ?
क्या इसका कारण ? सब मति-गति
भूल गई सूर्य की महाकृति,
वैकल्पिक ऊर्जा की वह स्मृति
हमने अपने हाथों मौत बुला ली
मनु का मन है खाली-खाली ।"[1]

माचवे की कविताओं के विश्लेषण से स्पष्ट है कि कविता के शिल्पगत प्रयोग के प्रति वे सतत् जागरूक हैं । "हिन्दी के पाठकों-समीक्षकों

---

1. प्रभाकर माचवे - "विश्वकर्मा" - संस्करण 1988 - पृ. 52 - "अपराह्न" शीर्षक से ।

का माचवे के इस मत से कोई विरोध नहीं है, सचमुच प्रयोग के क्षेत्र में उनकी रचनाएँ दूसरे कवियों की अपेक्षा अधिक साहसिक हैं ।"[1] डा. श्याम परमार के शिल्प प्रयोग संबंधी प्रश्न के जवाब में माचवे ने उत्तर दिया है -"मैं ने सॉनिट लिखे । ग्राम गीतों की धुनें नयी कविता में प्रतिष्ठित कीं । बादल बरसे, मूसलधार, चरवाहा, आमों के नीचे खडा किसी को रहा पुकार" । जैसी कविता में बोल-चाल के टुकडे प्रतिष्ठित भाषा के साथ रखे । "वामपक्ष पे है या हराम पक्ष में है ? या इसे क्या दरकार । उसका तो महज काम । बेचना ये अखबार । वह जानता है महावार । तनखा साढ़े तीन कलदार... ।" संस्कृत छन्दों के नामों का नया अर्थ प्रणय-प्रधान दो सॉनिटों में है । एक गंभीर पंक्ति और कोष्ठक में हास्य-व्यंग्य से भरी-अवचेतन व्यक्त करनेवाली करुणा रस की पंक्तियाँ भी वहाँ हैं । गज़लों की भी कोशिश की । बनारस में मणिकर्णिका घाट पर चलती नाव की तरंगों की गति भरने का यत्न किया । "हॉरर" के प्रतीक "कापालिक गाता है" जैसी अलंकार रहीन पंक्तियाँ भी लिखीं । मेरे लेखे उस समय गद्प्राय मुक्तछंद लिखनेवालों में मेरी रचनाएँ सर्वाधिक "साहसिक" कही जा सकती हैं ।"[2] माचवे की विज्ञप्ति में उनकी शिल्पगत प्रयोग प्रकरता झलकती हैं । कविता के प्रतिमानों के बदलाव के उस छठे दशक में इस प्रकार के प्रयोगों ने, अर्थात् शिल्पगत वैविध्य ने कविता को नए आयाम दिये हैं । माचवे इस दिशा में सिद्धहस्त हैं । इस अतिरिक्त इच्छा के साथ मानवीय आग्रह भी काम कर रहे हैं । माचवे की नवीनता

---

1. "अक्षर-अर्पण" - संस्करण 1977 - पृ. 43 - "रविनाथ सिंह - "प्रभाकर माचवे की काव्य-भाषा" शीर्षक लेख से ।
2. डा. श्याम परमार - "अकविता और कला संदर्भ" -पृ. 116 - "प्रभाकर माचवे से एक चर्चा" शीर्षक से ।

के संबंध में केदारनाथ सिंह का कथन विशेष उल्लेखनीय है -"यह आकस्मिक नहीं है कि कुछ दिनों पूर्व नयी पीढ़ी के कुछ कवियों ने माचवे की कविता के साथ अपना संबंध जोड़ने का प्रयास किया था । उनके काव्य में जो स्थितियों का एक हल्का-फुल्कापन और काव्य के बुनियादी ढाँचे के साथ रचनात्मक खिलवाड़ का सा भाव है, वह नयी पीढ़ी की काव्यात्मक मनोदशा के अधिक निकट पड़ता है । माचवे की कवितायें यदि आज भी पढ़ी जा सकती है तो इसी संदर्भ में । वे शायद इस संकलन {तारसप्तक} के अकेले ऐसे कवि हैं, जिसने अपने नये वक्तव्य भी "ताज़ी प्रज्ञा के साथ नित्य नूतन नव-नवीन प्रयोगशीलता" को आज भी महत्वपूर्ण और आवश्यक माना है ।"[1] अपनी शैल्पिक विविधता से उन्होंने कविता में हल्केपन की फुलझड़ियाँ छोड़ी । वह भले ही जान बूझकर किया गया प्रयोग क्यों न हो, फिर भी उनका सौंदर्य धीरे-धीरे विकसित होता है, हल्कापन उनके सौंदर्य बोध का पक्ष बनता है तो उसी मात्रा में रूप के मर्यादित रूप को झटके के साथ तोड़ देता है । रूप की आकांक्षा और रूप का विद्रोह एक साथ चलता है । माचवे की कविता के रूप बन्ध की यही विशिष्टता संभवत: उन्हें आज के कवियों के साथ जोड़ती हैं ।

---

1. केदारनाथ सिंह - "मेरे समय के शब्द" - संस्करण 1993 - पृ. 38 - "तार सप्तक ऐतिहासिकता और प्रासंगिकता" शीर्षक लेख से ।

उपसंहार

"तार सप्तक" के प्रकाशन की अर्द्धशती बीत चुकी है । पुनः उसकी प्रासंगिकता पर भी नये सिरे से विचार-विमर्श हो रहे हैं । यह स्वाभाविक है कि जब किसी की रचनात्मकता या किसी प्रमुख ग्रंथ के पुर्नमूल्यांकन के लिए काल की लंबी अवधि प्रयोजनप्रद सिद्ध होती है । संभवतः "तार सप्तक" के अर्द्धशती-वर्ष में पुर्नमूल्यांकन का यह दौर चल पड़ा है । यह भी कम आश्चर्य की बात नहीं है कि तारसप्तक अपने प्रारंभ काल में भी विवादास्पद संकलन स्थापित हुआ था । उसकी भूमिका को लेकर, कवियों के अलग-अलग वक्तव्यों तथा कविताओं के संबंध में कभी एकमत प्राप्त नहीं हुआ है । मतान्तर उसकी विशिष्टता है । शायद इस कारण से ही उसके सभी कवि कालान्तर में अपने-अपने ढंग से प्रसिद्ध हुए । प्रभाकर माचवे उसी संकलन के माध्यम से कवि के रूप में प्रतिष्ठित हुए ।

प्रभाकर माचवे का रचना-संसार अतिविपुल हैं । उसमें कविता से लेकर चित्रों तक की सामग्री है ; उपन्यास से लेकर संपादकीय टिप्पणियों तक का सिलसिला है । इतने पर भी प्रभाकर माचवे प्रमुख रूप से कवि के रूप में अधिक विख्यात हैं । साथ-साथ उनके व्यक्तित्व का एक अनूठा पक्ष जो हमेशा साहित्यकारों, पाठकों के बीच चर्चित रहा है और वह है कौतुकप्रिय, सहज सरल स्नेह के धनी व्यक्ति । "तार सप्तक" के कवि होने के कारण तथा बाद के संकलनों में तद्युगीन काव्य-प्रवृत्तियों के समावेश के कारण माचवे की कविता का विश्लेषण प्रयोगवादी कविता और नयी कविता

के संदर्भ में होता है । इसका यह अर्थ नहीं है कि नयी कविता के बाद, उनमें किसी भी प्रकार का काव्य-स्फुरण नहीं हुआ है । उसके कवि व्यक्तित्व में बराबर काव्यांकुरण की नई ऊर्जा बलवती रही है और कविता के नये-नये क्षितिजों को आत्मसात् करने की अदम्य इच्छा भी रही है । इस कारण से ही अन्यविधाओं में पूरी सक्रियता के साथ अपनी भूमिका निभाने के बावजूद उनकी कवि-भूमिका प्रमुख बन गयी थी । जो व्यक्ति मूलतः कवि हैं, जिसका जीवन दर्शन मूलतः काव्यात्मक है, उसमें एक खास प्रकार की सहजता मिलती है, जो उसके कवित्व की देन है । कवित्व की यह आभा माचवे में दर्शनीय है, माचवे के व्यक्तित्व में दर्शनीय है । भाषाई सीमाओं और संकीर्णताओं से ऊपर उठकर कवि होने का एहसास वे मात्र अपनी कविताओं से ही नहीं, बल्कि अन्य रचनाओं के माध्यम से देते रहे हैं । कवित्व की यह गुणग्राही दृष्टि उनमें प्रबल थी ।

कविता के विश्लेषण के लिए जीवनीपरक रचनाओं और घटनाओं की आवश्यकता नहीं है । लेकिन कभी-कभी कुछ विशिष्ट संदर्भों को विश्लेषित करने के लिए एकाध रचनाएँ एवं घटनाएँ सहायक सिद्ध हो सकती है । लेकिन माचवे के व्यक्तित्व में से, जीवन में से ऐसी घटनाओं का चयन मुश्किल है । कारण यह है कि, जैसे प्रेमचन्द ने अपने संबंध में लिखा - "उनका जीवन मैदान सा समतल है", माचवे का जीवन भी समतलीय है । उसमें आश्चर्य जनक, असंभाव पड़ाव हमें प्राप्त होते नहीं है । शुरू से लेकर आखिर तक सामान्यता का बोध ही उनका जीवन हमें प्रदान कर रहा है ।

लेकिन आज के जटिल युग में इस सामान्यता की अपनी अर्थवत्ता है । यह सिर्फ सरल होने का भाव नहीं है या मात्र गांधीवादी दृष्टिकोण का प्रभाव । माचवे की सामान्यता या सहजता, जिसे वास्तव में विद्रोह के अन्तर्गत रखना चाहिए, क्योंकि यह जटिलता के विरुद्ध अपनायी गयी एक प्रखर दृष्टि है । इसलिए वह समझौतावादी नहीं है, यह सहज दृष्टिकोण यों विकसित होता है । प्रलोभनों और स्वार्थों से मुक्त होकर व्यक्तित्व का यह अंश विकसित होता है । माचवे का यह वैशिष्ट्य उनके काव्य विश्लेषण में इसलिए सहायक है कि यह उनकी कविता का समाज विस्तृत है । जीवन की समतलीयता के समान उनकी कविता की भी अपनी समतलीयता और उनके बीच की पारस्परिकता का अन्वेषण एक प्रीतिप्रद अनुभव हैं ।

यद्यपि "तार सप्तक" के पहले ही माचवे की कवितायें प्रकाशित हुई थी, फिर भी "तार सप्तक" में उनकी कविता अपनी सही ज़मीन तलाश करती है । तारसप्तकीय प्रयोगपरक दृष्टि उनमें थी । साथ ही रूमानी भावुकता को झटकाकर अलग करने की बौद्धिक दृष्टि भी । बौद्धिकता की स्थापना और तद्‌संबंधी विचार में भले ही हम प्रभाकर माचवे की कुछ अतिरंजनाएँ अनुभव कर सकते हैं, फिर भी एक नये कवि का रचनात्मक आग्रह उसमें व्यक्त होता है । उनकी कविताओं में भी यह बात है । एक स्वीकृत तथ्य या एक सामान्य अनुभव उनकी कविता में कुछ परिवर्तित अन्दाज़ में व्यक्त होता है । परिवर्तन की आकांक्षा सतही प्रयोगपरकता या रूपात्मक सांकेतिकता नहीं है, अनुभवों के नये अन्दाज़ में या तथ्यों की नयी स्वीकृति में है । जीवन की कर्कशता को समयाधीन विडम्बनाओं के

तहत महसूस करने की प्रवृत्ति भी विद्यमान है । इसलिए एक नया शब्द प्रयोग भी, एक नया अनुभव संसार प्रदान करता है । संवेदना की यह बदली हुई स्थिति माचवे की बहुत सारी तारसप्तकीय कविताओं में स्वीकृत हैं । हिन्दी कविता जो बदल रही थी, उसका पूर्वानुमान माचवे की कवितायें अक्सर दिया करती थीं । इतने पर भी यह सूचित करना अनिवार्य है कि उनकी कवितायें बराबर अपनी सीमायें भी व्यक्त कर रही थी । परन्तु इस संदर्भ में यह भी सूचित करना अनिवार्य है कि ऐसी कमियाँ आधुनिकोन्मुख अन्य कवियों में व्यक्त थी । इसलिए यह मात्र माचवे की कमी नहीं है । यही बताया जा सकता है कि माचवे की कविता जो आधुनिकोन्मुख थी, कमियों के बावजूद अपने समय को, अपने समय के मनुष्य को, रोज़मर्रा के जीवन को अस्पृहणीय स्थितियों को व्यक्त कर रही थी । अतः माचवे की इस दौर की कवितायें हिन्दी की आधुनिक युग की संवेदना को वहन करनेवाली रचनाएँ हैं ।

"तार सप्तक" के बाद प्रकाशित प्रभाकर माचवे की कविताएँ दरअसल नई कविता के दौर की रचना-मानसिकता से ओत-प्रोत दिखाई देती हैं । इसलिए "मेपल", "अनुक्षण", "तेल की पकौडियाँ" आदि नई कविता के संदर्भ में विचारणीय संकलन हैं । नई कविता ने सब से पहले हिन्दी कविता में जीवन की संश्लिष्टता का परिचय दिया । हम जिस संसार में जी रहे हैं, जिस प्रकार हम रचे बसे हुए हैं, वह सामान्य होते हुए भी असामान्य हैं । कहीं वह निरीह है तो कहीं विकराल हैं । कहीं वह सीधा-सरल है कहीं विसंगत । आधुनिक कविता में सामयिक जीवन के कई

विसंगत पक्ष कई रंगों, रूपों में समाप्त हुए हैं । वे सिर्फ इन विसंगत पक्षों के उद्घाटक नहीं, बल्कि वे उसके आलोचक हैं । लेकिन कविता में किसी भी पक्ष को सामान्य रूप में उद्घाटित करने या आलोचित करने का अवसर नहीं है । कविता को कविता होने का धर्म भी पूरा करना है, साथ ही अपनी कवि दृष्टि की भूमिका भी निभानी है । जीवन की गहराइयों से भी गुज़रना है । एक हद तक आधुनिक कविता इसमें सफल भी हुए हैं ।

अन्य कवियों की तुलना में माचवे की विशेषता यह है कि सामान्य जीवन के साथ उनका निकट का संबंध था । मज़दूरों और अन्य सामान्य जनों के साथ निरंतर संपर्क में रहने के कारण, उन्हें जो जीवन संबंधी चित्र मिला वह उसके केन्द्र में जीने के कारण प्राप्त है । इसलिए वे उसके चितेरे भी बने हैं । माचवे ने उन्हीं सामाजिक विडंबनाओं को स्थान दिया जो आम आदमी के ऊपर बोझ सी स्थित है । माचवे ने उनकी भूख पर कविताएँ लिखीं । अन्य कवियों की तुलना में माचवे की कविता का भूख से प्रताडित व्यक्ति उस चरमराते सामाजिक ढाँचों का प्रतिनिधि है जो सदैव शोषित ही रहा है । शोषण पर कविता लिखते समय भी वे भावुक होकर या भावावेश से लिखते नहीं हैं । शोषण पर बस उनकी कड़ी नज़र पडती है । भूख और शोषण के अलावा समाज के अन्य क्षेत्रों में फैली अराजक स्थितियों पर भी उन्होंने कविताएँ लिखीं हैं । इस संदर्भ में वे ज़्यादा जनवादी कवि ठहरते हैं । लेकिन जनवादी दृष्टि को नारेबाज़ी की मुद्रा में वे प्रस्तुत भी नहीं करते । विडम्बनाओं की अतिरेकता को आनुषंगिक ढंग से उपनिवेशवादी षड्यंत्र के रूप में भी देखते हैं । इसी संदर्भ में माचवे की कविता अधिक अर्थपूर्ण और प्रासंगिक

हो जाती है । माचवे जैसे कवियों में दिखाई पड़ने वाली जनवादी चेतना ने आगामी कविता को काफी अवलम्ब प्रदान किया है ।

हिन्दी के जाने माने व्यंग्यकार के रूप में माचवे अक्सर व्यंग्य के संदर्भ में चर्चित होते हैं । गद्य में भी उनकी अच्छी खासी व्यंग्य रचनाएँ प्रकाशित हैं । कविता में भी उनकी व्यंग्य प्रवृत्ति बलवती हैं । सामान्यत: नई कविता में व्यंग्य की प्रवृत्ति है । सामाजिक विसंगतियाँ बराबर व्यंग्य का सृजन करती ही है । व्यंग्य किसी भी साहित्यकार के हाथों ऐसा हथियार है कि वह अपने ढंग से उसका प्रयोग करता है । कोई उसे वज्र के समान प्रयुक्त करता है तो कोई उसकी चमक दिखाता है, पर वार नहीं करता है । कोई उसे छिपाता है पर शब्दों की उसकी धार को बनाए रखता है । माचवे ने सभी प्रकार से उस हथियार का प्रयोग किया है । पर कहीं भी कोई व्यक्ति उनका शिकार नहीं है । व्यवस्था, स्थिति, परिवेश उनके शिकार है । अस्पृहणीय स्थितियाँ उनकी आघात से टूटती है । अपनी व्यंग्य दृष्टि को भी माचवे ने कई क्षेत्रों तक व्यापित किया है । धार्मिक रूढियों पर व्यंग्य करनेवाले माचवे संस्कृति के क्षेत्र की आयायित-स्थितियों को भी अपने व्यंग्य से हतप्रभ कर देते हैं । उनके व्यंग्य का "स्पेस" बृहद है ।

व्यंग्यात्मक रचनाओं से युक्त कविता भी माचवे ने लिखी है और पूर्णरूपेण व्यंग्यात्मक कविताएँ भी लिखी है । शब्दों की खिलवाड और

बुनियादी कौतुकप्रियता के कारण उनके व्यंग्य सहज दीखते हैं । पर ये नुकीले अवश्य है । यह भी सूचित करने योग्य बात है कि नई कविता में सब से अधिक व्यंग्य कविताएँ लिखने वाले माचवे ही है । संभवत: मराठी और हिन्दी कविता के संत काव्यों के अध्येता होने से उनकी व्यंग्य दृष्टि को अधिक पैनापन भी मिल गया हो । साथ ही उनमें दिखाई पडनेवाली तटस्थता भी संत कवियों की देन हो सकती है । उनकी व्यंग्य रचनाओं में जो खुलापन है, वह भी संतों की देन समझें तो अतिरंजना नहीं होगी । खुली, सहज और तटस्थ व्यंग्य दृष्टि के कारण उनकी व्यंग्य कविताएँ हमेशा आस्वादन का एक नया धरातल प्रदान करती है ।

भारत की किसी भी भाषा में लिखनेवाला कवि "भारतीय" होने के लिए योग्य है । उस अर्थ में माचवे भी भारतीय कवि है । पर माचवे विशिष्ट अर्थ में भारतीय कवि है । उनकी कविता में भारतीयता, वास्तव में एक मूल्य के रूप में स्वीकृत है । उनकी कविता में परंपरा, इतिहास और आस्थाएँ एक दूसरे से घुल-मिलकर दिखाई पडती है । भारतीयता उनमें भावुक दृष्टि की अभिव्यक्ति नहीं है, न वह भारत का स्तुतिगीत है । भारतीयता एक सुदृढ़ आस्था के रूप में उनकी कविता में विकसित हैं । अखंडता को आरोपित करने के लिए भी उन्होंने मुद्देबाजी की कविताएँ नहीं लिखी है । भारतीयता को उन्होंने एक वैविध्य स्थिति के रूप में विकसित किया है ।

विस्तृत अनुभव, बहुभाषा ज्ञान और यायावरी वृत्ति ने उनकी भारतीय दृष्टि को अवश्य व्यापक बना दिया है । लेकिन वे कुछ बाह्य कारण मात्र हैं । अपनी परंपरा से प्राप्त विरासत को सामाजिक स्थिति में देखने का कार्य माचवे ने किया । उनकी सामाजिक कही जानेवाली कविताओं में भारतीयता की असली स्थिति देखी जा सकती है । जिन-जिन सामाजिक विडंबनाओं को उन्होंने लिया है उन में भारतीय जनता का परोक्ष चित्र ही मुख्य है । वे किसी प्रदेश विशेष के नहीं है । भारतीयता इन्हीं संदर्भों में सही मायने में परिकल्पित हो सकती है ।

विषय स्वीकृति के समान ही माचवे में शिल्प स्वीकृति भी असामान्य है । वे प्रारंभ में एक सफल प्रयोक्ता रहे हैं । चाहे वह छन्द के क्षेत्र में हो, या भाषा के क्षेत्र में । कविता में वे खुलेपन के पक्षधर कवि है । इसलिए वे प्रयोगशील कवि रहे । वे मात्र प्रयोगवादी नहीं है । यह समयानुकूल परिवर्तन नहीं है या किसी नए आन्दोलन विशेष के पीछे भागने की प्रवृत्ति भी नहीं है । नई कविता के दौर में ही माचवे की काव्य-भाषा में गद्य का खुदरापन और विषय का खुलेआम प्रयोग प्राप्त है । इसलिए आगामी काव्य-आन्दोलन कर्ताओं ने (अकविता के प्रयोक्ताओं ने) माचवे में अपने अग्रगामी कवि को देखा । माचवे ने उनके लिए कविता नहीं लिखी, बल्कि ऐसी अकवितावादी प्रयोगपरकता और तिरस्कार भावना उनकी अपनी है । उसी प्रकार कवि के रूप में पूरी गंभीरता के साथ उन्होंने कविता के विभिन्न पक्षों पर विचार किया है । प्रयोगपरकता की कौतुकप्रियता ने उन्हें प्रयोगशील और नए शिल्पकार भी नहीं बनाया है । हर पक्ष पर वे पूरी गहनता और

गंभीरता के साथ-साथ विचार करते हैं और कविता में यथा संदर्भ ऐसा प्रयोग करते हैं । कहीं-कहीं कुछ अतिरंजनाएँ हैं । लेकिन भारतीय कविता की विरासत को नए शिल्प विधान में ढालते समय उनकी अच्छी कविताएँ अभिव्यक्त हुई हैं । लोकगीतों पर आधारित कविताएँ या गद्य की कर्कशता का सही प्रयोग करते समय माचवे हमें एक नई शिल्प-दृष्टि ही प्रदान कर रहे हैं ।

माचवे ने कविता के साथ अन्य कई विधाओं को समृद्ध किया है । लेकिन सब कहीं पारस्परिकता के धागे को सुदृढ़ भी रखा है । कविता में कई रूढ़िवादी कविता प्रक्रियाओं एवं काव्य मान्यताओं के विरोधी होकर भी वे कविता की विरासत के संरक्षक ही दीखते हैं । हिन्दी कविता के साथ उन्होंने भारतीय कविता को उस विरासत का अभिन्न अंग माना । विश्व कविता को भी उन्होंने कविता की विरासत के साथ जोड़ा । कविता को कविता की मूल्यवत्ता प्रदान करने की उनकी दृष्टि तथा सामान्य जीवन अनदेखा न करने का भाव - इन दोनों ने माचवे की कविता को समृद्ध कर दिया है । एक आरोप उनकी कविता को लेकर यह है कि उनकी कविता गंभीर नहीं है । उसका सरल उत्तर है - उनकी कविता - हमारे सामान्य और सहज-जीवन की कविता है । वह हमारे आस-पड़ोस की कविता है । सरल और सामान्य आकांक्षाओं और जिजीविषाओं की कविता है । इसलिए वह आज भी प्रासंगिक है ।

सन्दर्भ ग्रंथ-सूची

सन्दर्भ ग्रंथ - सूची

(क) आलोचनात्मक साहित्य :-

1. अकविता और कला संदर्भ - श्याम परमार, कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर प्र. सं. 1968.

2. अक्षर-अर्पण - कमलकांत बुधकर व शिवराज सवाल, आयास प्रकाशन, हरिद्वार, प्र. सं. 1977.

3. अज्ञेय - विश्वनाथ प्रसाद तिवारी (संपादक) नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली - प्र. सं. 1978.

4. आधुनिक हिन्दी साहित्य को अहिन्दी लेखकों का योगदान - विलास गुप्ते नवनीत प्रकाशन, दादर, बंबई-14 प्र. सं. 1973.

5. आधुनिक हिन्दी काव्य में व्यंग्य - डा. बरसानेलाल चतुर्वेदी प्रभात प्रकाशन, चावड़ी बाज़ार दिल्ली - 6 प्र. सं. 1973.

6. आज के लोकप्रिय कवि नागार्जुन- प्रभाकर माचवे राजपाल एंड सन्स, दिल्ली प्र. सं. 1977.

7. आधुनिक बोध और आधुनिकीकरण - रमेश कुन्तल मेघ
अक्षर प्रकाशन (प्रा.) लिमिटेड
दिल्ली - 6
प्र.सं. 1969.

8. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ - नामवर सिंह
लोकभारती प्रकाशन
इलाहाबाद, सं. 1987.

9. खरगोश के सींग - प्रभाकर माचवे
नीलाभ प्रकाशन
प्र.सं. 1950.

10. डा.प्रभाकर माचवे सौ दृष्टिकोण - मारुतिनन्दन पाठक,
पारमिता प्रकाशन
बिहार, प्र.सं. 1988.

11. डा.प्रभाकर माचवे का काव्य - जोगेन्द्र सिंह वर्मा
कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर
प्र.सं. 1980.

12. डा.प्रभाकर माचवे के उपन्यास - कृष्णा रैणा,
विभूति प्रकाशन,
दिल्ली - 32
प्र.सं. 1985.

13. तारसप्तक के कवि काव्य शिल्प के मान - कृष्ण लाल,
साहित्य प्रकाशन,
दिल्ली - 6
प्र.सं. 1979.

14. तारसप्तक के कवियों की समाज-चेतना	- डा. राजेन्द्र प्रसाद वाणी प्रकाशन नई दिल्ली - 2 प्र. सं. 1987.
15. तारसप्तक एक विवेचन	- अनन्त कुमार पाषाण जीवन-प्रभात प्रकाशन बंबई - 63 प्र. सं. 1991.
16. दिशान्तर	- परमानन्द श्रीवास्तव (संपादित) अनुराग प्रकाशन, वाराणसी पाँचवाँ संस्करण - 1990.
17. कविता के नये प्रतिमान	- नामवर सिंह राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली - 2 तृतीय संस्करण - 1982.
18. कविता और मूल्य-संक्रमण	- कमलेश्वर गुप्ता प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली - 2 प्र. सं. 1985.
19. कुछ और गद्य रचनाएँ	- शमशेर बहादुर सिंह राधाकृष्णन् प्रकाशन नयी दिल्ली प्र.सं. 1992.

20. नयी कविता संप्रेषण की समस्या - रोहिताश्व
प्रभा प्रकाशन
इलाहाबाद,
प्र.सं. 1988.

21. नया हिन्दी काव्य - शिवकुमार मिश्र
अनुसन्धान प्रकाशन,
कानपुर
प्र.सं. 1962.

22. नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध - मुक्तिबोध
विश्वभारती प्रकाशन
नागपुर - 12
द्वितीय संस्करण - 1977.

23. नयी कविता और अस्तित्ववाद - रामविलास शर्मा
राजकमल प्रकाशन
नयी दिल्ली
द्वितीय संस्करण 1987.

24. नयी कविता में युगबोध - मंजु दुबे
अनुपम प्रकाशन
पटना - 4
प्र.सं. 1987.

25. नयी कविता में सौंदर्य-चेतना - सत्या मल्होत्रा
आर्य बुक डिपो
नयी दिल्ली
प्र.सं. 1990.

26. दूसरा सप्तक - अज्ञेय (संपादित)
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
द्वितीय संस्करण - 1970.

27. तीसरा सप्तक - अज्ञेय (संपादित)
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
तृतीय संस्करण - 1967.

28. प्रयोगवाद और मुक्तिबोध - नरेन्द्र कुमार शर्मा,
संजय बुक सेन्टर
वाराणसी,
प्र.सं. 1986.

29. प्रयोगवाद और अज्ञेय - शैल सिन्हा
अशोक प्रकाशन
दिल्ली - 6
प्र.सं. 1969.

30. प्रयोगवादी काव्य - पवनकुमार मिश्र
मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी
भोपाल, प्र.सं. 1977.

31. भारतीयता की पहचान - विद्यानिवास मिश्र
वाणी प्रकाशन,
नयी दिल्ली
प्र.सं. 1989.

32. मूल्य: संस्कृति, साहित्य और समय - रत्ना लाहिड़ी
नेशनल पब्लिशिंग हाउस
नयी दिल्ली - 2
प्र.सं. 1987.

33. छाया के बाद - मुजीब रिज़वी व अशोक चक्रधर (संपादन)
दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया
लिमिटेड
प्र. सं. 1978.

34. विसंगति - प्रभाकर माचवे
भारती भंडार
इलाहाबाद
प्र. सं. 1984.

35. शमशेर - सर्वेश्वरदयाल सक्सेना व मलयज (संपादक)
राधाकृष्णन प्रकाशन,
नयी दिल्ली
प्र. सं. 1971.

36. माचवे जीवन यात्रा एक पड़ाव कलकत्ता - रतनलाल सुराणा (संपादक)
मित्र परिषद प्रकाशन
कलकत्ता,
सं. 1985.

37. भारत और एशिया का साहित्य- डा. प्रभाकर माचवे
कृष्णा ब्रदर्स
अजमेर
प्र. सं. 1967.

38. समकालीन हिन्दी कविता - परमानन्द श्रीवास्तव
साहित्य अकादमी
नयी दिल्ली,
प्र. सं. 1990.

39. सप्तक त्रय आधुनिकता एवं परंपरा - सूर्यप्रकाश विद्यालंकार
शलभ बुक हाउस
मेरठ, प्र. सं. 1980.

40. साहित्य विविध संदर्भ - लोठार लुत्से
अक्षर प्रकाशन
दिल्ली - 6.

41. शब्द-रेखा - प्रभाकर माचवे
विभूति प्रकाशन
दिल्ली - 32
प्र. सं. 1980.

42. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य - शेरजंग गर्ग,
साहित्य भारती
दिल्ली, प्र. सं. 1973.

43. सादुल्ला की खरी-खरी - प्रभाकर माचवे
माचवे प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र. सं. 1992.

44. सप्तक काव्य - डा. अरविन्द
दि मैकमिलन कंपनी आफ
इन्डिया लिमिटेड,
प्र. सं. 1976.

45. समसामयिक हिन्दी साहित्य - हरिवंशराय बच्चन, नगेन्द्र
भारतभूषण अग्रवाल ‌‌‍‌{संपादन}
साहित्य अकादेमी
द्वितीय संस्करण - 1983.

46. हिन्दी व्यंग्य साहित्य - ए.एन. चन्द्रशेखर रेड्डी
शबरी संस्थान
दिल्ली - 32
प्र.सं. 1989.

47. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डा. नगेन्द्र (संपादक)
नेशनल पब्लिशिंग हाउस
नई दिल्ली - 2
संस्करण - 1978.

48. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास - रामस्वरूप चतुर्वेदी
लोकभारती प्रकाशन,
इलाहाबाद
प्र.सं. 1986.

(ख) माचवे के कविता-संग्रह :-

1. तारसप्तक (छः अन्य कवियों के साथ कविताएँ) - भारतीय ज्ञानपीठ
नई दिल्ली
द्वितीय संस्करण - 1966.

2. स्वप्न-भंग - हिन्दी भवन,
इलाहाबाद
प्र.सं. 1957.

3. अनुक्षण - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
वाराणसी
प्र.सं. 1959

4. तेल की पकौड़ियाँ - भारतीय ज्ञानपीठ काशी, प्र.सं. 1962.

5. मेपल - भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी - 5 प्र.सं. 1967.

6. विश्व कर्मा (खंडकाव्य) - भारतीय साहित्य प्रकाशन, मेरठ, प्र.सं. 1988.

7. डा.प्रभाकर माचवे प्रतिनिधि रचनाएँ - संपादक -कमलकिशोर गोयनका साहित्य निधि 1985.

(ग) पत्रिकाएँ :-

1. भाषा - दिसम्बर 1991.
2. नयी दुनिया - अगस्त 1991.
3. राष्ट्रीय सहारा - अगस्त 1991.
4. हिन्दुस्तान - जुलाई 1991.
5. धर्मयुग - जुलाई 1991.
6. परिषद-समाचार - जुलाई, अगस्त, सितम्बर 1991 (संयुक्तांक)
7. समीक्षा - अक्तूबर-दिसम्बर 1990.
8. ज्ञानोदय - मई 1968.
9. नयी कविता - अंक-7
10. परिशोध - नवंबर 1970

11. नवभारत टाइम्स - जून 23, 1991 व नवम्बर 20, 1994.

12. आजकल - अप्रैल 1989 व मार्च 1992.

13. गगनांचल - अंक-2, 1987.

14. शीराज़ा - दिसम्बर 1987.

अंग्रेज़ी पुस्तकें :-

1. From self to self - Prabhakar Machwe
Vikas Publishing House
New Delhi - 2,(1976).

2. Indian writing in English - Ed-Ramesh Mohan
Orient Longman
New Delhi - 110002,(1978).

3. Satire (The critical idiom) - Editor - John D Jump
Methuen & Co Ltd.(1970).

4. Irony (The critical idiom) - Editor - John D Jump
Methuen & Co.Ltd (1970).

5. A Glossary of literary terms - M.H.Abram's
Macmillian Ltd.
Third Edition (1981).

6. The Hindustan Times - 13th July (1991).

G56231

7. Collins Co-build English Language Dictionary - William Collins Son & Co.Ltd (1987).

8. Dance of Shiva - Anand Coomaraswamy Munshiram Manoharlal publishers pvt.ltd, New Delhi (1970).